प्राचीन प्राच्य का सांस्कृतिक इतिहास

डा० यू० एन० मुकर्जी

934

प्राचीन प्राच्य का सांस्कृतिक इतिहास

[CULTURAL HISTORY OF THE ORIENT]

★

: लेखक :

डा० यू० एन० मुकर्जी

एम० ए०, पी-एच० डी०

★

प्रकाशन केन्द्र, अमीनाबाद, लखनऊ

● प्रकाशक
प्रकाशन केन्द्र,
अमीनाबाद, लखनऊ

● संस्करण
प्रथम संस्करण ३० अक्टूबर १९६०

● *मूल्य : ७ रुपया ५० न० पै०*

● आवरण सज्जा
श्री हिम्मतराय, हिमसन्स, लखनऊ

● मुद्रक
स्वदेश प्रेस,
गौतमबुद्ध मार्ग, लखनऊ

भूमिका

गत द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात्, एशिया महाद्वीप के सभी देशों में एक नवीन जागरण आ गया है। साम्राज्यवादियों की शृंखला से मुक्त होकर, ये सभी देश अपनी-अपनी स्वाधीनता को अक्षुण्ण रखते हुए, द्रुतगति से उन्नति की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

अतः ऐसे वातावरण में, एशिया की प्राचीन सभ्यताओं तथा जिन देशों में उनका जन्म हुआ, उन देशों का अध्ययन केवल वांछनीय ही नहीं, अपितु परमावश्यक भी है। यद्यपि काल-चक्र के प्रभाव से ये सभ्यताएँ अब विलीन हो गयी हैं, तथापि उनके सांस्कृतिक प्रभाव की अमिट छाप, परवर्त्ती सभ्यताओं पर आज भी स्पष्ट है।

केवल एशिया ही नहीं, वरन वर्तमान यूरोप एवं यूरोपीय सभ्यता भी इन "प्राचीन पूर्वीय सभ्यताओं" की गभीर ऋणी है।

लेखक उन प्रमुख ऐतिहासिकों का हार्दिक आभारी है, जिनके ग्रंथों से लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक की प्रस्तुति में, प्रचुर तथ्यों का संग्रह तथा उनका उपयोग किया है। इनमें से कुछ विद्वानों का वह विशेष रूप से आभारी है। जैसे Will Durant, Percy Sykes, G. Rawlinson, H. G. Wells और K. S. Latourette.

प्रस्तुत पुस्तक उन सभी विश्वविद्यालय के छात्रों को उपयोगी सिद्ध होगी, जिनको प्राचीन विश्व की सभ्यताओं (History of the world Civilisation) का अध्ययन करना पड़ता है।

अंत में लेखक, अपने कालेज के संस्थापक श्री वी० एन० विद्यान्त एम० ए०, एल० एल० बी०, प्रधानाचार्य श्री शारदाचरण मुकर्जी, एम० ए०, एल० टी० एवं परम मित्र तथा साथी श्री हमीदुज्जमा एम० ए० दबीरे-कामिल एवं उन सभी मित्रों को हृदय से धन्यवाद देता है जिनके उत्साह एवं प्रेरणा ने, लेखक को प्रस्तुत पुस्तक की प्रस्तुति में, सफल बनाया है। प्रस्तुत पुस्तक में भूल एवं त्रुटि के लिए लेखक पाठकों से क्षमा चाहता है। परवर्त्ती संस्करण में इन्हें दूर करने के सभी प्रयास किये जायँगे।

उषेन्दु नारायण मुकर्जी
एम० ए०, पी-एच० डी०
सीनियर लेक्चरर इन एशियन कल्चर,
विद्यान्त हिन्दू डिग्री कालेज, लखनऊ

तिथि २८-१०-६०

विषय-सूची

अध्याय १ १–३

- *नदी की घाटियों में प्राचीन सभ्यता का विकास*—सभ्यता का क्रमिक विकाश

अध्याय २ ४–४५

- *मेसोपोटेमिया में प्राचीन सभ्यताओं का जन्म, विकास एवं मिलन* भौगोलिक पृष्ठ-भूमि—**ईलम तथा ईलम की सभ्यता**—ईलम सभ्यता की विशेषताएँ—**सुमेरिया तथा सुमेरीय सभ्यता की विशेषताएं**—गृह निर्माण कला—सुमेरीय धर्म तथा मन्दिर—सुमेरीय देवी-देवता—सुमेरीय पुरोहित या पटेसी—दाह-क्रिया प्रथा तथा परलोक में विश्वास—सुमेरीय लिपि तथा साहित्य (प्राचीन कहानियाँ)—सुमेरीय प्रलय कहानी—सुमेरीय नगर-राज्य एवं उनका साहित्य—लगाश का नगर-राज्य—लगाश-सम्राट गुडिया—ऊर-नगर-राज्य तथा चाल्डीया या खाल्दीया वंश—अक्काद नगर-राज्य और उनका प्रथम शासक सार्गोन प्रथम—सुमेरीयों का आर्थिक-जीवन—सुमेरीय शासन-तन्त्र—न्याय तथा कानून-विधि—**बैबिलोनिया या बाबुली सभ्यता—निवासी, सम्राट हम्मुराबी**—शासन-विधान या विधान-संहिता—सम्राट हम्मुराबी के जन-कल्याण सम्बन्धी कार्य—बैबिलोनिया के निवासी, उनकी पोशाक तथा अलंकार—बाबूली सभ्यता का अन्त—कस्साईट-जाति का आक्रमण-अन्धकार-युग—**बाबुल का द्वितीय राजवंश**—युद्ध तथा साम्राज्य-विस्तार—नेबुचडरेज्जर के महल तथा इमारतें—सम्राट नेबुचडरेज्जर की धार्मिक एवं कलात्मक कृतियाँ—सम्राट नेबुचडरेज्जर का महल तथा ऐतिहासिक झूला-उद्यान—द्वितीय बैबिलोनीय राजवंश के समय की आर्थिक एवं सामाजिक दशा—कृषि; उपज एवं पैदावार तथा भोजन; खनिज पदार्थ; वस्त्र तथा कपास उद्योग; भवन निर्माण कला, व्यापार तथा व्यापारिक संस्थाएँ; आर्थिक व्यवस्था, गुलाम तथा दासों की आर्थिक व्यवस्था; बाबुल का शासन-प्रबन्ध तथा कानून—दंड-नीति का आधार—बैबिलोनिया के धर्म तथा देवी-देवता—बैबोलोनीय किंवदन्ती के अनुसार विश्व सृष्टि की कहानी—बाबुल वालों की

स्वर्ग और नरक की कल्पना—मृतकों को दफनाने की प्रथा—बाबुल निवासियों के नैतिक तथा सामाजिक जीवन में स्त्रियों का स्थान—विवाह सम्बन्धी नियम—बाबुल का उत्कीर्ण लेख, अक्षर माला, भाषा तथा साहित्य—बैबोलीनीय-कला, चित्रकला तथा संगीत एवं वास्तु-कला—भवन-निर्माण-कला—जिगुरात-बैबोलोनिया में विज्ञान, ज्योतिष तथा गणित आदि का विकास—चिकित्सा-विज्ञान, दर्शनशास्त्र एवं दार्शनिक—बैबोलोनीय सभ्यता का उपसंहार एवं पतन।

अध्याय ३ ४६–६३

● *असीरीय सभ्यता तथा असुर-साम्राज्य*—जनता तथा निवासी—शल्मनेसर प्रथम—टिगलथ-पिलेस्सर प्रथम - बाबुल तथा मिडिया का असीरिया पर सम्मिलित आक्रमण—असीरीय सरकार, शासन-प्रबन्ध एवं सेना—असीरीय सेना—असुरों के धर्म तथा देवता—स्थानीय-शासन-प्रबन्ध—असीरीय समाज, नागरिकों की जीवनकला, विज्ञान तथा साहित्य—विज्ञान, साहित्य, तथा खगोल-विद्या की उन्नति—कला-कौशल—शिल्पकला—वास्तुकला—असीरिया का पतन।

अध्याय ४ ६४–८१

● *प्राचीन ईरान की सभ्यता एवं संस्कृति*—भौगोलिक स्थिति—प्रथम पारसी राज्य तथा सम्राट—पारसी सभ्यता को मिडिस-जाति की देन—**हुख्मनीषी वंश एवं साईरस महान्**—सम्राट् कुरु या साईरस की कृतियाँ तथा विजय—सम्राट् डेरीयस प्रथम (५२२ ई० पू०—४८५ ई० पू०)—डेरीयस प्रथम (महान्) का शासन-प्रबन्ध—क्षत्रपियों का शासन-प्रबन्ध—सम्राट् का स्थान एवं गौरव—कानून तथा न्याय एवं न्यायालय—राजधानी एवं अन्यान्य नगर-राज-मार्गों का निर्माण—डेरीयस के सिक्के—डेरियस प्रथम की सेना एवं सैन्य-संगठन—डेरीयस महान् के समय की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक अवस्था एवं भाषा, रीतिनीति तथा नैतिक जीवन—निवासी, सम्राट की पोशाक एवं दरबारी—सम्राट के आमोद-प्रमोद एवं बिहार—यात्रा—प्रचलित भाषाएँ एवं लिपियाँ—आम जनता की सामाजिक तथा आर्थिक अवस्था।

अध्याय ५ ८२–९९

● *प्राचीन पारसीक धर्म एवं धार्मिक विश्वास—जरस्थुत्र का आगमन समाज, कला-कौशल, वास्तुकला, सम्राटों के महल*—जरस्थुत्र

का जन्म निवास-स्थान, तिथि—जरस्थुत्री धर्म के प्रधान देवता अहुर-मज्द एवं अन्यान्य देवता—जरस्थुत्र की नैतिक-शिक्षाएँ—स्वर्ग तथा नरक की कल्पना—जरस्थुत्री धर्म का पारसी समाज तथा जनता के नैतिक आचरण पर प्रभाव—विवाह के नियम एवं समाज में स्त्रियों का स्थान—शिक्षा तथा स्कूल—विज्ञान, औषधि, साहित्य एवं कला की उन्नति—कला-कौशल, आभूषण आदि की उन्नति—ईरानी वास्तु-कला, महल एवं समाधि तथा शिला-चित्र—पसरगडी के खण्डहर—पार्सीपोलिस में प्राप्त महलों के खण्डहर—पार्सीपोलिस में प्राप्त समाधियाँ—सुसा में प्राप्त आर्टा जारक्सस प्रथम व द्वितीय के महल।

अध्याय ६ १००–१२२

● *सम्राट जारक्सस प्रथम एवं उनके उत्तराधिकारी : विशाल पारसी साम्राज्य के पतन के कारण*—यूनान-देश अथवा हेलास—यूनान पर आर्यों का आक्रमण—एशिया-माइनर के यूनानी उपनिवेश—एशिया माइनर के यूनानी नगर-राज्यों का विद्रोह और डेरियस के आक्रमण के कारण तथा परिणाम—मराथान का युद्ध (४९० ई० पू०)—सम्राट जारक्सस (४८५ ई० पू०-४६४ ई० पू०) एवं यूनानियो के साथ उसका संघर्ष—पारसी सेना का यूनान प्रवेश—एथेन्स विजय—सलामीस की खाड़ी का युद्ध—सम्राट जारक्सस का प्रत्यावर्तन—प्लेटिआ का युद्ध—फारस तथा यूनान के युद्धों का फल—युद्धों का परिणाम—सम्राट जारक्सस के उत्तराधिकारी एवं पारसी साम्राज्य का पतन—सम्राट आर्य जारक्सस प्रथम—सम्राट आर्टा जारक्सस द्वितीय—सम्राट डेरियस तृतीय—मैसीडोनिया—**सिकन्दर महान् का विजय—अभियान तथा फारसी साम्राज्य का पतन**—विजय-अभियान की तिथि—सिकन्दर का प्रथम युद्ध—ग्रेनीकस की लड़ाई (३३४ ई० पू०)—एशिया माइनर में अभियान—ईसस का ऐतिहासिक युद्ध (३३३ ई० पू०)—सिकन्दर के आक्रमण के परिणाम—सिकन्दर महान् के उत्तराधिकारी।

अध्याय ७ १२३–१४४

● *पार्थिया-साम्राज्य तथा अर्साशीद राजवंश की उत्पत्ति*—फ्रातिस द्वितीय (१३०-१२९ ई० पू०)—मिथ्रदत्त द्वितीय (१२४-८८ ई० पू०)—पार्थिया तथा रोम के संघर्ष एवं परिणाम—पार्थिया एवं रोम का प्रथम सम्पर्क एवं परवर्त्ती संघर्ष—पार्थिया की शक्ति का अवसान—

पार्थिया तथा रोम का प्रथम संघर्ष—**पार्थिया तथा रोम का प्रथम-युद्ध**—कैरी का युद्ध (५३ ई० पू०)—पार्थिया सेनापति सुरेना का अन्त—पार्थिया तथा रोम का अन्तिम संघर्ष—पार्थिया का पतन—**पार्थिया एवं फारस का चीन से प्रथम सम्पर्क—फारस एवं चीन का द्वितीय सम्पर्क काल**—पार्थिया साम्राज्य का संगठन, प्रान्तीय शासन प्रबन्ध एवं सम्राट का स्थान—पार्थिया का समाज एवं सामाजिक अवस्था—धर्म एवं धार्मिक विश्वास तथा देवता—कला-कौशल एवं वास्तु-कला का विकास—**ईरानी संस्कृति का यूरोप पर प्रभाव एवं मिथ्री धर्म का प्रचार।**

अध्याय ८ १४५-१७४

● *सासानी राजवंश (२२६-६२६ ई०)*—सासानी कुल की दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त—**अर्दशीर सासान** का पूर्वी अभियान—अर्दशीर एवं रोम—जरस्थुत्री धर्म की पुनर्स्थापना—सम्राट अर्दशीर की शासन व्यवस्था एवं चरित्र—**शापूर प्रथम** (२४० ई० २७१ ई०)—शापूर के सार्वजनिक कार्य—धर्मयाजक मानी का आगमन—शापूर महान (३०३-३७९ ई०) रोम के साथ प्रथम युद्ध (३३७-३५० ई०)—सम्राट शापूर महान् द्वारा ईसाइयों का दमन—फारस तथा रोम का द्वितीय युद्ध (३५९-३६१ ई०)—शापूर महान् का अन्त ३७९ ई०—सम्राट यज्दगिर्द तृतीय (४४० ई०-४५७ ई०) - फारस के ईसाइयों में मत-भेद—हजरत मजदक—रोम से द्वितीय युद्ध (५२४ ई०-५३१ ई०)—**सासानी राजवंश के समय फारस तथा चीन का सम्पर्क—सम्राट नौशेरवाँ** (५३१ई०-५७९ ई०)—रोम से संधि (५३३ ई०)—लैजीका प्रांत में युद्ध (५४०-५५७ ई०)—श्वेत हूणों का दमन ५५४ ई०—सम्राट नौशेरवाँ की छत्रछाया में ईसाई सम्प्रदाय—सम्राट नौशेरवाँ का चरित्र एवं कृतियाँ—**सम्राट होर्मुज्द चतुर्थ** (५७९-५८९ ई०)—**सम्राट खुसरो पर्वेज** (५९० ई०-६२८ ई०)—पूर्वी रोमीय साम्राज्य में अराजकता—हेराक्लियस का सम्राट बनना (६१० ई०—सम्राट खुसरो पर्वेज का चरित्र—सम्राट की धार्मिक उदारता—सम्राट कोबद द्वितीय (६२८ ई०-६२९ ई०)

अध्याय ९ १७५-१८४

● *सासानियों के समय का शासन प्रबन्ध, भाषा एवं साहित्य तथा कलाकौशल का विकास*—सत्रपियों (क्षत्रपियों) का निर्माण-भूमि प्रबन्ध—

सिंचाई तथा यातायात के प्रबन्ध में सुधार—सैनिक प्रबन्ध—सम्राट एवं उसका दरबार—भाषा एवं साहित्य : पहलवी भाषा की उन्नति—पहलवी भाषा के शिलालेख एवं साहित्य—सासानी समय की वास्तुकला तथा महल-निर्माण-कला—फीरोजाबाद का प्रासाद—ताक-ई-किसरा—कस्रे-शीरीन में सम्राट खुसरो का महल—नख्शी-रुस्तम के प्रस्तर चित्र—सम्राट खुसरो पर्वेज के शिकार दृश्य—सासानी युग में चाँदी के काम—सम्राट शापुर प्रथम की प्रस्तर मूर्ति ।

अध्याय १० १८५-१९७

- *सिन्ध-घाटी की सभ्यता–सिन्ध घाटी के प्रधान नगर एवं बस्तियाँ*–मोहनजोदड़ो–मकान तथा नालियाँ—मोहनजोदड़ो का दुर्ग एवं प्राकार–हड़प्पा शहर, दुर्ग एवं अन्यान्य भवन—प्राचीन सिन्ध की जलवायु तथा उपज, भोजन तथा पशु—वेश-भूषा, अलंकार तथा आभूषण—घरेलू व्यवहार की चीजें—युद्ध के अस्त्र-शस्त्र—लेखन-शैली—सिन्ध-घाटी के सीलमोहर एवं उनका ऐतिहासिक महत्व—व्यापार एवं व्यापारिक सम्बन्ध—धर्म एवं धार्मिक विश्वास—कला-कौशल—नाप-तौल के साधन—सिन्ध-घाटी की सभ्यता का समय (Chronology)—निवासी—दाह-क्रिया एवं प्रथा (Method of Cremation) सिन्ध-सभ्यता का विनाश ।

अध्याय ११ १९८-२२५

- *प्राचीन चीनी-सभ्यता का प्रारंभिक इतिहास*—चीन की भौगोलिक सीमा—चीनी मतानुसार विश्व-सृष्टि के सिद्धान्त—स्वर्गीय सम्राटों का राज्य (२८५२ ई० पू०-२२० ५ई० पू०)–सीया राज्य (२२०५ ई० पू०-१७६६ ई०पू०)—चाऊ-वंश (११२२ ई० पू०-२५५ ई० पू०)–सामन्त-शाही का युग (७७० ई० पू०-२५५ ई० पू०)—दार्शनिक लाओत्सू (६०४ ई० पू०-५७१ ई०पू०)—दार्शनिक कन्फूशियस (५५१ ई० पू०-४७८ ई० पू०)—सामन्तशाही-युग के अन्यान्य दार्शनिक (४५० ई० पू०-२३३ ई० पू०)

अध्याय १२ २२६—२४२

- *(१) चीन-वंश (Chin Dynasty) की स्थापना (२५५ ई० पू०-२०६ ई० पू०)*—चीन के प्रथम सम्राट शी-हुयांग-ती (२२१-२११ ई० पू०)

(२) हान-राजवंश (Han Dynasty) की स्थापना (२०६ ई० पू०-२२१ ई० स०)--सम्राट वुती (१४० ई० पू०-८७३ ई० स०)--सम्राट वांग-मिंग (५-२५ ई० सदी)

(३) ताँग वंश (T'ang Dynasty)—(६१८ ई० स०-९०५ ई० स०)—सम्राट ताई-सुंग (६२७ ई० स०-६५० ई० स०)—सम्राट मींग-हुआंग (७१३ ई० स०-७५६ ई० स०)--आन-लू-शान का विद्रोह (७५५ ई० स०)

अध्याय १३ २४३—२६५

- *शुंग-वंश* (९६० ई० स०-१२७९ ई० स०)—

(१) उत्तरी शुंगवंश (९६० ई० स०-११२७ ई० स०)—सम्राट ताई-सू (९६० ई०स०-९७६ ई० स०)--वांग-आन-शी (१०६९ ई० स० १०७६ ई० स०)—सम्राट हुई-सुंग (११०१ ई० स०-११२६ ई० स०)-तातारों का आक्रमण (११२६ ई० स०)

(२) दक्षिणी शुंग-वंश (११२७ ई० स०-१२७९ ई० स०)—शुंग-कालीन कला-कौशल, चित्रकारी, वास्तु-कला, साहित्यिक-उन्नति, दर्शन तथा धर्म—उपसंहार।

प्राचीन प्राच्य

का

सांस्कृतिक इतिहास

अध्याय | १

नदी की घाटियों में प्राचीन सभ्यता का विकास

मानव-सभ्यता का विकास धीरे-धीरे कई युगों में हुआ। सर्वप्रथम तो वह जंगली अवस्था में रहा, और एक असभ्य की भाँति जंगलों और कन्दराओं में रहकर, जंगली जानवरों का शिकार कर और उन्हीं के चमड़े को ओढ़ कर अपना जीवन व्यतीत करता रहा। जंगली जानवरों का मांस तथा जंगली पेड़ों के कंद-मूल तथा फल ही उसके मुख्य भोजन थे। उसका प्रारम्भिक हथियार लकड़ी या छोटे बड़े पत्थरों के टुकड़े ही थे। पत्थरों को घिस कर उसने नुकीला किया, अस्त्र-शस्त्र तथा अपने काम के औजार तैयार किये। इस प्रकार धीरे-धीरे उसने प्राचीन प्रस्तर-युग (Old Stone Age or Paleolithic Age) से निकलते हुए नवीन प्रस्तर-युग (Neolithic Age) में प्रवेश किया।

परन्तु क्रमश: वह अपने जंगली जीवन से ऊब उठा। उसने मांस तथा दूध के लिए कई जानवर जैसे गाय, बैल, ऊँट, भेड़, बकरी आदि एवं रक्षा के लिए कुत्तों को पालना शुरू किया। परन्तु इन मवेशियों के लिए उसे नित्य नूतन चरागाहों के संधान में इधर-उधर घूमना पड़ता था। इस समय वह चरवाहा जीवन (Pastoral Life) बिताने में ही अपना सारा समय लगा देता था। अत: उसे अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बड़ी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था।

इसी प्रकार घूमते-घामते वह नदियों के किनारे पहुँच गया। कुछ दिन नदियों के किनारे रहने के पश्चात् उसे ज्ञात हुआ कि यहाँ पर उसकी सभी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति भली भाँति हो रही है। चरवाहे-जीवन में ही उसे झोपड़ी बनाने तथा कृषि-कार्य का प्रारम्भिक ज्ञान हो चुका था। नदियों के किनारे बसने पर उसे इन कार्यों में उन्नति करने में और अधिक सुविधाएँ प्रतीत हुईं। सारांश में नदियों के किनारे उसे निम्नलिखित लाभ स्थायीरूप से प्राप्त हुए, जिसके कारण उसकी जीवन-सम्बन्धी कई समस्यायें सुलझ गयीं।

(१) उसे हरे-भरे चरागाह अपने मवेशियों के लिए मिल गये। अब उसे

नये चरागाहों की खोज में अस्थायी जीवन बिताना बन्द करना पड़ा और इस प्रकार उसे एक स्थायी तथा शान्तिमय जीवन प्राप्त हुआ।

(२) नदियों से वह अपने तथा मवेशियों के पीने का जल बराबर प्राप्त करने लगा।

(३) कृषि-योग्य नरम तथा उपजाऊ मिट्टी उसे नदियों के किनारे मिल गयी। अब वह गेहूँ, जौ, चावल, दाल आदि की खेती स्थायी रूप से करते हुए अपना परिवार भली भाँति पालने लगा। अब उसे अपने भोजन के लिये शिकार पर निर्भर नहीं रहना पड़ता था। इस प्रकार अस्थायी शिकारी जीवन को छोड़ते हुये उसने स्थायी रूप से गल्ला पैदा करना तथा उसे गोदाम में रख कर भविष्य में व्यवहार करने का ढंग जान लिया।

अपने खेतों की सिंचाई के लिये उसे नदी से ही सुगमता से जल प्राप्त हो जाता था। सिंचाई के लिए नहर बनाना भी धीरे-धीरे वह सीख गया। घरेलू आवश्यकताओं के लिये मिट्टी के बर्तन भी उसने इन्हीं नदियों के किनारे बैठकर बना लिया।

(४) नदियों के किनारे उगे हुए पेड़ों की टहनियों से झोपड़ी बनाकर वह परिवार सहित सुखी जीवन बिताने लगा। थोड़े ही दिनों में नदी की नरम मिट्टी की ईंटें बनाकर, उसे धूप में सुखाकर उसने अपना मकान बनाना प्रारम्भ किया। सुमेरिया तथा बैबिलोनिया निवासियों ने सर्वप्रथम इस कला का आविष्कार किया। ईंटों के भट्ठे का आविष्कार होने के पश्चात् ईंटों के पक्के मकान भी इन लोगों ने बनाये। सिन्ध-घाटी के लोग भी पक्की ईंटों का मकान बनाने में दक्ष थे जैसा कि मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा के पक्के मकानों के खंडहरों से प्रतीत होता है। सुमेरिया, बैबिलोनिया तथा सिन्ध-घाटी की सभ्यता संसार की सब से प्राचीनतम सभ्यताएँ हैं।

(५) नदियों से उसे मछली प्राप्त होने लगी जिससे उसके भोजन की समस्या समुचित रूप से हल हो गई। मछली पकड़ने के लिए जाल तथा नाव का निर्माण भी उसने शनैः शनैः कर लिया। नाव बनाने से उसे एक लाभ और हुआ। नदी के रास्ते से वह दूर-दूर देशों में आने-जाने लगा, और उन देशों के निवासियों से सम्पर्क स्थापित कर, उनके साथ व्यापार करते हुये, अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति और भी सुन्दर तथा उचित ढंग से उसने कर ली।

सभ्यता का क्रमिक विकास

इस प्रकार सभी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के कारण वह पूर्णरूपेण सभ्य हो गया। कपास से कपड़ा बनाकर वह पहनने लगा, और क्रमशः धातुओं के बर्तन तथा औजार (जैसे प्रथम पीतल तथा कांसा, फिर लोहा) बनाकर अपने भौतिक जीवन को उसने और भी समृद्धिशाली बनाया।

अब उसे समाज तथा गोष्ठी बनाने का अवसर मिला। समाज तथा सामाजिक कायदे-कानूनों का निर्माण उसने अपने साथियों से मिलकर थोड़े ही दिनों में कर लिया। धार्मिक रीति-रिवाज, उत्सवादि, दाह-क्रिया प्रथा, इत्यादि सभी धीरे-धीरे समाज में चालू हो गये। प्राकृतिक विपर्यय से डरकर उनके उद्देश्य में बलिदान करना, तथा मंत्र-तंत्र के द्वारा उन अपार्थिव देवताओं की पूजा करना तो जंगली अवस्था में ही उसने सीख लिया था। अब भाषा की उन्नति के साथ-साथ उसने अपने मंत्र-तंत्र और जादू-टोने में और भी विकास किया। भारतीय आर्यों का ऋग्वेद, इन्हीं प्रयासों का सांस्कृतिक परिणाम है। इस महान् ग्रंथ की रचना भी उन्होंने पञ्च-नद के देश (पंजाब) एवं उसके पश्चात्, सरस्वती, दृशद्वती तथा गंगा आदि नदियों के किनारों पर स्थित आश्रमों में ही बैठकर किया।

(६) नदियों के किनारे पर रहते समय ही उसने नदी की गीली मिट्टी से ईंटें बनाकर मकान बनाना सीख लिया था। अब अंदरूनी प्रेरणा के कारण उसने उन गीली मिट्टी के ईंटों पर नेजे की कलम से लिखना प्रारम्भ किया और इस प्रकार लेखन-कला का आविष्कार हुआ। इस प्रकार के सैकड़ों लेख सुमेरिया-बैबिलोनिया में पाये गये हैं और विद्वानों ने इसे 'उत्कीर्ण-लेख' के नाम से अभिहित किया है। सिंध-घाटी के सील-मोहरों पर भी ऐसे ही लेख पाये गये हैं, परन्तु अभी तक निश्चित-रूप से वे पढ़े नहीं जा सके हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नदियों की घाटियाँ (काँठे) ही मानव-सभ्यता की सर्वप्रथम केन्द्र बनीं। भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ जब उसने समाज का निर्माण शुरू किया और सामाजिक उन्नति की ओर अग्रसर हुआ तभी उसके अन्दर सांस्कृतिक विकास (Cultural development or progress) का प्रारम्भ हुआ। प्रो० हुमायूं कबीर के अनुसार, **"सभ्यता रूपी वृक्ष पर संस्कृति-रूपी फूल विकसित हुए"**—

"If civilization can be compared to a tree, culture can be compared to its blossoms." —Prof. Humayun Kabeer

भाषा, साहित्य, कला, संगीत, धर्म तथा दर्शन आदि के विकास ने सांस्कृतिक विकास को एक नवीन रूप प्रदान किया। देश तथा जाति के अनुसार सांस्कृतिक विकास का रूप भी भिन्न-भिन्न हो गया।

अतः हमें मानना पड़ेगा कि नदियों की घाटियों में ही प्रथम मानव-सभ्यता एवं संस्कृति का प्रारम्भ तथा विकास हुआ। इस प्रकार मानव-सभ्यता एवं संस्कृति के इतिहास में इन घाटियों की देन अवश्य ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण रही है।

———

अध्याय | २

मेसोपोटेमिया में प्राचीन सभ्यताओं का जन्म, विकास एवं मिलन

भौगोलिक पृष्ठभूमि

काला सागर (Black Sea) और कैस्पियन सागर (Caspian Sea) के दक्षिण में तथा फारस के पश्चिम में स्थित, दजला तथा फरात नदियों के बीच में बसे हुये भू-भाग का नाम ही मेसोपोटेमिया है। 'मेसोपोटेमिया' शब्द का शाब्दिक अर्थ है "दो नदियों के बीच वाला देश (Land between two rivers.) मेसोपोटेमिया का क्षेत्रफल करीब-करीब आधुनिक ईराक देश के क्षेत्रफल के समान ही है। आर्मेनिया के पठार के दक्षिणी भाग से प्राय: ६०० मील तक यह विस्तृत है। दजला-फरात नदियाँ आर्मेनिया पठार के इसी दक्षिणी भाग से निकलती हुई फारस के उपसागर में गिरती हैं।

इस प्राचीन सभ्यता की तुलना ऐतिहासिकों ने ईडेन-उद्यान (Eden Garden) से की है जिसका वर्णन बाईबिल में पाया जाता है। नदियों की बाहुल्यता तथा उपजाऊ भूमि के कारण मेसोपोटेमिया का दक्षिणी भाग पश्चिमी एशिया के लिए गल्ले का खजाना या खलिहान कहा जाता था। प्राचीन किंवदन्ती के अनुसार 'गेहूं का प्रथम जन्म विश्व के इसी भाग में हुआ और यहीं से यह एशिया तथा यूरोप के अन्यान्य देशों में फैला।'

मेसोपोटेमिया में जिन प्राचीन सभ्यताओं का जन्म तथा विकास एवं मिलन हुआ, उन्हें चार प्रधान भागों में बाँटा जा सकता है। (१) ईलम, (२) सुमेर (दक्षिणी बैबिलोनिया), (३) अक्काद (उत्तरी बैबिलोनिया) तथा (४) असीरिया। ईलम राज्य के प्रधान नगर थे, सूसा (Susa) और अनशान (Anshan)। सुमेरिया के सभी प्रधान नगर फरात नदी के तट पर बसे हुए थे। जैसे—निप्पुर, अदब, लगाश, उम्मा लासी, ईरेक या अरुक, उर, एरीडू आदि। अक्काद या उत्तरी बैबिलोनिया के प्रधान शहर भी फरात नदी के

किनारे पर ही बसे थे। जैसे—बैबिलोन, बोरसिप्पा, दिलबत्, कीश, कुठाह, औपिस, सिघर तथा अक्काद। अब नीचे इनका वर्णन दिया जाता है।

(१) ईलम (Elam) तथा ईलम की सभ्यता

इस देश का प्रधान नगर तथा राजधानी का नाम 'सूसा' (Susa) है। यह देश दजला-नदी के पूर्वी भाग में ऊँचे पठार पर स्थित है। अतः इस देश का नाम 'ईलम' यानी 'पहाड़' पड़ा। पूर्व में यह ईरान-पठार की पहाड़ियों से घिरा हुआ तथा पश्चिम में दलदल भूमि से सुरक्षित है।

४,५०० ई० पू० इसी देश में ईलम-सभ्यता का जन्म तथा विकास हुआ। ऐतिहासिक Will Durant के अनुसार इस देश के प्राचीन निवासी किस जाति के थे यह अज्ञात है।

"a people of unknown race and origin."—Our Oriental Heritage by Will Durant, p. 117

परन्तु Sir Brigadier Sypes ने, अपनी पुस्तक History of Persia (p. 51) में यहाँ के मूल-निवासियों को नेग्रिटो (Negrito) जाति का बतलाया है। आगे चल कर ईलम-निवासी इतने शक्तिशाली हुए कि उन्होंने सुमेरिया तथा बैबीलोनिया पर भी अधिकार कर लिया।

ईलम सभ्यता की विशेषताएँ

ऐसा प्रतीत होता है कि यह लोग नवीन प्रस्तर-युगीय सभ्यता को पार कर ताम्र-युग में प्रवेश कर चुके थे, क्योंकि इनके अस्त्र-शस्त्र ताँबे के बने हुए प्राप्त हुए हैं। ये लोग कृषि-कार्य तथा पशुपालन में दक्ष थे तथा चित्र-लेखन-शैली (hieroglyphic writing) का प्रयोग जानते थे। पालिश किए हुए ताँबे को यह आईने की तरह इस्तेमाल करते थे और कीमती पत्थरों के आभूषण का भी प्रयोग करते थे। इनका व्यापार उस समय मिश्र से लेकर भारत तक फैला हुआ था। इनके मिट्टी के घड़ों पर ज्यामितिक चित्र (Geometrical designs) तथा जानवरों के चित्र पाये जाते हैं। कुम्हार के चाक (Potter's Wheel) और गाड़ी के पहिए (Wagon-Wheel) का आविष्कार सबसे पहले इन्होंने किया। कहना असंगत न होगा कि इन दोनों ही वस्तुओं के आविष्कार ने सभ्यता की प्रगति में काफी सहायता पहुँचायी।

ईलम-निवासियों ने व्यापार एवं वाणिज्य के द्वारा प्रचुर ऐश्वर्य तथा दौलत एकत्रित कर ली थी। ६४६ ई० पू० जब असीरिया का पराक्रमी सम्राट् असुर बानीपाल ने इस देश पर आक्रमण किया और इसे खूब लूटा तो उसे अपार सोने, चाँदी तथा जवाहरात के आभूषण, मूल्यवान् पोशाक तथा राजकीय असबाब (मेज, कुर्सी, पलंग आदि), प्रसाधन सामग्री तथा रथ आदि

प्राप्त हुए जिसे वह लादकर अपनी राजधानी नीनेव (Nineveh) ले गया। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस प्राचीन युग में भी ईलम निवासी काफी धनाढ्य हो गये थे।

ईलम का प्रधान नगर सूसा (Susa) १४ वीं शताब्दी तक कायम रहा, यद्यपि उसका नाम बदल कर सूशान (Sushan) हो गया था।

इनके शासन-प्रबन्ध के बारे में बहुत कम सामग्री प्राप्त हुई है। सुमेरीय वीर गिलगामेश की उपकथा के अनुसार, ईलम-सम्राट् खुमबाबा (Khumbaba) ने बैबिलोनिया पर आक्रमण किया, परन्तु गिलगामेश के द्वारा मारा गया। अन्य दो ईलम-सम्राट् जैसे खुम्बस्तीर (Khumbastir) तथा कुदुर-कुकु-मल (Kudur-Kuku-mal) का नाम भी प्राप्त हुआ है। शेष सम्राट (कुदुर-कुकु-मल) ने भी बैबिलोनिया पर आक्रमण किया और उसे लूटा। परन्तु न तो इन सम्राटों का शासन-प्रबन्ध और न तो कोई निश्चित तिथि ही प्राप्त होती है। आगे चलकर यहाँ के निवासी सुमेरिया के शासनाधीन हो गये।

सुमेरिया तथा सुमेरीय (Sumeria and the Sumerians)

सुमेरियन जाति की उत्पत्ति कैसे और कहाँ पर हुई, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। यह भी कहना कठिन है कि इन्होंने किस रास्ते से दक्षिणी बैबिलोनिया या सुमेरिया में प्रवेश किया। यह लोग सेमेटिक जाति के नहीं थे और ५००० ई० पू० के लगभग ये बैबिलोनिया के दक्षिणी भाग में बस गये थे। 'सुमेरिया' नाम सर्वप्रथम ऐतिहासिक ओपार्ट (Oppert) ने प्रयोग किया, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है "काले सर वाले लोग" (The black-headed people)। इनका सर छोटा, तथा आँखें झुकी हुई होती थीं। यह गालों पर दाढ़ी रखते थे, परन्तु मूँछों को मुड़वा देते थे। आगे चलकर इन्होंने सर तथा मूंछें दोनों को ही मुड़वाना शुरू किया।

प्रो० वुली (Woolley) तथा रालिन्सन (Rawlinson) आदि विद्वानों के अथक परिश्रम के कारण इस सभ्यता का बहुत कुछ विवरण हमें प्राप्त हुआ है। उर-नगर (City of Ur) के उत्खनन से प्रो० वुली को ज्ञात हुआ कि ४,५०० ई० पू० में ही इस स्थान पर सुमेरीय सभ्यता का पूर्ण विकास हो चुका था।

सुमेरीय सभ्यता की विशेषताएँ

सुमेरिया-निवासी बड़े सुन्दर तथा चित्रित मिट्टी के बर्तन बनाते थे। इनकी पोशाक पहले तो भेड़ों की रोएँदार खाल ही थी, बाद में इन्होंने ऊनी कपड़े भी पहनना शुरू किया। पहले-पहल पुरुषों का शरीर केवल कमर से

नीचे तक ढँका हुआ होता था, परन्तु स्त्रियों का वस्त्र बाँए कन्धे से होता हुआ शरीर के ऊपरी भाग को भी ढँकता था। आगे चलकर पुरुषों ने भी ऊपरी भाग को कपड़े से ढाँकना शुरू किया। परन्तु नौकरों का आधा शरीर खुला ही रहता था चाहे वह स्त्री हो या पुरुष।

सुमेरीय शहरों में प्राप्त वस्तुओं में मिट्टी के चौकोर तख्ते विशेष उल्लेखनीय हैं, जिनपर सुमेरीय नगर-राज्यों का विवरण, उनके पारस्परिक सम्बन्ध तथा अन्तर्युद्ध, एवं प्रसिद्ध सम्राटों का नाम आदि प्राप्त होते हैं।

गृह-निर्माण कला

सुमेरीय प्रथम तो अपने मकान खजूर के पेड़ की तख्तियों के बनाते थे, बाद में धूप में सुखाए हुए ईंटों के बनाने लगे। परन्तु फिर भी घरों के खम्भे तथा सामने का हिस्सा (arch) खजूर की तख्तियों का ही बनता था और कमरों के अन्दर उसी की पत्ती की चटाई बिछाई जाती थी। अमीर आदमी अपने मकान समतल भूमि से ४० फ़ीट ऊँची मिट्टी के ढेर (mound) पर बनाते थे। इन मकानों में आने जाने का केवल एक ही रास्ता होता था। मकान प्राय: छोटा-मोटा दुर्ग की भाँति ही बनाया जाता था। मकान के दरवाजे आँगन की ओर ही खुलते थे। इससे दो लाभ होते थे, एक तो अन्दर रहनेवाले सुरक्षित रह सकते थे दूसरा यह कि कठिन धूप से भी वे बच जाते थे। दीवारों पर पकी हुई मिट्टी के तरह-तरह के चित्र तथा डिज़ाइन बनाकर उसे सुन्दर बनाया जाता था। अन्दर की दीवारों पर पलस्तर चढ़ाया जाता था और सीधे-सादे ढंग से रंग दिया जाता था। मकानों में खिड़कियाँ बिल्कुल नहीं होती थीं।

घर में पीने का जल अधिकतर कुओं से ही प्राप्त होता था। शहरों की गन्दगी की सफाई के लिए नालियाँ बनी होती थीं जिनका निकास शहर के बाहर होता था। ऐसी नालियाँ (drains) नीप्पुर शहर में ५००० वर्ष पुरानी पाई गयी हैं। विशेष लक्षणीय बात यह है कि सिन्ध घाटी के शहर हड़प्पा तथा मोहेन जोदाड़ो में भी ऐसे मकान तथा नालियाँ पायी गयी हैं।

मकानों में पलंग तथा कुर्सियों का भी व्यवहार होता था। किसी-किसी पलंग पर हाथी दाँत तथा धातु का काम भी दिखलायी पड़ता है। कुर्सियों के पैर अक्सर शेर के पंजे की तरह होते थे जैसा कि मिस्र में पाया जाता है।

सुमेरीय कृषि-कार्य में निपुण थे। वे नाना प्रकार के गल्ले जैसे गेहूँ तथा दाल पैदा करते थे। यह नदियों से मछली अपने भोजन के लिए प्राप्त करते थे और मांस तथा दूध के लिये मवेशी पालते थे। यहाँ का मुख्य पेड़ खजूर था जिसके फल भोजन में तथा तख्तियाँ मकानों में प्रयोग किये जाते थे। यातायात

के लिए गधों का इस्तेमाल होता था। विद्वानों के अनुसार पहिये तथा पहियेदार गाड़ियों का आविष्कार सुमेरिया वालों ने ही किया था।

यहाँ पर प्राप्त अन्यान्य वस्तुओं में हड्डी के बने हुए तकुए (Bone spindles) तथा रुई मुख्य है। इनकी लेखन-शैली, विद्वानों के द्वारा 'उत्कीर्ण-लेख' (Cuneiform writing) कहा गया है जिसे वे नेज़े की कलम (Stylus) से मिट्टी के चौकोर टुकड़ों (Clay tablets) पर लिखते थे। इनकी लिखित भाषा में ४०० अक्षर पाये जाते हैं।

यह अपने वर्ष की गणना चन्द्रमास से करते थे। इनकी गणना की इकाई ६० थी जिसके आधार पर वर्तमान काल का समय-निरूपण स्थिर किया गया है।

सुमेरीय धर्म तथा मन्दिर

धर्म का महत्व इन प्राचीन सभ्यताओं में बहुत अधिक था। अपने देवी-देवताओं की पूजा तथा उनको प्रसन्न करने के लिये बलिदान आदि करना इनके जीवन का मुख्य अंग था। इनके देवी-देवता मनुष्यों की तरह व्यवहार करते हुए देखे जाते हैं—क्रोध के कारण उपस्थित होने पर क्रोधित होते हैं, परन्तु उनकी श्रद्धा में पूजा तथा बलिदान करने पर उन्हें प्रसन्नता प्राप्त होती है। सबसे आश्चर्य की बात यह है कि इन देवताओं को शक्तिशाली मानते हुए भी सुमेरियों का यह विश्वास था कि भावी जीवन पर उनका कोई अधिकार न था। मृत्यु के पश्चात् जीवन दुःखमय तथा निरानन्द (dull) होता था।

सुमेरीय देवी-देवता

इनके प्रधान देवताओं की संख्या तीन थी। उनका नाम निम्न-लिखित है :—

(१) अनु (Anu) वायु देवता (The Wind-God)
(२) एनलिल (Enlil) पृथ्वी देवता (The Earth-God)
(३) एनकी (Enki) जल देवता (The Water-God)

इनकी तुलना क्रमशः भारतीय आर्यों के देवता मरुत, अदिति तथा वरुण से की जा सकती है जिनका वर्णन ऋग्वेद में पाया जाता है। प्रत्येक नगर तथा शहर के अपने-अपने मुख्य देवता होते थे। ऊर-नगर-राज्य के शासक ऊर-एंगुर सूर्य-देवता शमश के भक्त थे। निप्पुर-नगर का प्रधान देवता एनलील तथा उसकी पत्नी निनलील मानी जाती थी। ऊरुक या ईरेक नगर में पृथ्वी की देवी ईन्नीनी (virgin earth goddess Innini) की पूजा होती थी, जो आगे चल कर सामी-जाति की देवी ईश्तार मानी जाने लगी। कीश और लगाश शहर की उपास्य-देवी थी निनकर्सग (Ninkarsag)।

इसी प्रकार निनगिर्सु (Ningirsu) सिंचाई के देवता तथा आबु या तम्मुज (Tammuz) शस्य के देवता माने जाते थे।

इन मन्दिरों की देवी-देवताओं की सेवा के लिये स्त्रियाँ नियुक्त थीं। इस प्रकार की स्त्रियों या लड़कियों को समाज में बड़ा सम्मानीय स्थान प्राप्त था। ऐसी लड़कियों के विवाह के समय प्राप्त दहेज को, उनके पिता, अक्सर उन मन्दिरों को दान के रूप में दे देते थे।

सुमेरीय अपने देवताओं के लिए जिन मन्दिरों का निर्माण करते थे उन्हें 'जिगुरात' (Ziggurat) कहा जाता है। इन मन्दिरों को, प्रत्येक शहर में, एक ऊँचे बुर्ज पर बनाया जाता था जिनके चारों ओर क्रमशः ७ या ८ सीढ़ियाँ, धूप में सुखाये हुए ईंटों के बने होते थे। इस प्रकार अद्भुत मन्दिर-निर्माण का कारण यह था कि इनके पृथ्वी-देवता एनलिल, पहले पहल ईलम-निवासियों के देवता माने जाते थे। चूंकि ईलम-निवासी पहाड़ों पर रहने वाले थे इसलिए उनकी कल्पना थी कि उनके देवता एनलिल भी पर्वत-निवासी हैं। अतः ये अपने देवता एनलिल का मन्दिर ऊँचे बुर्ज पर बनाते थे। जब इसी देवता को पूजा सुमेरियों ने ईलम वासियों से ग्रहण की, तो उन्होंने इनके सम्मानार्थ इसी प्रकार के ऊँचे बुर्ज पर मन्दिर निर्माण किया—क्योंकि समतल मैदान में पहाड़ कहाँ से आते ? इसके बाद तो सभी देवताओं के लिए जिगुरात बनने लगे।

इन देवताओं के अलावा भी नाना प्रकार के दैत्य-दानव, तथा भूत-प्रेत की कल्पना वे करते थे जो मानव के मित्र माने जाते थे। अतः उनके कल्पित-चित्र महलों तथा मकानों के प्रवेश-द्वार पर बनाये जाते थे ताकि उनके अन्दर के निवासियों की वे रक्षा कर सकें तथा हानि से बचावें।

सुमेरीय पुरोहित या पटेसी

चूंकि देवी-देवताओं को इतना मान्य समझा जाता था अतः समाज में पुरोहितों का स्थान भी सर्वोच्च था। ये पुरोहित प्रत्येक नगर-राज्य में होते थे और नगर का शासन भार भी इन्हीं के हाथों में था। इन्हें सुमेरीय 'पटेसी' (Patesi) कहते थे। पुरोहित भगवान का दूत या प्रतिनिधि (representative) माना जाता था। छोटे-छोटे बालकों को शिक्षा देने का उत्तरदायित्व भी इन्हीं पुरोहितों के हाथों में था। स्कूल-भवन मन्दिरों के साथ ही संलग्न होते थे। लड़के तथा लड़कियाँ एक साथ अध्ययन करती थीं। स्कूलों में गणित तथा लेखन आदि सिखाये जाते थे। कुशल लिपिकार होने की भी शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक क्षमता प्राप्त होने के कारण जनता पर इनका अखंड शासन था। शव-दाह के समय भी यही पुरोहित मंत्रों का पाठ करते थे और दक्षिणा के रूप में, 'शराब के सात घड़े,

रोटी के ४२० टुकड़े, १२० पाली (measure = तौल) धान, एक पोषाक, एक बकरी का बच्चा, एक बिस्तर और एक कुर्सी' ग्रहण करते थे।

दाह-क्रिया प्रथा तथा परलोक में विश्वास

शव को अक्सर मकानों में फर्श के नीचे गाड़ते थे। गाड़ते समय शव को एक ओर लिटाकर, घुटनों को मोड़ दिया जाता था, ताकि मृतात्मा की अवहेलना न हो और परिवार के देवताओं की पूजा के समय वह उपस्थित हो सके। शव के साथ व्यवहारोपयोगी बर्तन (utensils), सामान, अस्त्र-शस्त्र, जानवर, चमकीले ताँबे के आईने, एवं सम्राटों के साथ उनके नौकर तथा गुलाम तथा बहुमूल्य पोशाक आदि भी दफना दिये जाते थे। सम्राज्ञियों की दाह-क्रिया में भी अनुरूप प्रथा प्रचलित थी। सम्राज्ञी तथा रानियों के साथ उनके कीमती आभूषण, जवाहरात तथा वाद्य-यंत्र भी दफनाये जाते थे। इन सब वस्तुओं तथा नौकर-चाकरों को मृत व्यक्ति के साथ इसलिये गाड़ा जाता था कि मृतात्मा को परलोक-यात्रा के मार्ग में कोई असुविधा या आवश्यकीय वस्तुओं के अभाव में कष्ट न हो। ऐसा विश्वास तथा प्रथा मिस्रवासियों में भी मौजूद था क्योंकि उनके पिरामिडों के उत्खनन के समय भी बहुमूल्य पोशाक, अलंकार, मेज-कुर्सी, आदि प्राप्त हुए हैं। आगे चलकर बैबिलोनिया, असीरिया तथा ईरान में भी इस प्रथा का प्रचलन दिखलाई पड़ता है। मानव-सभ्यता तथा संस्कृति की प्रगति में इस प्रकार की अनुकरण प्रवृत्ति ने भी काफी सहायता पहुँचायी है।

उर (Ur) नगर में प्राप्त ३५०० ई० पू० की कब्रों से पता चलता है कि राजा तथा रानी के लिए कब्रों में अलग-अलग कोठरियाँ बनी होती थीं। कुछ कब्रों में 'स्लेज' जैसी गाड़ी तथा मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं। सम्राट तथा सम्राज्ञी के कब्र में दाखिल होने के पहले उनके अनुचरों को एक विशेष प्रकार की औषधि दी जाती जिससे वे बेहोश हो जाते थे फिर उनको उनके सम्राट् वा सम्राज्ञी के साथ दफना दिया जाता था। गुलामों को दफनाने के पहले कत्ल कर दिया जाता था। ऐसी प्रथा प्राचीन मिश्र तथा यूनान में भी थी।

सुमेरीय साहित्य लिपि तथा साहित्य (प्राचीन कहानियाँ)

यह आश्चर्य की बात है कि उस प्राचीन युग में सुमेरियन लेखन-कला से भली भाँति परिचित थे। इनकी सबसे प्राचीन लिपि पत्थरों पर पायी गयी है और ३६०० ई० पू० की मानी जाती है। ३२०० ई० पू० के लगभग मिट्टी के चौकोर टुकड़ों पर लिखे गये 'उत्कीर्ण लेख' प्राप्त होते हैं। इन्हीं मिट्टी के चौकोर टुकड़ों पर व्यापारिक समझौते (business contracts) सम्पत्ति-सम्बन्धी रेकार्ड (record), न्यायालय के फैसले, बिक्री का रेकार्ड, एवं

कहानियाँ तथा काव्य, बड़े ही सुन्दर ढंग से उत्कीर्ण किये गये हैं। अगर इन लेखों का आविष्कार न होता, या ये नष्ट हो गये होते तो शायद सुमेरिया-सभ्यता की अधिकांश विशेषताएँ वर्तमान ज्ञान से अगोचर ही रह जाते।

इन मिट्टी के टुकड़ों पर लिखने के पश्चात, लेखक या तो उन्हें धूप में सुखा लेता या आग में पका लेता था। शायद इनके स्थायी अस्तित्व का यही कारण है। मानव-सभ्यता को, सुमेरिया-सभ्यता की सबसे विशिष्ट देन, यही उत्कीर्ण लेख कहे जा सकते हैं।

सुमेरीय केवल उत्कीर्ण-लेख के आविष्कार से ही सन्तुष्ट न रहे। २७०० ई० पू० के लगभग उन्होंने विशाल पुस्तकालयों (libraries) की भी स्थापना की। लगाश-सम्राट गुडिया के समकालीन (२६०० ई० पू०) तेलो (Tello) नगर के ध्वंसावशेष में डि सरजक (De Serzac) महोदय ने, ३०,००० चौकोर टुकड़ों का आविष्कार किया जो बड़े ही ढंग से, एक दूसरे के ऊपर वाकायदे सजे हुए रक्खे थे।

सुमेरीय प्रलय कहानी

सुमेरीयन ऐतिहासिकों ने लगभग २००० ई० पू० से ही अपने देश की प्राचीन घटनाओं को संकलित करना प्रारम्भ किया था। उस समय की लिखी हुई सुमेरीय प्रलय की कहानी, विश्व में सबसे प्राचीन मानी जाती है। इस प्रलय-कहानी का नायक है जिऊदसुद्दु (Ziudsuddu) जो सुमेरिया के किसी गाँव का 'पटेसी' है और जल-देवता एनकी (Enki) का भक्त है। देवता एनकी उसे निकट भविष्य में होने वाली एक भयंकर बाढ़ या प्रलय के बारे में उसे सूचना देते हुये सावधान करते हैं। फलस्वरूप, जिऊदसुद्दु एक नाव बनाकर, उसमें अपने पशुओं को रखकर, प्रलय-सूचक सात दिन तक होनेवाली भयंकर तूफान तथा वर्षा से उनको तथा अपने को बचा लेता है। वर्षा तथा तूफान समाप्त होने पर पुनः सूर्योदय के साथ-साथ धूप निकल आती है। वह जल-देवता एक बैल और एक भेड़ का बलिदान करता है।

इस प्रलय-कहानी के अन्त में हम देखते हैं कि वह रुष्ट वायु-देवता एनलिल को पूजा इत्यादि के द्वारा सन्तुष्ट करता है, और एनलिल देव प्रसन्न होकर उसे अमरता प्रदान करता है।

आगे चलकर हम देखते हैं कि इसी प्रलय-कहानी का रूपान्तर बैबिलोनिया में तथा हिब्रु जाति की ओल्ड-टेस्टामेन्ट में होता है, जहाँ प्रलय का नायक जिऊदसुद्दु के स्थान पर क्रमशः उत-नपिशतिम (ut-napishtim) तथा नोआ (Noah) माने गये हैं। भारतवर्ष में इसी प्रलय-कहानी का नायक मनु हैं जो नौबन्ध-शृंग में अपनी नाव बाँधकर, उसके निवासी मानव तथा पशु-पक्षियों को बचा लेते हैं जिनसे पुनः विश्व-सृष्टि होती है।

सुमेरिया की यह भयंकर प्रलय एक ऐतिहासिक घटना है क्योंकि १९२९ में प्रो० वुली (Prof. Woolley) ने, ऊर-नगर में उत्खनन करते समय, ८ फीट गहराई की मिट्टी और कीचड़ की एक तह का आविष्कार किया, जो निश्चय ही उस भयंकर बाढ़ का अवशेष था। यह भयंकर बाढ़ फरात नदी की था, और चूंकि ऊर-नगर बिल्कुल ही इसके तट पर बसा हुआ था, अतः इस भयंकर बाढ़ ने इस शहर को बिल्कुल ही तहस-नहस कर दिया होगा।

सुमेरिया के इन प्राचीन ऐतिहासिक कहानियों के लेखक पुरोहित ही होते थे। इन्होंने प्रलय के ४३२,००० वर्ष के पहले की प्राचीन राजवंशों की सूची तैयार की। इन राजवंशों के दो सम्राट, ताम्मुज़ (Tammuz) और गिलगामेश (Gilgamesh) इतने प्रसिद्ध हुये कि बैबिलोनिया वालों ने गिलगामेश को देवता का स्थान दिया और युनानियों ने ताम्मुज़ का रूप बदलकर उसे 'एडोनिस' (Adonis) के नाम से पुकारा।

परन्तु जिन पुरातत्वविदों ने इन प्राचीन शहरों के ध्वंसावशेष की उत्खनन की है वे सुमेरीय सभ्यता को इतना प्राचीन मानने के लिये तैयार नहीं है। उदाहरणस्वरूप वे निप्पुर-नगर की सभ्यता ५,२६२ ई० पू०, कीश-नगर की ४,५०० ई० पू० और ऊर-नगर की ३,५०० ई० पू० मानते हैं।

सुमेरीय नगर-राज्य एवं उनका इतिहास

इन पुरोहित ऐतिहासिकों के द्वारा ३००० ई० पू० तथा उसके पश्चात लिखे गये मिट्टी के चौकोर टुकड़ों से, हमें सुमेरीय नगर-राज्य का संक्षिप्त परन्तु आकर्षक विवरण प्राप्त होता है। नीचे इन नगर-राज्यों का ढंगपूर्वक वर्णन दिया जाता है:-

लगाश का नगर-राज्य

इस राज्य का सम्राट ईयान्नतुम, सुमेरीय के उन प्राचीन शासकों में गिना जाता है जिनकी निश्चित तिथि उपलब्ध है। सम्राट ईयान्नतुम (Eannatum) लगाश (Lagash) नगर-राज्य के पटेसी थे। इनकी तिथि ३००० ई० पू० मानी जाती है। यह बड़ा ही पराक्रमी शासक था। पड़ोस के नगर-राज्य उम्मा तथा ईलमवर वालों को परास्त कर बड़ा यश कमाया। उम्मा नगर-राज्य की विजय की स्मृति में 'Stele of the Vultures' उत्कीर्ण किया गया जिसमें सुमेरीय सेना को कतार बनाकर बल्लम लिए हुये अग्रसर होते हुये दिखाया गया है और उनकी रक्षा के लिये ढालधारी (Shield bearers) सेना भी साथ है।

इनके बाद लगाश-शासकों में ऊरुकगिमा (Urukgima) का, नाम

अधिक प्रसिद्ध है। इनका समय काल २९०३ ई० पू० माना जाता है। ये बड़े भारी सुधारक थे। इन्होंने राजाज्ञा के द्वारा धनियों के द्वारा गरीबों का शोषण तथा पुरोहितों के द्वारा जनता का शोषण बन्द करवा दिया। उदाहरणस्वरूप इनकी एक राजाज्ञा में इस प्रकार आदेश दिये गये हैं, "अब से प्रधान पुरोहित किसी गरीब माता के बगीचे में आकर न तो लकड़ी, और न तो कर के रूप में उनसे फल ग्रहण करेगा।" इस महान् सम्राट ने शव-दाहन का शुल्क (burial fees) घटा कर $\frac{1}{4}$ करवा दिया, तथा देवताओं की श्रद्धा में उत्सर्ग किए गये आयकर तथा मवेशी को पुरोहित-सम्प्रदाय तथा राजकीय अफसरों को आपस में बँटवारा करने की मनाही कर दी। इस प्रकार निरंकुश शासक होते हुये भी उसने अपनी प्रजा को वास्तविक स्वतंत्रता प्रदान की।

परन्तु लगाश-राज्य के ये सुख के दिन अधिक दिन तक स्थायी न रहे। २८९७ में ईरेक-राज लुगल-जगिसी (Lugal-Zaggisi) ने लगाश-राज्य पर आक्रमण कर, उसके मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट किया, जनता का कत्ले-आम किया तथा देवी-देवताओं की मूर्तियों को ज़ंजीर में बाँध कर ले गया। इस प्रकार ऊरुकगिमा का पतन तथा लगाश-राज्य का गौरव-रवि अस्त हुआ।

लगाश-सम्राट गुडिया (Gudea)

परन्तु लगाश-राज्य का अहोभाग्य था कि २६०० ई० पू० में महान्-सम्राट गुडिया उसका शासक बना। इनके शासन-काल में लगाश-राज्य एक बार फिर से चमक उठा। यह कला तथा साहित्य एवं धर्म का प्रेमी एवं पृष्ठपोषक था। इसने कई मन्दिरों का निर्माण करवाया और प्राचीन साहित्य के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया। सम्राट ऊरुकगीमा की भाँति इन्होंने भी धनियों के शोषण से रक्षा की और सामाजिक भेद-भाव को काफी मिटाने की कोशिश की। इनके एक लेख में इनकी नीति स्पष्ट झलकती है, "सात वर्ष तक नौकरानी अपने मालकिन के बराबर रही, और गुलाम अपने मालिक के साथ कदम मिला कर चलता रहा। मेरी राजधानी में दुर्बल और शक्तिशाली साथ-साथ सोते रहे।"

"During Seven years the maid-servant was the equal of her mistress, the slave walked beside his master, and in my town the weak rested by the side of the strong"

Will Durant's "Our Oriental Heritage," p. 122.

ऊर-नगर-राज्य तथा चाल्डीया या खाल्दीया वंश (The city-state of Ur and the Chaldeans):—

ऐतिहासिकों के मतानुसार इस नगर-राज्य का उत्थान ३,५०० ई० पू० में हुआ और ७०० ई० पू० तक यह राज्य कायम रहा। इस राज्य का सबसे

प्रधान सम्राट ऊर-ईगुर (Ur-Engur) था, जिसने सारे पश्चिम एशिया पर अपना आधिपत्य स्थापित किया, और समस्त सुमेरिया के लिये एक शासन-विधान का निर्माण किया जो इतिहास में प्रथम शासन-विधान माना जाता है। ये सूर्य-देवता शमस के अनुयायी थे क्योंकि अपनी घोषणा (declaration) में इनका कहना है कि, "सूर्य देवता के पवित्र-नियमों के कारण मैंने सर्वदा के लिए न्याय की स्थापना की है।"

केवल न्याय-स्थापना से ही यह महान् सम्राट सन्तुष्ट न था। इसने ऊर-नगर में सुन्दर-सुन्दर मन्दिरों की स्थापना की, ओर अपने आधीन लसा, (Lassa) ऊरुक (Uruk) तथा नीप्पुर (Nippur) शहरों में सुन्दर-सुन्दर भवन बनवाये। इनका सुयोग्य पुत्र दुंगी (Dungi) ने भी अपने दीर्घ ५८ वर्ष के शासनकाल में अपने पिता के महान कार्यों को जारी रक्खा और सुचारु शासन-विधि द्वारा अपनी प्रजा को अपार सुख तथा स्वर्गीय आनन्द प्रदान किया। इन सब कारणों से इनकी प्रजा इनको देवता मानकर इनकी श्रद्धापूर्वक पूजा करने लगी।

परन्तु ऊर-नगर-राज्य का यह स्वर्ण-युग केवल २४७४ ई० पू० से २३९८ ई० पू० तक ही कायम रहा। थोड़े ही दिनों के पश्चात् पूर्व से ईलमी (Elamites) और पश्चिम से अमोरी (Amorites) जातियों ने मिलकर इस सुन्दर तथा वैभवशाली नगर-राज्य पर आक्रमण कर इसे तहस-नहस कर दिया। अतः सुमेरिया पर २०० वर्ष तक इन जातियों का राज्य रहा। फिर महान् सम्राट हम्मुराबी (२११७–२०९४ ई० पू०) के उत्थान के साथ-साथ सुमेरिया में इनके शासन का अन्त हो गया।

अक्काद नगर-राज्य और उसका प्रथम शासक सार्गोनि प्रथम

इस समय २८७२ ई० पू० में अक्काद नगर का महान् शासक सार्गोनि प्रथम का आर्विभाव होता है, जिसने सुमेरिया तथा अक्काद को मिलाकर एक नवीन राज्य की नींव डाली। इसकी राजधानी सुमेरिया नगर-राज्य के उ०-प० में, २०० मील दूर पर स्थित एगैड शहर (Agade) में थी।

यह सामी नस्ल (Semitic race) का था और क्रमशः इसने अमोरी तथा ईलमी जातियों को परास्त कर उनको भी अपने अधिकार में कर लिया। अब इसका विशाल साम्राज्य पूर्व में ईलम तथा पश्चिम में सुमेरिया तथा अक्काद होते हुये भूमध्य सागर तक फैल गया।

इसने अपने सम्पूर्ण साम्राज्य को जिलों में बाँट दिया और उनके शासन के लिये जिलाधीश नियुक्त कर दिये। सुमेरीय तथा सामी, दोनों ही जाति के लोग जिलाधीश नियुक्त होते थे।

इस महान् सम्राट ने ५५ वर्ष तक राज्य किया। मानव-इतिहास में सर्गोनि-प्रथम को ही हम प्रथम विशाल-साम्राज्य के संस्थापक कह सकते हैं।

इन्होंने प्राचीन अनुशासन, धार्मिक तथा तन्त्र-मन्त्र सम्बन्धी पुस्तकों का अनुवाद सामी भाषा में करवाया तथा उनको एकत्रित कर ईरेक नगर के मन्दिर में सुरक्षित रखवा दिया। असीरीय सम्राट असुरबानीपाल ने १५०० वर्ष पश्चात् इन्हीं की नकल करवा कर अपनी राजधानी नीनेव (Nineveh) ले गया।

सार्गोनि-प्रथम विशाल साम्राज्य की स्थापना से ही सन्तुष्ट न रहा। सम्पूर्ण राज्य में उसने यातायात का सुन्दर प्रबन्ध किया ताकि व्यापारियों को, तथा विद्रोह के समय सैनिकों के आने-जाने में असुविधा न हो। परन्तु तब भी उसके राज्य के, अन्तिम चरण में, यत्र-तत्र विद्रोह हुये।

इसके बाद इनके उत्तराधिकारी इनके तीन पुत्र हुये जिनमें नरम-सीन (Naram-Sin) सबसे प्रसिद्ध सम्राट हुआ। डि मार्गन (De Morgan) महोदय ने, १८९७ ई० में, सूसा नगरी में उत्खनन कार्य के समय, नरम-सीन की एक उत्कीर्ण प्रस्तर-चित्र (Relief picture) प्राप्त की, जो 'Stele of Naram-Sin' के नाम से प्रसिद्ध है और इस समय पेरिस नगरी के लुवर संग्रहशाला (Louvre Museum) में सुरक्षित है। यह प्रस्तर-चित्र उनके विजय-यात्रा की स्मृति में उत्कीर्ण की गयी है क्योंकि इसमें सम्राट नरम-सीन, तीर धनुष से सुसज्जित अपने पदानत शत्रुओं को पैरों से कुचलते हुये दिखाये गये हैं। सामने एक शत्रु के गर्दन में तीर चुभने के कारण वह जमीन पर गिरा जा रहा है और अन्य शत्रु भी कातर दृष्टि से सम्राट की ओर देख रहे हैं। पीछे ज़ेग्रोस पहाड़ (Zagros mountains) दिखायी दे रहे हैं।

इनके शासन काल में सुमेरीय तथा सामी (Semetic) दोनों ही जाति के लोग, शान्तिपूर्वक, साथ-साथ रहते थे। सामी जाति अपेक्षाकृत कम सभ्य थी, अतः उन्होंने सुमेरीय सभ्यता की सारी विशेषताओं को अपना लिया। परन्तु सामी-भाषा अधिक जन-प्रसिद्ध हो गयी, केवल धार्मिक तथा उत्सवादि के मौके पर ही सुमेरीय भाषा का प्रयोग होने लगा। सामी-लोग बड़े ही कुशल तथा चतुर व्यापारी थे और व्यापार के द्वारा मेसोपोटेमिया की सभ्यता को चारों ओर फैलाया।

सुमेरीयों का आर्थिक-जीवन

सुमेरीयों के शहर अधिकतर फरात नदी के किनारे बसे हुये थे। जल-मार्ग से आवागमन तथा व्यापार करने के कारण शीघ्र ही उत्तर में बैबिलोनिया तथा उसकी सभ्यता का प्रसार हुआ। नदी से सिंचाई के लिये नहर लाने

की प्रथा ४००० ई० पू० में ही सुमेरीयों को मालूम था। अतः यहाँ पर नाना प्रकार के गल्ले, जौ, सब्जी, तथा खजूर बहुतायत से पैदा होते थे। खेती के लिये हल तथा बैल का प्रयोग होता था। पके हुये गल्ले को काटने के लिये लकड़ी में लगी हुई पत्थर की दांतवाली एक विशेष प्रकार के हँसुऐ का प्रयोग होता था। जौ काटने के लिये मिट्टी की बनो हुई हँसिये का प्रयोग होता था।

कताई-बुनाई के लिये सम्राट की ओर से विशेष अफसर नियुक्त होते थे।

नदी के रास्तों से व्यापार काफी होते थे। इसका प्रमाण वहाँ पर प्राप्त मिट्टी के चौकोर टुकड़ों पर लिखित व्यापारिक समझौते ही हैं। लेन-देन के मामले में १५% से लेकर ३३% तक सूद वसूल किया जाता था।

समाज तीन वर्गों में बँटा हुआ था—धनी, मध्यम तथा दरिद्र। रोगों को दूर करने के लिये नाना प्रकार की औषधी का प्रयोग होता था।

सुमेरीय शासनतन्त्र

नगर-राज्य का प्रधान 'पटेसी' कहलाता था जिससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय शासन-तन्त्र और धर्म एक साथ मिला हुआ था क्योंकि प्रधान शासक, प्रधान पुरोहित का भी कार्य करता था। वह आम जनता से दूर, ऊँचे पर निर्मित महल में रहता था, जिसमें आने जाने का एक ही रास्ता था—केवल दोनों ओर गुप्त-स्थान होते थे जहाँ पर उसके अंग-रक्षक छिपकर आने जाने वालों पर नज़र रखते थे। प्रधान शासक का मन्दिर भी उसी के महल में ही होता था।

युद्ध में शासक रथ पर चढ़कर सेना को नियन्त्रित करते थे। सुमेरीय सेना युद्ध में निपुण थी और कन्धे से कन्धा मिलाकर तथा कतार बनाकर (phalanx) बल्लम लिये हुये लड़ती थी। बल्लम, ढाल, तीर तथा धनुष उनके हथियार थे। सैनिक सर पर रक्षा के लिए चमड़े की टोपी पहनते थे।

युद्ध में पराजित सैनिकों के साथ बड़ा निर्दय तथा क्रूर व्यवहार किया जाता था। देवताओं के नाम पर उनको बलि दी जाती थी—या वे गुलाम बनाकर बेंच डाले जाते थे।

राज्य की मुख्य आय, कर (tax) तथा मालगुजारी से होता था। जनता अधिकतर वस्तु के रूप में (in kind) कर प्रदान करती थी, जिन्हें सरकारी गोदामों में एकत्रित रक्खा जाता था और सरकारी अफसरों को वेतन के रूप में बाँटा जाता था।

न्याय तथा कानून-विधि

सुमेरिया नगर-राज्यों में सर्वप्रथम ऊर-नगर-राज्य के शासक ऊर-ईंगर

और उनका पुत्र डुंगी ही ने संघवद्ध रूप से कानूनों को बनाया जिससे शासन तथा न्याय में बड़ी सुविधा हो गयी। इनके कानून ही आगे चलकर बैबिलोनीय सम्राट हम्मराबी के प्रसिद्ध कानूनों के जन्मदाता बने।

उस समय के मन्दिर ही न्यायालय और पुरोहित न्यायाधीश होते थे। कभी-कभी समझौते के द्वारा भी आपसी झगड़े तय हो जाते थे और न्यायालय में वादी-प्रतिवादी को उपस्थित नहीं होना पड़ता था।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि वर्तमान सभ्यता के सभी विशिष्ट प्रथाओं का मूल तथा उद्गम स्थल (place of origin) प्राचीन सुमेरीय सभ्यता ही था।

बैबिलोनिया या बाबुली सभ्यता

सुमेरीय-सभ्यता के पश्चात् मैसोपोटेमिया के रंगमंच पर जिस सभ्यता का आविर्भाव होता है उसे हम बैबिलोनीय या बाबुली-सभ्यता के नाम से पुकारते हैं। इसका पहले ही उल्लेख किया गया है कि इस देश की तुलना ईडेन-उद्यान (Eden Garden) से की गई है।

निवासी

अक्कादि एवं सुमेरी जातियों के मिश्रण से बैबिलोनी या बाबुली जाति की उत्पत्ति हुई। अतः इसे हम सेमेटिक सभ्यता भी कहते हैं, यद्यपि इस सभ्यता में सुमेरी सभ्यता की पुट काफी मात्रा में पायी जाती है।

इस देश की राजधानी बैबिलोन या बाबुल थी। इस देश के प्रथम राज्य वंश का राज्यकाल २१६९ ई० पू० से १९२६ ई० पू० माना जाता है।

सम्राट हम्मुराबी (२१२३ ई० पू०—२०८१ ई० पू०)

इस वंश के प्रधान शासक सम्राट हम्मुराबी माने जाते हैं। इन्होंने २११७ ई० पू० से लेकर २०९४ ई० पू० के बीच में सुमेरीया तथा ईलम को जीतकर अपने विशाल साम्राज्य में मिला लिया। केवल इतना ही नहीं इस महान् सम्राट ने ४३ वर्ष तक अमोर तथा असीरियों के काफी भाग पर सकुशल राज्य किया। अतः ये पराक्रमी शासक थे, इसमें संदेह नहीं।

सम्राट हम्मुराबी का शासन-विधान या विधान-संहिता (Code of Laws)

सम्राट हम्मुराबी केवल एक कुशल योद्धा तथा विजयी शासक ही नहीं थे। मानव सभ्यता के इतिहास में उसकी महान देन है उसका शासन-विधान।

निरंकुश-सम्राट होते हुये भी उसने बड़े ही सुन्दर ढंग से जन-कल्याण तथा जनता की भलाई के लिये जिस शासन-विधान की उद्भावना की, वह आज भी विद्वानों के द्वारा समादृत होता है।

विधान-संहिता (Code of Laws)

हम्मुराबी का विधान-सहिता एक लम्बे एवं गोल पत्थर पर खुदी हुई—ईलम के सूसा नगरी में १९०२ ई० में उत्खनित (excavated) किया गया है। यह पत्थर इस समय फ्रांस के लुवर संग्रहशाला में सुरक्षित है। इसमें सम्राट हम्मुराबी सूर्य-देवता शमश (Shamsh) से शासन-विधान ग्रहण करते हुये देखे जा रहे हैं। इस प्रशस्ति में बाबुली देवता जैसे अनु, बेल तथा मार्डूक का नाम उल्लिखित है। इससे यह भी पता चलता है कि हम्मुराबी के न्याय सम्बन्धी विचार बड़े ही ऊँचे थे। इस-विधान में साम्राट ने कहा है कि "मैंने देवता अनु और बेल के निर्देश से, सारे राज्य में न्याय स्थापना के लिये, दुराचारी तथा शैतानों को नष्ट करने के लिए, दुर्बल को शक्तिशाली के दबाव से रक्षा के लिये, देश को जाग्रत करने तथा जन-कल्याण के लिए इस शासन विधान का प्रवर्तन किया है"

".....At that time Anu and Bel called me, Hammurabi, the exalted Prince, the worshipper of gods, to cause justice to prevail in the land, to destroy the wicked and the evil, to prevent the strong from oppressing the weak.....to enlighten the land and to further the welfare of the people....."

Will Durant's Oriental Heritage, p. 219.

हम्मुराबी के अनुशासन में २८५ नियम बड़े ही वैज्ञानिक ढंग से, निम्न-लिखित शीर्षकों में दिये हुये हैं। जैसे (१) व्यक्तिगत सम्पत्ति, (२) जमीदारी (Real Estate), (३) व्यापार तथा वाणिज्य, (४) परिवार (Family), (५) क्षति एवं नुकसान सम्बन्धी अपराध (Injuries) एवं (६) श्रम तथा श्रमिक (Labour)।

सम्राट हम्मुराबी के जन-कल्याण सम्बन्धी कार्य

इसी प्रशस्ति से हम्मुराबी के जन-कल्याण सम्बन्धी कार्यों का भी विवरण प्राप्त होता है। जैसे:—

(१) उसने फारस की खाड़ी तथा कीश नगर के बीच में नहर खुदवाकर दक्षिण के शहरों को दजला नदी के बाढ़ से बचाया। इस नहर के कारण सिंचाई की भी सुविधा हो गयी।

(२) उसने अपने नाम से 'हम्मुराबी-नुखुश-निशि' (Hammurabi-Nukhush-Nishi) नामक नहर खुदवाया, उसके दोनों किनारे की भूमि को कृषि-योग्य बनाया। अब सुमेर तथा अक्काद में गल्ले तथा जल की कमी न रही।

(३) राज्य की ओर से अनाज एकत्रित करने के लिए एक विशाल खलिहान (granary) बनवाया।

(४) फरात नदी के ऊपर उसने एक पुल बनवाया ताकि बैबिलोन शहर का विकास नदी के दोनों ओर हो सके।

(५) नदी के द्वारा व्यापार को भी उसने प्रोत्साहन दिया। दजला तथा फरात नदियों में बड़े-बड़े व्यापारिक जहाज़ आने-जाने लगे जिससे देश थोड़े ही दिनों में समृद्धिशाली हो गया।

ऐतिहासिक Will Durant का कहना है :—

"Two thousand years before Christ, Babylon was already one of the richest cities that history had yet known" (p. 222)

Will Durant ने अपनी पुस्तक "Our Oriental Heritage" में एक अन्य विद्वान Christopher Dawson का उल्लेख किया है जिनका कहना है :—

"In all essentials Babylonia, in the time of Hammurabi, and even earlier, had reached a pitch of material civilisation which has never been surpassed in Asia." Our Oriental Heritage, p. 222 f.n.

इस प्रकार हम देखते हैं कि सम्राट हम्मुराबी ने अपनी कृषि तथा नहर-योजना एवं शासन-सम्बन्धी सुधार के द्वारा २००० ई० पू० में ही बैबिलोनिया को पूर्वी देशों का सबसे सभ्य तथा धनी शहर बना दिया। इस सम्राट ने कई दुर्ग भी बनाये और शहर बैबिलोन में मार्डूक-देवता का विशाल-मन्दिर निर्माण किया।

बैबिलोनिया के निवासी, उनकी पोशाक तथा अलंकार

यहाँ के निवासी सेमेटिक जाति के थे तथा दाढ़ी मूँछ एवं सर पर बाल रखते थे। स्त्री-पुरुष, दोनों सर पर बड़े-बड़े घुंघराले बाल रखते थे। बाबुल-निवासी प्रचुर मात्रा में सुगन्ध व्यवहार करते थे। इनकी पोशाक पैर तक पहुँचता हुआ सफेद लबादा होती थी। स्त्री का एक बाँह खुला रहता था, परन्तु पुरुष इस लबादे के ऊपर भी पोशाक पहनता था। उसके सर पर पगड़ी होती थी। देश की आर्थिक उन्नति तथा निवासियों के धन-वृद्धि के साथ-साथ उनकी पोशाक भी तड़कीली-भड़कीली होने लगी। लाल, नीला, धारीदार (stripes), वृत्ताकार (circular), बूटीदार या चेक डिज़ाइनों के कपड़ों का

बहुतायत से प्रयोग होने लगा। अब लोग पैरों पर सैंडल तथा जूते पहनने लगे। स्त्रियाँ हार, बाजूबन्द, ताबिज़ (amulets) तथा गुंथे हुए बालों में मोतियों की लड़ियों से सुशोभित होने लगीं। पुरुष मूँठवाली या टेढ़ी छड़ियों का प्रयोग करने लगे। उनके कमर में नक्काशीदार सीलमोहर शोभा पाने लगा जिससे वे अपनी चिट्ठी-पत्री तथा अन्य आवश्यकीय कागजों (documents) पर मोहर लगाते थे। पुरोहितों ने अपनी विशेष पहचान के लिए सर पर कोनदार टोपी का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया।

बाबुली सभ्यता का अन्त

यह एक कठोर ऐतिहासिक सत्य है कि जिस धन-वृद्धि तथा आर्थिक-उन्नति के कारण भौतिक-सभ्यता का विकास होता है, उसी के कारण उस सभ्यता का विनाश भी होता है। स्पष्ट कारण यह है कि धन-वृद्धि के साथ-साथ ऐश और आराम भी बढ़ जाता है, फलतः उस देश के निवासी या वह जाति धीरे-धीरे आलसी, अविवेकी तथा अपरिश्रमी हो जाती है। ऐसी अवस्था में जब उसके सैनिक-शक्ति का ह्रास होता है, तो आसानी से वह देश या जाति, विदेशी जाति या जातियों के आक्रमण से अपनी रक्षा नहीं कर सकता और उसका पतन हो जाता है।

कस्साईट-जाति का आक्रमण

बाबुल भी इसी दशा को प्राप्त हुआ। उसके धन-ऐश्वर्य पर कस्साईट (Kassites) जाति की दृष्टि पड़ी और शीघ्र ही उन्होंने बाबुल पर आक्रमण कर दिया। कस्साईट जाति के लोग, खानाबदोश तथा असेमेटिक (non-Semitic) जाति के थे। इन दोनों जातियों के संघर्ष से, स्वाभाविक था, कि इस काल में कला एवं विज्ञान की कोई उन्नति न हो सकी। कस्साईट-जाति ने ६०० वर्ष तक बैबिलोनिया पर राज किया, तत् पश्चात वे बाबुल से निकाल दिये गये।

अन्धकार-युग

इसके बाद ४०० वर्ष पर्यन्त बाबुल का इतिहास प्रायः अस्पष्ट तथा अंधकारमय रहा। इसके पश्चात् बाबुल पर असीरियों का आधिपत्य हो गया। परन्तु बाबुल-निवासी अधिक दिन तक गुलामी सहने के पश्चात् अब स्वाधीनता के लिये व्याकुल हो उठे—उन्होंने विद्रोह कर दिया। परन्तु असीरीय-सम्राट सेन्नाचेरीब (Sennacherib) ने विद्रोह का दमन बड़ी ही निर्दयता-पूर्वक किया तथा बैबिलोन शहर को उजाड़ डाला। सौभाग्यवश उसके परवर्त्ती-साम्राट ईस्सरहैड्डेन (Essarhaden) (६८१ ई० पू०–६६९ ई० पू०) उदार-

मतावलम्बी था। उसने बैबिलोन शहर का पुनरुद्धार किया और उसके विगत वैभव को पुनः स्थापित करने की पर्याप्त चेष्टा की।

इसी समय उत्तर-पूर्व के मिडिस (Medes) जाति के आक्रमण से असीरीय-साम्राज्य दुर्बल हो गया। इसी मिडिस जाति के सम्राट साईकसरास की सहायता से सम्राट नेबोपलेस्सर (Nebopolessar) ने पुनः स्वाधीनता प्राप्त करते हुए बैबिलोन को असीरियों की शृंखला से मुक्त किया और बाबुल में द्वितीय राजवंश की स्थापना की।

बाबुल का द्वितीय राजवंश–६२५ ई० पू० से ५३८ ई० पू० (Second Babylonian Dynasty)

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, इस वंश का संस्थापक तथा प्रथम सम्राट नेबोपलेस्सर था जिसने ६२५ ई० पू० से ६०५ ई० पू० तक बाबुल पर राज्य किया। इस वंश को इतिहास में चाल्डी वंश तथा इनका साम्राज्य चाल्डी-साम्राज्य (Chaldean Empire) भी कहा जाता है। उसका लड़का नेबुचडरेज्जर (Nebuchadrezzer) बड़ा ही पराक्रमी तथा योग्य शासक हुआ। उसके समय में बाबुल पुनः उसी वैभव को प्राप्त हुआ जो कि वह सम्राट हम्मुराबी के समय प्राप्त कर चुका था। आगे इसी महान् सम्राट की कृतियों का उल्लेख किया जा रहा है।

युद्ध तथा साम्राज्य-विस्तार

नेबुचडरेज्जर के समय में मिश्र तथा असीरिया वालों का सम्मिलित आक्रमण बैबिलोनिया पर हुआ। परन्तु असीम पराक्रम तथा बहादुरी दिखाते हुये नेबुचडरेज्जर ने उन्हें फरात नदी के निकट कारकेमीश (Carchemish) के मैदान में बुरी तरह परास्त कर दिया। इसके बाद उसने फिलीस्तीन तथा सीरिया पर विजय प्राप्त करते हुये अपने साम्राज्य में मिला लिया। अब उसका साम्राज्य फारस की खाड़ी (Persian Gulf) से लेकर रोम सागर (Mediterranean Sea) तक फैल गया।

नेबुचडरेज्जर के महल तथा इमारतें

केवल साम्राज्य-विस्तार से ही यह महान् सम्राट सन्तुष्ट न रहा। अपने ४३ वर्ष के शासन-काल में बैबिलोनिया में उसने कई भव्य महल तथा इमारतें बनवाई जो कला की दृष्टि से बहुत ही उच्च कोटि की थीं। बैबिलोनिया पुनः पूर्वी देशों का सबसे बड़ा तथा शानदार नगर हो गया। उसने व्यापार तथा व्यापारियों के ऊपर भी कर लगाये और इस धन से उसने अपनी राजधानी

की शोभा बढ़ायी। यूनानी ऐतिहासकार हेरोडौटस ने इस राजधानी को १५० वर्ष के बाद देखने के पश्चात उसका विवरण इस प्रकार किया है :—

"पूरी राजधानी एक खुले तथा चौड़े मैदान में स्थित है। इसके चारों ओर ५६ मील चौड़ी दीवाल इसकी सुरक्षा के लिये बनवाई गई जिसकी चौड़ाई इतनी अधिक है कि उस पर चार घोड़ों का रथ आसानी से दौड़ सकता है। यह नगर फरात नदी के दोनों ओर, २०० वर्गमील तक विस्तृत है, तथा नदी के दोनों किनारों पर खजूर के वृक्ष सुशोभित हैं। नगर की अधिकतर ईमारतें ईंटों की बनी हुई हैं तथा उन रंगबिरंगी खपरैलों (enamelled tiles) को सजावट है। इमारतों पर योद्धा तथा जानवरों के उत्कीर्ण चित्र (Relief figures) पाये जाते हैं। इन महलों के सभी ईंटों पर यह लेख खुदा हुआ है, "मैं नेबुचडरेज्जर, बैबिलोन का बादशाह हूँ"—(I am Nebuchadrezzer, King of Babylon.)।

सम्राट नेबुचडरेज्जर की धार्मिक एवं कलात्मक कृतियाँ

सम्राट नेबुचडरेज्जर ने धर्म तथा मन्दिर की ओर भी ध्यान दिया। बैबिलोनिया के उपास्य देवता बाबेल (Babel) की उपासना के लिये उसने एक विशाल मन्दिर बनवाया, जिसे जिगुरात (Ziggurat) कहा जाता है। यह मन्दिर सतमंजिला तथा ६५०' ऊँचा था। वस्तुकला की दृष्टि से यह जिगुरात सम्राट नेबुचडरेज्जर की अनुपम कृतियों में से थी। हिब्रू-किंवदन्ती के अनुसार इसी को शायद (Tower of Babel) या 'बाबेल का बुर्ज' भी कहते हैं।

इस मन्दिर के सबसे ऊपर एक सोने का वर्गाकार तख्ता (a square-tablet) बना हुआ था जिस पर हर रात को बाबुल-देवता को सन्तुष्ट करने के लिए एक स्त्री शयन करती थी। मन्दिर का कोई भी आगन्तुक, जो बाबुल-देवता की उपासना के लिये मन्दिर में प्रवेश करता था, को यह अधिकार था कि उस स्त्री के साथ संभोग करे। इस प्रथा को बड़ा ही पवित्र समझा जाता था और समाज में ऐसी स्त्रियाँ बड़ी ही श्रद्धा की दृष्टि से देखी जाती थीं और उनसे विवाह करने के लिए नवयुवकों में स्पर्धा बढ़ जाती थी। धर्म के नाम पर कब और कैसे इस कुप्रथा का प्रारम्भ बाबुली समाज में हुआ यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। परन्तु चूंकि उस समय समाज में धर्म, देवता तथा उसके मंदिर एवं पुरोहितों का बोलबाला था, अतः उन्होंने जिस प्रथा को समाज पर लागू और चालू किया वही समाज के लिए मान्य हो गयी।

इसी जिगुरात के दक्षिण में मार्डूक देवता का मंदिर था। इस मंदिर में जाने का रास्ता ईंटों का बना हुआ था और उस पर कोलतार (asphalt)

चढ़ी हुई थी। इसके ऊपर चूने से पलस्तर किया गया था। इस रास्ते के दोनों ओर रंगीन खपरैलों की (Coloured tiles) दीवालें थी जिसके अन्तिम भाग पर २० चमकीले सिंह बने हुये थे। इसी सड़क की दूसरी ओर देवी ईश्तार का फाटक था (Ishtar gate) जिस पर नाना प्रकार के चमकीले फूल और जानवर बने हुये थे।

सम्राट नेबुचडरेज्जर का महल तथा ऐतिहासिक झूला-उद्यान (Hanging Gardens of Babylon)

बावेल-बुर्ज (Tower of Babel) के उत्तर में ६०० गज की दूरी पर सम्राट नेबुचडरेज्जर ने एक ऊँचे टीले पर (जो केस्र या Kasr कहलाता था) बीचोबीच अपना निजी महल बनवाया, जिसकी दीवारें पीले ईंटों की तथा फर्श सफेद बलूये पत्थर के बने हुये थे। इस फर्श पर चमकीले तथा नीले रंग की चित्रकारी सुशोभित थी। महल के प्रवेश-द्वार पर बसल्ट (Basalt) पत्थर के सिंह की मूर्ति बनी हुई थी। यह महल कला तथा सौन्दर्य की दृष्टि से उनके अन्य महलों में सर्वोत्तम था।

इसी महल के समीप सम्राट ने इतिहास प्रसिद्ध झूला-बगीचा बनवाया जो ऊँचे गोल स्तंभों (Colonnades) पर अवलम्बित था और जिसकी कारीगरी से दंग होकर यूनानी ने इसे 'Seven Wonders of the World' यानी "विश्व के सात अद्भुत कृतियों' में शामिल किया। इस अद्भुत महल को सम्राट ने अपनी खास बेगम के लिये बनवाया था जो मिडिस-सम्राट Cyaxeares की लड़की थी, और पहाड़ी-मुल्क के निवासी होने के कारण, बैबिलोनिया की प्रचंड गर्मी को नहीं सहन कर सकती थी। इनके आराम के लिए सम्राट ने झूला- बगीचा के उपर भी एक और बाग बनवाया और उसे फल-फूलों के वृक्ष तथा पहाड़ी-वृक्षों के द्वारा सुशोभित किया। इस बगीचे में पानी के इंजन (Hydraulic engines) के द्वारा पानी ऊपर चढ़ाया जाता था। पानी लाने के लिए कई हजार गुलाम नियुक्त थे जो फरात नदी से पानी लाकर इंजन तक पहुँचाते थे। यह झूला-बगीचा अब भी संसार के 'सप्त आश्चर्यों' में गिना जाता है। इस झूले-बगीचे में सम्राट की बेगमें तथा उनकी दासियाँ, आम जनता की दृष्टि से ओझल, आजादी से घूम-फिर सकती थीं। शायद इसी बगीचे को काल्पनिक-रूप में Eden-Garden के नाम से बाइबिल एवं अँग्रेज कवि मिल्टन के Paradise Lost में वर्णित किया गया है।

क्या नीचे रहने वाले, समाज के निम्न स्तर के प्राणी, कभी भी इस स्वर्गीय-सुख की कल्पना कर सकते थे? Will Durant साहब का कहना है :—

"Here, seventy-five feet above the ground, in the cool shade of tall trees, and surrounded by erotic shrubs and fragrant flowers, the ladies of the royal harem walked unveiled, secure from the common eye, while in the plains and streets below, the common man and woman ploughed, wore, built, carried burdens, and reproduced their kind."

द्वितीय बैबिलोनीय राजवंश के समय की आर्थिक एवं सामाजिक दशा (Social and economic condition during the Second Babylonian dynasty)

(१) **कृषि** (agriculture) प्रोफेसर वुली के अनुसार, १४०० ई० पू० की एक मुहर पर हल का चित्र बना हुआ मिला है जिसके साथ बीज बोने के लिए एक नली भी लगी हुई थी। खेतों में मेंड़ बने हुए होते थे। बाढ़ का पानी, हौज या कृत्रिम झीलों में एकत्रित किया जाता था जिनका सम्बन्ध बड़ी-बड़ी नहरों से था। बाढ़ के पानी को इकट्ठा करने के लिए सम्राट ने १४० मील एक विशाल हौज का निर्माण किया था। इसके अलावा भी उसने खेतों में सिंचाई की सुविधा के लिए कई नहरें बनवाईं जिससे कृषि की बड़ी उन्नति हुई। इन हौजों तथा बनावटी झीलों से पानी निकालने के लिए विशेष प्रकार की चर्खियाँ बनी हुई थीं जिन्हें शडूफ (Shaduf) कहा जाता था। ये चर्खियाँ बड़ी-बड़ी बालटियों की शक्ल की थी जो घुमावदार खंभों में (revolving and pivoted pole) लगी रहती थी। इन्हीं के द्वारा पानी खेतों में मेंड़ के ऊपर से खेतों में पहुँचाया जाता था। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि कृषि तथा सिंचाई की उन्नति के लिए सम्राट नेबुचडरेज्जर सतत प्रयत्नशील रहे।

(२) **उपज एवं पैदावार तथा भोजन**—इस प्रकार कृषि की उन्नति होने से पैदावार तथा उपज में पर्याप्त वृद्धि हुई। भिन्न-भिन्न प्रकार की दालें तथा नाना प्रकार के गल्ले एवं फल मुख्यत: बादाम तथा खजूर खूब पैदा किया जाने लगा। बैबिलोनिया वालों का मुख्य भोजन, रोटी, केक या पिष्टक, खजूर की शराब, शहद, दूध, मछली (एवं कभी-कभी गोश्त) थी। यह मुल्क गेहूँ, जैतून (olive) तथा अंगूर का जन्मस्थान माना जाता है और यहीं से ये तीनों चीजें यूनान को भेजी जाती थीं जहाँ से ये सारे योरोप में फैल गये।

(३) **खनिज पदार्थ** (Minerals)—केवल नाना प्रकार की पैदावारें ही नहीं, अपितु भिन्न-भिन्न प्रकार की खानों से भी बाबुल समृद्धिशाली था। मिट्टी का तेल, ताँबा, लोहा, चाँदी और सोना तथा कोलतार की खानें यहाँ पर काफी थीं। गला हुआ कोलतार का उल्लेख यूनानी स्ट्रेबो के विवरण में प्राप्त

होता है। नाना प्रकार के औजार अब कांसा या पीतल (Bronze) के बनाये जाने लगे और धातुओं की ढलाई तथा साँचे का काम जोर-शोर से होने लगा।

(४) **वस्त्र तथा कपास उद्योग**--सूती तथा ऊनी कपड़ों के उद्योगों का पूर्ण विकास इस काल में हुआ। करघे का प्रचलन बाबुल से ही शुरू हुआ। नाना प्रकार के रंगों का प्रयोग कपड़ों को रंगने के लिए किया जाता था जिनकी अथक प्रशंसा यूनानी तथा रोम ऐतिहासिकों ने की है। कहा जाता है कि कपास अधिकतर भारतवर्ष के सिन्ध-प्रान्त से ही आता था, अत: बाबुली-भाषा में कपास का नाम था सिन्डन या Sindon इसी के आधार पर Sidon शहर का नाम पड़ा जो मेसोपोटेमिया के उत्तर में एक प्रसिद्ध शहर था।

(५) **भवन-निर्माण-कला**—भवनों का निर्माण सुन्दर नरम मिट्टी में घास-फूस मिलाकर किया जाता था जो अवश्य ही गर्मियों में काफी ठंडा रहता होगा। गीली मिट्टी के ईंटों से भी मकान बनाये जाते थे जो धूप में सुखकर काफी कड़े हो जाते थे। इन भवनों तथा सिन्ध-घाटी के मोहन-जो-दाड़ो तथा हड़प्पा में पाये गये भवनों में काफी सादृश्य दिखलाई पड़ता है।

(६) **व्यापार तथा व्यापारिक संस्थाएँ**—सम्राट हम्मुराबी के समय से ही व्यापारियों ने अपने अपने विशेष संस्था या समुदाय बना लिया था, जिससे व्यापार की काफी उन्नति हुई। बाबुल के व्यापारी काफिले (Caravan) नदियों के रास्ते से दूर दूर देशों तक व्यापार करते थे। स्थलमार्ग से पहिएदार गाड़ियों के द्वारा व्यापार होता था, जिन्हें गदहे खींचते थे। घोडों के प्रयोग का उल्लेख बाबुल से प्राप्त २१०० ई० पू० लेखों से पता चलता है कि घोड़ों को पूर्वी-गदहे (the ass from the East) कहा गया है। स्वाभाविक है कि करसाईट-जाति के आगमन से बाबुल में घोड़ों का प्रचलन हुआ।

आने-जाने तथा व्यापार की सुविधा के लिए व्यापारिक मार्ग भी इस काल में बनाये गये उस समय बाबुल-नगर, पुर्वी-देशों का प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र था यहीं पर भूमध्यसागरीय देशों के व्यापारी भी व्यापार के लिए एकत्रित होते थे। महान् सम्राट बुचडरेज्जर ने व्यापारीयों तथा निवासियों की यातायात की सुविधा के लिए कई महत्वपूर्ण सड़कों का निर्माण करवाया।

बाबुल-शहर का व्यापारी-मार्ग पूर्व में भारतवर्ष को एकबटाना (Ecbatana), हिरात (Herat) तथा काबुल होता हुआ जाता था। मिस्र से व्यापारी-मार्ग पेलुशियम (Pelusium) तथा फिलीस्तीन (Palestine) होता हुआ बाबुल-शहर को पहुँचता था। एशिया-माईनर तथा बाबुल का व्यापारी मार्ग टायर (Tyre), सिडान (Sidon), सारडीस (Sardis), तथा कारकेमीश (Carchemish) शहरों से गुजरता था। इस प्रकार बाबुल का

व्यापार पूर्व में भारतवर्ष से लेकर पश्चिम में एशिया-माईनर तथा भूमध्य सागर तक फैला हुआ था।

स्वाभाविक था कि बाबुल-नगर थोड़े ही दिनों में बहुत व्यापार के कारण प्रचुर ऐश्वर्यशाली हो गया और यहाँ के निवासी ऐशो आराम की जिन्दगी गुजारने लगे।

परन्तु इन व्यापारी मार्गों में चोरों और डाकुओं का काफी उत्पात था। कभी-कभी तो ये बिल्कुल ही व्यापारियों को लूट लेते थे। व्यापारियों को जिन शहरों से गुजरना पड़ता था, वहाँ के अधिकारी या शासक भी उनसे काफी कर (tax) वसूल करते थे। नदियों के रास्ते से भी व्यापार करना आसान न था। समुद्री-डाकुओं के उत्पात से वहाँ भी व्यापारियों को काफी नुकसान उठाना पड़ता था। आश्चर्य की बात तो यह है कि इतनी कठिनाइयाँ होते हुए भी व्यापारी तथा व्यापार क्रमशः फलता फूलता ही रहा।

(७) **आर्थिक-व्यवस्था** – विनिमय-प्रथा, बाबुल में वैसी ही रही जैसी कि सभी प्राचीन देशों में पायी जाती है। वस्तु के बदले में वस्तु (Exchange by barter) ही उस समय विनिमय की प्रथा थी। परन्तु बाबुल-निवासी सम्राट हम्मुराबी के समय के पहले से ही, सोने और चाँदी के टुकड़ों का प्रयोग विनिमय के लिए करते थे, यद्यपि गल्ले से विनिमय की प्रथा भी उनमें प्रचलित थी। विनिमय के लिए जो चाँदी और सोने के टुकड़ों का प्रयोग होता था उस पर किसी की मोहर नहीं होती थी, फलतः हर विनिमय या क्रय-विक्रय के मौके पर उसकी तौल होती थी। इस प्रकार की आर्थिक विनिमय के लिए आधे आउंस के तौल का चाँदी का टुकड़ा ही इकाई के रूप में प्रयोग किया जाता था जिसे शेकेल(Shekel)कहा जाता था। इस प्रकार ६० शेकेल का १ मीना और ६० मीना का एक टैलेन्ट (talent) होता था। इस प्रकार बाबुल-निवासियों ने अपने निजी व्यवहारों के लिए इन सिक्कों का प्रचलन किया था। ऋण या कर्ज का व्याज, सिक्कों के रूप में २०% और चीजों के रूप में (in kind) ३३%, वसूल किया जाता था। उस जमाने में आजकल की तरह बैंक आदि नहीं होते थे। कुछ शक्तिशाली तथा ऐश्वर्यशाली परिवार ही बैंक के रूप में, आम लोगों को रुपये या गल्ला आदि ऋण के रूप में देते थे, और पीढ़ी दर पीढ़ी इस महाजनी व्यवसाय को चलाते थे। इन परिवारों के सदस्य उद्योग-धन्धों के लिए भी आर्थिक-सहायता देते थे। पुरोहित-वर्ग भी, कृषकों को, जोतने-बोने के लिए ऋण देते थे। अगर अकाल या बाढ़ से किसान को नुकसान पहुँचता था और वह ऋण अदा न कर सकता था तो राज्य की ओर से उसे माफी मिल जाती थी। परन्तु बाबुल के कानूनी सिद्धांत के अनुसार महाजन कर्जदार के गुलाम या लड़के को, कर्ज अदा न करने पर जमानत के

रूप में ले जा सकता था। परन्तु ३ वर्ष से अधिक उसे रखने का अधिकार न था।

बाबुली-सभ्यता प्रधानतः एक व्यापारिक सभ्यता थी। यहाँ पर प्राप्त अधिकांश records या documents ऋण, क्रय-विक्रय (sale and purchase) साझेदारी, उधार, कमीशन-इत्यादि सम्बन्धो पाये गये हैं।

(८) गुलाम एवं दासों की सामाजिक अवस्था—सम्राट नेबुचडरेज्जर के समय में गुलामों को उसी प्रकार खरीदा और बेचा जाता था जैसे अन्यान्य वस्तुएँ—अधिकतर युद्ध-बन्दी या बेदुईन जाति के पकड़े हुए विदेशी जाति के लोग ही गुलाम बनाये जाते थे। पुरुष-गुलाम की कीमत, स्त्री-गुलाम से कहीं अधिक होती थी। मालिक का पूरा अधिकार गुलामों पर होता था। मालिक के घर का सभी काम-काज गुलाम ही करते थे। स्त्री-गुलाम से बच्चे पैदा कर, मालिक उन्हें खुले बाजारों में बेच सकता था। गुलाम की सभी सम्पत्ति एवं वस्तु मालिक की ही समझी जाती थी। कर्जा चुकाने के लिए या जमानत के लिए गुलामों का व्यवहार प्रचलित था। आवश्यकतानुसार मालिक उसे मार भी सकता था। उसे जबर्दस्ती फौज में भर्ती होना पड़ता था, और राजकीय कार्य जैसे नहर की खुदाई या सड़क-निर्माण के लिए उसे जबरदस्ती बेगार करनी पड़ती थी। अगर वह भाग जाता तो उसे शरण देनेवाले को दंड भुगतना पड़ता था और उसे पकड़ने के लिए पुरस्कार घोषित किए जाते थे।

परन्तु मालिक को भी उसकी बीमारी में, या बुढ़ापे में, भलीभाँति देख-भाल करना पड़ता था। अगर वह किसी स्वतंत्र स्त्री से विवाह कर लेता, तो उसके बच्चे गुलामी से मुक्त माने जाते थे। ऐसी अवस्था में उसकी मृत्यु होने पर उसकी आधी सम्पत्ति उसके परिवार की हो जाती थी।

ऐसे गुलामों को मुक्त होने का भी कभी-कभी सुअवसर प्राप्त हो जाता था। अगर वह मालिक के साथ व्यापार करते हुए कुछ पैसे पैदा कर लेता, तो उसे मालिक को देने के पश्चात वह गुलामी से मुक्त हो जाता था। कभी-कभी मालिक भी उसकी दीर्घ दिनों की सेवा तथा कर्मतत्परता से प्रसन्न होकर उसे मुक्त कर देते थे। परन्तु ऐसा अवसर उसके जीवन में बहुत ही कम आता था।

इस प्रकार उस समय के बैबिलोनीय-समाज में गुलामों की अवस्था बहुत ही हीन थी। राज्य की ओर से गुलामी प्रथा को प्रोत्साहन एवं गुलामों के मालिकों को संरक्षण प्राप्त था—अतः इसके विरोध में किसी को कुछ करने का साहस न था। परन्तु हमें भूलना न चाहिए कि इस प्रकार की गुलाम-प्रथा प्रायः सभी प्राचीन देश, जैसे, भारतवर्ष, यूनान, मिस्र, फिलीस्तीन, फ़ारस तथा रोम में भी विद्यमान थी। अतः उस समय के दृष्टिकोण से बाबुल की उक्त गुलाम प्रथा को अधिक दूषित नहीं कहा जा सकता।

(९) बाबुल का शासन-प्रबन्ध तथा कानून—सम्राट हम्मुराबी द्वारा निर्मित विधान-संहिता (Code of Law) ही बाबुल के शासन-प्रबन्ध, न्याय तथा दंड एवं कानून का आधार था। ऐतिहासिक Will Durant महोदय इसकी प्रशंसा करते हुए कहते हैं :—

"Has the law progressed since Hammurabi, or only increased and multiplied ?"

सम्राट निरंकुश शासक होता था और केन्द्रीय अथवा स्थानीय शासकों को उसकी आज्ञानुसार कार्य करना पड़ता था। इन शासकों की सहायता के लिए प्रान्तीय अथवा म्युनिसिपल संसदें होती थीं जिनके सदस्य देश के प्रमुख या बड़े-बूढ़े नागरिक होते थे। सम्राट की मृत्यु के उपरान्त कभी-कभी उनके लड़कों में गद्दी के लिए भयंकर लड़ाई होती थी यद्यपि सम्राट जीवितावस्था में ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर देते थे।

सम्राट हम्मुराबी का शासन-विधान, पन्द्रह सौ वर्ष तक बाबुल के सम्राट तथा शासकों का निर्देशक बना रहा यद्यपि शासन-तंत्र तथा दंड-विधान का रूप बहुत कुछ बदल गया। पहले मंदिर के पुरोहित ही न्यायाधीश तथा मन्दिर न्यायालय होते थे। परन्तु सम्राट हम्मुराबी के समय से ही राजकीय न्यायालय तथा न्यायाधीशों की स्थापना एवं नियुक्ति प्रारम्भ हो गयी थी।

प्रारंभ में दंड-विधान बड़ा ही कठोर रहा एवं अपराधी के अपराध को पता लगाने के लिए प्रायश्चित्त विधि का भी प्रयोग किया जाता था। भारतवर्ष में भी इस प्रकार की प्रायश्चित्त-विधियाँ प्रचलित थीं जो मनुसंहिता में पायी जाती हैं। वस्तुतः बाबुल में हम्मुराबी की विधान-संहिता उतनी ही महत्वपूर्ण थी जैसी कि प्राचीन भारतीय समाज तथा जीवन में मनु-संहिता। अन्तर केवल इतना ही था कि हम्मुराबी के विधान की भाँति मनु-संहिता किसी सम्राट या शासक की लिखी हुई नहीं है।

बाबुल की प्रायश्चित्त-विधियों में सबसे अधिक प्रचलित नियम था फरात नदी में कूदना—अगर कोई स्त्री, अपराधी साबित होती थी तो उसे इस प्रायश्चित्त-विधि का पालन करना पड़ता था। अगर वह तैर कर अपनी जान बचा लेती तो यह मान लिया जाता था कि देवगण उसके पक्ष में हैं। अगर वह डूब कर मर जाती तो उसके अपराध-आरोपकारी को उसकी सम्पत्ति प्राप्त हो जाती थी। अक्सर जादू-टोना एवं अनुचित सम्बन्ध करने पर स्त्री को सज़ा मिलती थी। समाज में जो एक बार 'डाईन' प्रसिद्ध हो जाती तो उसका बचना कठिन होता था। कहना अनुचित न होगा कि इस प्रकार का कुसंस्कार १४ वीं तथा १५ वीं शताब्दी में यूरोप में भी प्रचलित था; जिसके फलस्वरूप फ्राँस की वीरांगना जोआन आफ आर्क (Joan of Arc) को

अंग्रेज तथा फ्रांसीसी सैनिकों के सामने, डाईन की संज्ञा देकर जीवित ही जला दिया गया था।

दंड-नीति का आधार

दंड-नीति का आधार प्रारम्भ में था 'खून के बदले खून'—इस प्रकार अपराधी को शारीरिक दंड देकर ही कानून का बेड़ा पार किया जाता था। अगर किसी व्यक्ति ने कोई मकान खरीदा और उसके गिरने से उसकी मृत्यु हो गयी तो उसके बनाने वाले कारीगर या मकान-मालिक को मौत की सज़ा दी जाती थी। अगर उसके लड़के की मृत्यु होती, तो उसके बनाने वाले के लड़के को मौत की सज़ा दी जाती थी। अगर कोई व्यक्ति किसी लड़की को मार डालता तो उसके बदले में उसकी लड़की को प्राण त्यागना पड़ता था।

परन्तु दंड-विधान की उन्नति तथा सिक्के के आविष्कार के पश्चात् इस प्रकार अपराधी को दंडित करने के स्थान पर उस पर जुर्माना होने लगा। परन्तु एक ही प्रकार के अपराध के लिए एक कुलीन व्यक्ति को, एक साधारण-व्यक्ति की तुलना में, अधिक जुर्माना देना पड़ता था। यानी सजा देते समय अपराधी एवं नुकसान पहुँचने वाले व्यक्ति के सामाजिक स्थान एवं मर्यादा का पूरा-पूरा ख्याल किया जाता था। अगर कोई कुलीन व्यक्ति किसी साधारण व्यक्ति को चोट पहुँचाता तो उसे चाँदी के ६० शेकेल जुर्माने के रूप में देने पड़ते थे। अगर वह किसी गुलाम को चोट पहुँचाता तो उस पर १० शेकेल जुर्माना होता था। अगर अपराधी एवं नुकसान उठाने वाला व्यक्ति दोनों ही साधारण खान्दान के होते तो अपराधी पर १० शेकेल जुर्माना होता था। अगर नुकसान उठाने वाला व्यक्ति, अपराधी से ऊँचे खानदान का, या कुलीन वंश का होता, तो अपराधी को ६० शेकेल जुर्माने के रूप में देने पड़ते थे।

जुर्माने के अलावा कभी-कभी अंग हानि के द्वारा भी अपराधी को सज़ा दी जाती थी। अगर कोई व्यक्ति अपने पिता को मारता तो उसके दोनों हाथ काट दिये जाते थे। अगर किसी डाक्टर का मरीज मर जाता तो उसकी अंगुलियाँ काट ली जाती थीं। अगर कोई धाय (nurse) किसी का बच्चा बदल देती तो उसके वक्षस्थल काट लिये जाते थे।

निकृष्ट अपराधों के लिए मृत्यु दंड दिया जाता था—जैसे स्त्री-धर्षन (rape) या भगा कर ले जाना (kidnapping), डकैती, अवैध सम्बन्ध (incest or promiscuous sex-relation) स्त्री द्वारा पति की मृत्यु, ताकि दूसरे पति से विवाह हो सके, किसी भागे हुए गुलाम को शरण देना, पुरोहितन (priestess) का शराब की दुकान में जाना, युद्ध के समय कायरता दिखाना, सरकारी दफ्तर में गड़बड़ी करना, पत्नी के द्वारा घर की देखभाल न करना या अधिक खर्च करना, या शराब बेचने में गड़बड़ी करना आदि।

यद्यपि आधुनिक युग के दृष्टिकोण से इन अपराधों के लिए मृत्यु-दंड देना कुछ ज्यादती मालूम होती है, परन्तु उस समय के लिए ऐसा दंड आवश्यक था। इन दंडों के कारण शासन-प्रबन्ध सुचारु रूप से चलने लगा, और लोग ईमानदारी का जीवन व्यतीत करने पर विवश किये जाते थे। मुकदमेबाजी कम होती थी क्योंकि राज्य की ओर से उसे कोई प्रोत्साहन नहीं मिलता था। अनुशासन का प्रथम नियम (primary law) यह था कि अगर कोई व्यक्ति किसी पर कोई अपराध लगाता और उसे सिद्ध न कर पाता, तो अभियोगी को मृत्युदंड दिया जाता था। स्वाभाविक था कि ऐसी अवस्था में लोग एक दूसरे के खिलाफ गलतफ़हमी फैलाने या उल्टी-सीधी बात करने में हिचकते थे जिससे सामाजिक श्रृंखला और शान्ति काफी मात्रा में कायम थी और लोग आत्म-संयमी हो गये थे।

हम्मुराबी की विधान-संहिता ने केवल न्याय तथा दंड सम्बन्धी कानून ही नहीं बनाये, परन्तु नागरिक-जीवन को नियंत्रित करने के लिए नाना प्रकार के सामाजिक, औद्योगिक तथा साम्पत्तिक (property) नियमों को लागू किया। राज्य की ओर से प्रत्येक वस्तुओं के दाम, कारीगर तथा मजदूरों की मजदूरी, तथा डाक्टर की फीस भी निर्धारित की जाती थी। पिता की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी उसके सभी पुत्र होते थे। विधवा अपने दहेज तथा विवाह में प्राप्त उपहारों की ही अधिकारिणी होती थी—और अपने जीवन पर्यन्त गृहस्वामिनी समझी जाती थी। विधान-संहिता के अनुसार व्यक्तिगत सम्पत्ति मान्य थी। किसी वस्तु का अधिक दाम लेना, कम मजदूरी देना या डाक्टर के द्वारा अधिक फीस चार्ज करना—ये सभी भारी अपराधों में गिने जाते थे और इनकी सज़ा भी सख्त होती थी। अगर इन कठोर नियमों का एक-शतांश भी आधुनिक भारत के दंड-विधान में पालन किया जाय तो संभव है वर्तमान समय की सामाजिक अनैतिकता, दैनंदिन आवश्यकीय वस्तुओं के दामों में भारी वृद्धि, व्यापार में गड़-बड़ी, सरकारी अफसरों की भ्रष्टता तथा राष्ट्र-विरोधी कार्यों में कमी हो जाए।

इस विधान-संहिता के अनुशासन नं० २२, २३, २४ बड़े ही सुन्दर हैं। अगर डाकू पकड़े जाते तो उनको शीघ्र ही मृत्यु-दंड मिलता था। यदि वे नहीं पकड़े जाते तो स्थानीय अधिकारियों अथवा नगर-शासक को, लूटे हुए व्यक्ति को हरजाना देना पड़ता था। यदि कोई मनुष्य डाकुओं के द्वारा मारा जाता तो उसके उत्तराधिकारियों को अधिकारियों की ओर से १ मीना (प्रायः ९०० रु० के बराबर) हरजाना के रूप में प्राप्त होता।

उस समय प्रधान न्यायालय (जो बैबिलोन में स्थित था) के न्यायाधीश सम्राट द्वारा निर्वाचित होते थे और यहीं आवेदनकारियों की अन्तिम अपील सुनी जाती थी। कभी-कभी सम्राट भी अन्तिम अपील को सुनता और फैसला देता था। चूंकि उस समय समाज में धर्म तथा पुरोहितों का बोलबाला था

अतः न्यायाधीश अधिकतर पुरोहित ही होते थे, सम्भवतः मुकदमा चलाने के लिए वकील नहीं होते थे, वादी-प्रतिवादी, स्वयं निजी वक्तव्य, अदालत में पेश करते थे। परन्तु राज्य या सम्राट के विरोध में किसी नागरिक को कुछ भी शिकायत करने की स्वाधीनता न थी। अन्यथा, सर्वदा इस बात की चेष्टा की जाती थी कि व्यक्ति को हानि न उठाना पड़े। न्याय तथा मुकदमे का फैसला धर्म तथा ईश्वर के नाम से किया जाता था। पुरोहित अदालत में, वादी-प्रतिवादी की ओर से उनके वक्तव्यों को लिखने के लिए उपस्थित रहते थे। ऐसे कार्यों के लिए लेखक धन-द्वारा भी प्राप्त हो जाते थे।

(१०) **बैबिलोनिया के धर्म तथा देवी-देवता**—यह पहले ही कहा जा चुका है कि धर्म तथा देवी-देवता एवं उनके मन्दिरों का बड़ा भारी महत्व उस समय के समाज में था। सम्राट भी धर्म के नाम पर न्याय तथा शासन करते थे। बैबिलोनिया के कुल देवताओं की संख्या ६५००० थी। हर एक नगर का अपना-अपना मुख्य देवता होता था। जैसे लर्सा नगर का प्रधान देवता था शमश यानी सूर्य-देव, ऊर-शहर का नान्नर यानी चन्द्रमा, शहर बाबुल का बेल या बाल-देव, तथा ऊरुक-शहर की देवी-ईश्तार। बाबुल-शहर का दूसरा प्रधान देवता था मार्डूक, और कभी-कभी बेल और मार्डूक दोनों एक ही देवता समझे जाते थे।

इन देवताओं को प्रसन्न करने के लिए, मन्दिरों में प्रार्थना करना, भेड़ के बच्चे का बलिदान करना, भोग चढ़ाना, मार्डूक देव के उत्सव के समय उनकी मूर्ति के साथ यात्रा करना, (जैसा कि अब भी पुरी में जगन्नाथदेव की रथ-यात्रा होती है) तथा नाटकादि करना, मूर्ति को सुगन्धित तेल लगाना तथा नहलवाना एवं कीमती पोशाक पहनाना; पुरोहितों को प्रसन्न करना तथा देवी ईश्तार के उत्सव में कुमारी लड़कियों का कौमार्य को त्याग देना (विस्तृत वर्णन आगे दिया जाता है),आदि आदि ही, बाबुल के पुण्यात्माओं का प्रधान धार्मिक कार्य था। नीतिपूर्ण, सरल, तथा पवित्र जीवन बिताना इन धार्मिक क्रियाओं को उचित रूप से करना ही वे धर्म तथा धार्मिक-जीवन का अंग मानते थे। सम्भवतः इन्हीं कारणों से समाज में धीरे-धीरे उन दुराचारों का प्रवेश हो गया जो आगे चलकर बाबुल की सभ्यता तथा संस्कृति के लिये खतरनाक साबित हुये।

ऐसे समाज में पुरोहितों का बोलबाला स्वाभाविक था। सम्राट भी उनसे भयभीत थे और उनको प्रसन्न करने का उपाय ढूंढ़ते थे। देव-मन्दिरों से संबंधित बड़ी-बड़ी जायदादें होती थी। लोगों से कर इत्यादि भी देवताओं के नाम से ही वसूल किये जाते थे, अतः उसका एक बड़ा भाग मन्दिरों को राज्य की ओर से समर्पित होता था। इसके अतिरिक्त जनता, श्रद्धापूर्वक इन देव-मन्दिरों को सोने, चाँदी, तथा मूल्यवान हीरे, जवाहरात, दान में देते थे। इस प्रकार के दान अमीर तथा गरीब, दोनों को ही देना पड़ता था। पुरोहित-वर्ग इस धन का

उपयोग, पूँजी के रूप में करते थे। इस प्रकार वे बड़े-बड़े भूमिधर, उद्योगपति तथा आर्थिक-सहायक (financiers) बन गये। उनके आधीन हजारों गुलाम या मजदूर होते थे जो मंदिरों में नाना प्रकार के कुटीर-उद्योग में लगे रहते थे। पुरोहित वर्ग इन कुटीर-उद्योग की उत्पादित वस्तुओं को बेंचकर, या व्यापार कर काफी धन एकत्रित कर लिया करते थे। वे बहुत कम व्याज पर लोगों को ऋण भी देते थे तथा किसी के संरक्षित धन को भी पूँजी के रूप में प्रयोग कर उस व्यक्ति को उस धन का लाभांश देते थे। गरीब तथा बीमार को ये धन, बिना किसी व्याज पर उधार देते थे। न्यायालयों में मुकदमे का फैसला करना, न्यायाधीश के रूप में कार्य करना, किसी व्यापारिक समझौते का रेकार्ड करना, या राजकीय रेकार्ड को सुरक्षित रखना, किसी के वसीयतनामे (will) को लिखना, या हस्ताक्षर करना, आदि नाना प्रकार के कानूनी काम-काज भी करते थे। मन्दिरों की आमदनी का दूसरा जरिया था युद्ध में लूटा हुआ धन अथवा माल, जिसका सर्वप्रथम भाग मन्दिरों को दिया जाता था। सम्राट स्वयं भी समय-समय पर मूल्यवान वस्तुयें इन मंदिरों के देवताओं को समर्पित करता था। हाँ, सम्राट को यह अधिकार था कि आवश्यकता पड़ने पर वह मंदिर की सम्पत्ति का प्रयोग करें। परन्तु पुरोहित-वर्ग की इच्छा के विरुद्ध उन्हें कुछ करने की हिम्मत न थी क्योंकि जनता पर पुरोहित-वर्ग का प्रभाव, सम्राट तथा उनके अफसर से कहीं अधिक था।

ऊपर वर्णित देवी-देवताओं के अलावा प्रत्येक परिवार के अपने गृह-देवता भी होते थे जिनकी पूजा प्रतिदिन प्रातः और सायंकाल की जाती थी वे नाना प्रकार के भूत-प्रेत, आत्मा इत्यादि में भी विश्वास करते थे, जो सदैव उनकी रक्षा करते थे। इसी प्रकार उपजाऊ खेती तथा पैदावार के लिए भी सूक्ष्म-आत्माएँ थी। तथा मृत्यु लोक के भी देवता थे जिनके सम्मानार्थ हवन आदि किया जाता था इन भूत-प्रेत, दैत्य-दानव, आदि से बचने के लिए नाना प्रकार के मंत्र-तंत्र, जादू-टोना, तथा ताबीज़ आदि का प्रयोग होता था। असुर-सम्राट, असुर बानीपाल की राजधानी निनेव (Nineveh) में प्राप्त पुस्तकालय संग्रह में इस प्रकार के मंत्र-तंत्र, जादू-टोने लिखे हुए कई चौकोर टूकड़े (tablets) पाये गये हैं। यह कहना असंगत न होगा कि इस प्रकार के कुसंस्कार सभी प्राचीन देशों में मौजूद थे। भारतीय वैदिक-साहित्य का अथर्ववेद इसी प्रकार के मंत्र-तंत्रों से पूर्ण है। यूनानी, डेल्फी-मन्दिर की भविष्यवाणी के अनुसार ही, युद्ध इत्यादि में अग्रसर होते थे।

बैबिलोनीय किंवदन्ती के अनुसार विश्व-सृष्टि की कहानी

बाबुल की विश्व-सृष्टि की कहानी बड़ी मनोरंजक है। प्रारम्भ में केवल देवता अप्सू यानी समुद्र और देवी तिआमत यानी प्रलय की देवी ही विद्यमान थीं।

देवी तिआमत के द्वारा विश्व-सृष्टि में बाधा डालने पर मार्डूक-देव उसकी हत्या करता है और उसके शरीर के आधे-आधे भाग से स्वर्ग तथा पृथ्वी का निर्माण करता है। फिर अपना खून और मिट्टी मिलाकर वह एक मूर्ति तैयार करता है जो मानव का रूप धारण करती है। इस प्रकार विश्व में मानव-जाति का जन्म होता है। ओएन्निस (Oannes) नामक एक दैत्य इस मानव को कला, विज्ञान, नगर-निर्माण-कला और कानून सिखाता है, जिससे देवगण मानव जाति पर अप्रसन्न होकर उसे नष्ट करने की ठानते हैं। परन्तु बुद्धि का देवता ईआ (Ea) इस मानव-जाति से एक व्यक्ति, जिनका नाम शम्श-नपिशतिम (Shamash-napishtsm) था, तथा उसकी स्त्री को बचा लेता है, परन्तु देवताओं के क्रोध से उन दोनों के अलावा सम्पूर्ण मानव-जाति जल-मग्न हो जाती है। शम्श-नपिशतिम, एक बड़ी सी नाव बना कर, प्रलय से बच जाता है और निसिर-पर्वत पर रक्षा के लिए आश्रय ग्रहण करता है। प्रलय समाप्त होने पर वह एक पेड़की (dove) भेजकर प्रलय समाप्त होने की खबर पा जाता है। तब वह देवगणों को प्रसन्न करने के उद्देश्य से बलिदान करता है जो बड़ी खुशी से उसका बलिदान ग्रहण करते हैं, क्योंकि सम्पूर्ण मानव जाति के नष्ट होने पर, वे आपस में इसलिए लड़-झगड़ रहे थे कि अब देवताओं को कौन बलिदान देकर प्रसन्न करेगा।

बाबुल की यह विश्व-सृष्टि की कहानी सात चौकोर टुकड़ों में लिखी हुई, असुर-सम्राट असुर बानीपाल के निनेव-स्थित पुस्तकालय में संरक्षित है, जिसकी खोज सन् १८५४ ई० में हुई है। सात चौकोर टुकड़े, विश्व-सृष्टि के सातों-दिन के द्योतक है। बाबुल तथा असीरिया की विश्व-सृष्टि की कहानी, सुमेरी विश्व-सृष्टि की कहानी का ही रूपान्तर-मात्र है।

विश्व-सृष्टि की कहानियों में देवी ईश्तार की कहानी भी बड़ी ही मनोरंजक है। देवी ईश्तार, प्रेम, तथा सृजन की देवी है। (प्रेम से ही सृजन होता है) वह बुद्धि-देवता ईआ के बेटे ताम्मुज़ से प्रेम करती है। परन्तु एक जंगली-सूअर के द्वारा ताम्मुज़ मारा जाता है और वह उस अन्धकारमय नरक को पहुँच जाता है जिसे बाबुली अरालू (Aralu) कहते हैं। देवी ईश्तार उसे ढूंढ़ती हुई स्वयं नरक राज्य के प्रवेश-द्वार पर उपस्थित होती है। इस नरक राज्य की अधिष्ठात्री, देवी ईश्तार की बहन ऐरेशकिगल (Ereshkigal) है जो वहाँ के नियमों के अनुसार उसकी आवभगत करती है। इन नियमों के अनुसार एक एक फाटक (प्रवेश-द्वार) पार करते समय देवी-ईश्तार को अपने कपड़े उतारने पड़ते हैं और अन्त में बिल्कुल वस्त्रहीन होकर उन्हें अरालू में प्रवेश करना पड़ता है। वहाँ कुछ दिनों तक वह नारकीय आनन्दों में दिन बिताती है।

परन्तु उसकी अनुपस्थिति से विश्व में कोलाहल मच जाता है—पशु, प्राणी, पेड़, पौधे, इत्यादि का सृजन (Production) एकदम बन्द हो जाता है। चारों तरफ नैराश्य छा जाता है। जन-संख्या घटने लगती है, और देवताओं को पृथ्वी से बलिदान तथा उपहार क्रमशः कम प्राप्त होने लगते हैं। आखिरकार वे देवी ऐरेशकिगल को, देवी ईश्तार की मुक्ति के लिए आज्ञा देते हैं—परन्तु ईश्तार देवी, ताम्मुज के बगैर, लौटने से इनकार करती है। आखिरकार वह अपने प्रेम में विजयी होती है, और ताम्मुज को लेकर, नरक राज्य के प्रवेश-द्वारों को पार करती तथा अपने वस्त्रों को पुनः धारण करती हुई, विश्व में लौट आती है। उनके लौटते ही फिर से चारों ओर बहार छा जाती है, पेड़ों पर हरियाली दिखायी पड़ने लगती है, सुन्दर-सुन्दर पत्र-पुष्पों से वृक्ष पल्लवित हो जाते हैं, सभी प्राणी, जीव तथा जानवर, पुनः अपने-अपने वंश-वृद्धि के पुनीत कार्यों में लीन हो जाते हैं—सारांश यह कि चारों ओर आनन्द छा जाता है।

इस कहानी को बाबुली बड़ा ही महत्व प्रदान करते थे और हर वर्ष वे ताम्मुज की मृत्यु पर शोक, और उसके पुनर्जीवन के अवसर पर आनन्द मनाते थे। सम्भवतः ईसाई-धर्म के पैगम्बर यीशु-ख्रीष्ट (ईसा-मसीह) के क्रूसबिद्ध होने के पश्चात् पुनर्जीवित होने की घटना, ताम्मुज की कहानी पर ही अवलम्बित है।

बाबुल-वालों की स्वर्ग और नरक की कल्पना

इन लोगों का विश्वास था कि मृत्योपरान्त सभी को अरालू नामक नरक में जाना पड़ता है जहाँ पर मृतकों को नाना प्रकार की यातनायें सहनी पड़ती हैं। हाथ-पैर बँधे हुए वे यहाँ भूख तथा प्यास से तड़पते रहते हैं जब तक कि उनकी सन्तान उनकी कब्रों में खाने-पीने की चीज़ें नहीं रख देती। जो लोग दुष्ट चरित्र के होते हैं उनको और भी कठोर दंड मिलता है। वे कुष्ठरोग (leprosy) से या अन्यान्य रोगों से आक्रान्त होते हैं और अकथ यातनाएँ भोग करते हैं। स्वर्ग में जाने का अधिकार मात्र देवताओं को ही है।

मृतकों को दफनाने की प्रथा (Method of Cremation)

अधिकतर मृतकों को कब्र में गाड़ा जाता था—कभी-कभी वे जलाये भी जाते थे और उनके भग्नावशेष मिट्टी के वर्तनों में रक्खे जाते थे। यह कहना असंगत न होगा कि सिन्ध-घाटी के लोगों में भी अवशेष दाह-प्रथा वर्तमान थी। मृतकों के भग्नावशेष रक्खे हुए कई मिट्टी के बड़े-बड़े घड़े हड़प्पा में पाये गये हैं।

दफनाने के पहले, शव को नहलाया जाता, गालों को रंगा जाता, आँखों

में काजल लगाया जाता, अगूँठियाँ पहनायी जातीं, सुगन्ध लगायी जाती, तथा उसे नये कपड़े पहनाये जाते थे। स्त्री को, सुगन्ध-शीशी, कंघी, रंगनेवाली पेंसिलें (Cosmetic Pencils) तथा आँखों पर लगाने वाला रंग, इत्यादि के साथ दफनाया जाता ताकि परलोक-यात्रा के समय उसकी साज-सज्जा तथा रूप-रंग ठीक रहें। बाबुल-वालों का विश्वास था कि अगर मृतक को भली-भाँति न दफनाया जाय तो वह जीवितों को परेशान करेगा। अगर बिल्कुल न दफनाया जाय तो नालियों में अपनी खाने-पीने की चीज़े ढूँढ़ता फिरेगा और शहर भर में महामारी फैला देगा। अतः मृतकों को उचित प्रकार से दफनाने के सभी क्रिया-कलापों की ओर उनकी सतर्क दृष्टि रहती थी।

(११) **बाबुल-निवासियों के नैतिक तथा सामाजिक जीवन में स्त्रियों का स्थान**—बाबुल-निवासियों के कुछ सामाजिक तथा नैतिक आचरण एवं रस्म-रिवाज ऐसे थे जिन्हें वर्तमान दृष्टि से 'अनैतिक' कहना ही अधिक संगत होगा। धर्म के नाम पर किन दुराचारों को प्रश्रय दिया जाता था, इसका विवरण यूनानी ऐतिहासिक हेरोडोटस (Herodotus) से प्राप्त होता है। इस विवरण में, हेरोडोटस ने, देवी ईश्तार (जिसे वे वीनस देवी कहते हैं) के मन्दिरों में किस प्रकार बाबुल की कुमारी लड़कियाँ, देवी को प्रसन्न करने के लिए अपने कौमार्य को लुटाती थीं, उसका उल्लेख किया है। उसका कहना है कि, "सभी जवान लड़कियों तथा स्त्रियों को, जीवन-भर में, अन्ततः एक बार, देवी वीनस (ईश्तार) के मन्दिर में किसी अजनबी से, संभोग करना पड़ता था। वह अजनबी उसकी गोद में चाँदी का सिक्का फेंकता था और मन्दिर के बाहर उसके साथ रात्रि-यापन करता था। इस प्रकार वह स्त्री या कुमारी, देवी ईश्तार के ऋण से मुक्त होकर तथा उस पवित्र धन (चाहे वह कितना ही कम क्यों न हो) को लेकर घर लौटती थी। इसके बाद विवाह होने के पूर्व तक वह किसी भी व्यक्ति से यौन-सम्बन्ध नहीं करती थी चाहे कोई कितना भी धन क्यों न देना चाहता हो।"

परन्तु आश्चर्य की बात यह थी कि ये कुमारियाँ या स्त्रियाँ मन्दिर की वेश्याएँ नहीं थीं, और न तो वेश्या वृत्ति ही उनका पेशा था। इन मन्दिरों में जो वेश्याएँ थीं वे इनसे अलग ही वर्ग की थीं, और मन्दिरों के अन्दर ही अपने पेशे को चलाती थीं। इस प्रकार की मन्दिर-वेश्याएँ सीरिया, फ़ीनिशिया, फ्रीजिया तथा ईस्राईल जैसे प्राचीन देशों में भी पायी जाती थीं। साइप्रेस तथा लीडिया में, कुमारी लड़कियाँ अपना दहेज इसी प्रकार कमाती थीं। श्री विल-डुराण्ट महोदय का कहना है कि 'यह 'पवित्र-वेश्यावृत्ति' बाबुल में तब तक चालू रही, जब तक सन् ३२५ ई० में सम्राट कान्स्टेनटाईन ने राजाज्ञा-द्वारा

इसे बन्द न करवा दिया। इस 'पवित्र-वेश्यावृत्ति' के साथ, नागरिक वेश्या-वृत्ति, शराबों की दुकानों में, साथ-साथ चलती थी।"

अवैध यौन-सम्बन्ध को धार्मिक रूप देकर उसे एक सामाजिक रीति के रूप में कायम करना, एक अद्भुत् तथा आश्चर्यजनक बात है। शराबों की दूकानों में वेश्याएँ तब भी थीं, आज भी हैं, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वस्तुत: इस प्रकार की वेश्यावृत्ति, सारे संसार में, केवल रूस के अलावा, सभी देशों में अब भी मौजूद है। अवश्य ही यह हमारी मानवता, सभ्यता तथा संस्कृति के लिये शोभनीय नहीं है. परन्तु अभी इस जघन्य प्रथा को समाप्त करने में हम असफल हैं।

श्रीमान विलडुराण्ट महोदय का कहना है कि "बैबिलोनिया में विवाहपूर्व यौन-सम्बंध, स्त्री तथा पुरुष में कायम हो सकता था परन्तु स्त्री को पत्थर या मिट्टी का बना हुआ जैतून-फल पहनना पड़ता था; जिससे यह पता चले कि वह किसी की रखैल है। यह एक प्रकार से प्रयोग-विवाह (trial-marriage) था, जो दोनों की इच्छा पर निर्भर करता था। इनमें से कोई भी, जब चाहे, इस सम्बंध को तोड़ सकता था।"

विवाह-सम्बन्धी नियम

बाबुल-निवासियों में यद्यपि विवाह-पूर्व यौन-सम्बन्ध का कोई निषेध न था परन्तु जो कानूनी विवाह होते थे, उनके नियम बड़े ही कठोर थे। प्राय: ऐसे विवाह माता-पिता ही तै करते थे परन्तु लड़के को, लड़की के पिता को, कन्याधन (bridal price) देना पड़ता था। लड़की के पिता को विवाह के अवसर पर इसका दुगुना दहेज देना पड़ता था। कभी-कभी विवाह-योग्य लड़कियाँ खुले-आम बाजारों में बेची जाती थीं, और खरीदने वाले को यह प्रतिज्ञा करनी पड़ती थी कि वह केवल विवाह के लिए ही उस लड़की को खरीद रहा है, अन्य किसी प्रकार के कार्यों के लिए नहीं।

विवाह के पश्चात्, स्त्री-पुरुष दोनों को कठोर नैतिक जीवन बिताना पड़ता था। विवाह के पश्चात्, अगर कोई स्त्री, पति के अलावा और किसी पुरुष से अवैध सम्बन्ध स्थापित करती थी तो दंड-स्वरूप उसे नदी में डुबा दिया जाता था। तलाक देने की प्रथा थी और पति अपनी स्त्री के दहेज तथा स्त्री-धन को लौटाने के बाद विवाह-बंधन से मुक्त हो सकता था। तलाक देने के कारण निम्न-लिखित होते थे—विवाह पश्चात् अवैध यौन-सम्बंध, बच्चा न होना, घर का काम-काज तथा रखवाली भलीभाँति न करना, या बच्चों की उचित-रूप से देख-भाल न करना इत्यादि। स्त्री को भी यह अधिकार था कि पति अगर उसके साथ

निर्दयता का व्यवहार करे तो वह उसे तलाक दे, तथा अपने दहेज तथा स्त्री-धन को लेकर, माता-पिता के पास वापस लौट जाय।

पत्नी को यह भी अधिकार था कि अगर उस का पति, किसी कारण से (युद्धादि के कारण) बहुत दिन तक उससे अलग रहे तो वह अपने गुज़ारे के लिए अन्य पुरुष के साथ सहवास करे, परन्तु पति के लौटने पर पुनः अपने पति के पास वापस चली जाय।

विवाह-सम्बन्धी नियम इतने कठोर होते हुए भी, उस प्राचीन काल में बाबुल की स्त्रियों को निम्नलिखित अधिकार प्राप्त थे:—सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी (inheritor) होना एवं रखना तथा उसकी आमदनी को भोग करना, बेंचना या किसी को दान में दे देना, दुकानें रखना, व्यापार करना, तथा लेखक (लिपिकार) के रूप में कार्य करना। इनसे यह साबित होता है कि बाबुल में लड़के और लड़कियाँ समान शिक्षा प्राप्त करती थीं।

परन्तु उच्चश्रेणी की स्त्रियाँ बाहर निकलते समय पर्दे का प्रयोग करती थीं और उनके नौकर-चाकर साथ रहते थे।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बैबिलोनिया के तत्कालीन समाज में स्त्रियों का स्थान, समकालीन देशों की स्त्रियों से कहीं अधिक अच्छा तथा सुरक्षित था। यूनानी ऐतिहासिक हेरोडोट्स का कहना है कि "युद्ध के समय घिर जाने पर, बाबुल-वालों ने अपनी स्त्रियों को मार डाला ताकि रसद की कमी न हो।" भारतीय राजपूतों की जौहर प्रथा भी बाबुल वालों की इस प्रथा से मिलती जुलती है। अन्तर केवल इतना ही है कि बाबुल वाले अपनी स्त्रियों को रसद के अभाव के कारण मार डालते थे और राजपूत अपनी मान-मर्यादा की रक्षा के लिए। बाबुल तथा भारत की संस्कृति तथा विचारों में कितना अन्तर था।

परन्तु सांस्कृतिक उन्नति के साथ-साथ बाबुल-निवासियों में स्त्री-सुलभ आचरण तथा हाव-भाव बढ़ने लगे। बाबुल के नवयुवक भी, स्त्रियों की भाँति, घुँघराले बाल रखने लगे तथा गालों पर रंग, गले में हार, हाथों में चूड़ियाँ तथा कानों में बालियाँ पहनने लगे। इस प्रकार उनके नैतिक चरित्र में धीरे-धीरे शिथिलता आने लगी और पतन के लक्षण स्पष्ट प्रतीत होने लगे। जब फारस-सम्राट साईरस प्रथम ने, ५३९ ई० पू०, में बैबिलोन पर विजय प्राप्त कर, उसे फारस-साम्राज्य में मिला लिया, तबसे बैबिलोनिया वालों में आत्म-सम्मान की भावना घटने लगी और क्रमशः आत्मसंयम की भावनाएँ भी शिथिल पड़ गयीं। उच्च घराने की स्त्रियों में भी, वेश्याओं की भाँति अपने रूप तथा सौन्दर्य को खुलेआम प्रगट करने की प्रवृत्ति प्रबल हो गयी ताकि आम जनता उन्हें देखकर तृप्त हो सके। हेरोडोटस महोदय का कहना है कि "हरएक व्यक्ति धन के लिए अपनी-अपनी लड़कियों से वेश्यावृत्ति करवाने लगा।" रोमन

ऐतिहासिक क्वीन्टस कर्टीयस ने यहाँ के लोगों के बारे में लिखा है कि "अनैतिक यौन-सम्बन्धी आनन्दों की सर्वोत्तम व्यवस्था इस देश में है।" विल डूराण्ट महोदय का कहना है कि "ज्यों-ज्यों मन्दिरों में धन-वृद्धि हुई, नैतिकता का पतन होने लगा। और बाबुलवालों ने लापरवाही के साथ कस्साईट, असीरीय, फारसी, तथा यूनानियों की गुलामी सहर्ष स्वीकार कर ली।" स्वाधीनता तथा स्वतंत्रता के लिए संग्राम करना वे भूल गये, और एक के बाद एक विदेशी जातियों के पदानत होते गये। क्या भारतवर्ष की वर्तमान सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थिति बाबुलवालों की उक्त परिस्थिति के अनुरूप नहीं है? इतिहास की घटनाओं की पुनरावृत्ति प्रायः होती है और जिन सामाजिक, आर्थिक तथा नैतिक कारणों से बाबुली सभ्यता तथा संस्कृति का नाश हुआ, उन्हीं कारणों से, भारतीय समाज तथा राष्ट्र का भी पतन होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

(१२) **बाबुल का उत्कीर्ण लेख, अक्षरमाला, भाषा तथा साहित्य**— बाबुल-निवासी नरम मिट्टी के भीगे हुए चौकोर टुकड़ों पर, नेजे की कलम (stylus) से उत्कीर्ण लेख लिखते थे। प्रो० रालिन्सन के अथक् परिश्रम से बाबुल की उत्कीर्ण-लिपि का पाठोद्धार हो सका है। लिखने के पश्चात् इन चौकोर टुकड़ों को पका लिया जाता था जिससे वे ईंट की तरह ठोस हो जाते थे। तत्पश्चात् वे महलों या मन्दिरों में, घड़ों के भीतर क्रमवार लगाकर रख दिये जाते थे। बाबुल में किसी पुस्तकागार के भग्नावशेष का आविष्कार अभी तक नहीं हुआ है, परन्तु बोरसिप्पा नगर के पुस्तकागार में रखे हुए, चौकोर टुकड़ों की प्रतिलिपि बनवाकर, असीरीय सम्राट असुर बानिपाल ने, अपनी राजधानी निनेव में सुरक्षित किया था। इन चौकोर टुकड़ों की संख्या ३०,००० है और ये बाबुल-निवासियों के जीवन का दिग्दर्शन कराने में काफी सहायता पहुँचाते हैं।

बाबुली भाषा की उत्पत्ति सुमेरीय तथा अक्कादी भाषाओं के मिश्रण से हुई। पहले तो बाबुली भाषा सुमेरीय अक्षरों में ही लिखी जाती थी। पश्चात् बाबुल वालों ने अपनी वर्णमाला बना ली। इनकी वर्णमाला में वस्तुतः केवल ३०० चिह्नों का समावेश था, जिनके द्वारा गणित, ज्योतिष तथा धार्मिक शिक्षाएं, स्कूलों में दी जाती थीं। उस समय के मन्दिर ही स्कूल तथा पुरोहित ही अध्यापक थे। बाबुल में एक स्कूल के खण्डहर का आविष्कार हुआ है जिसमें बच्चों की तख्तियों पर, धार्मिक शिक्षाएं लिखी हुई पायी गयी हैं, जिनका समय कम से कम २००० ई० पू० निर्धारित किया गया है।

बाबुल के लोगों ने भाषा की उन्नति के लिए व्याकरण तथा शब्दकोषों का निर्माण किया था। नीनेव नगर में प्राप्त अधिकांश चौकोर टुकड़े सुमेरी,

बाबुली तथा आसुरी भाषाओं के शब्दकोष हैं। अक्काद सम्राट सार्गोन प्रथम के समय से ही शब्दकोष का निर्माण प्रारम्भ हो गया था।

बाबुल के साहित्य की विषय-वस्तु अधिकांश व्यापारिक उद्योग-धन्धे, कानूनी बातें एवं ऐतिहासिक घटनाएँ ही हैं। काव्य एवं गीत बहुत कम लिखे गये। गीतों में केवल वही उपलब्ध हैं जो देवताओं की प्रशंसा करते हुए छंदों में लिखे गये हैं। राजकीय लिपिकारों ने सम्राटों की विजय-कहानी, मन्दिरों की गौरव-गाथा, तथा प्रत्येक नगर की महत्वपूर्ण घटनाओं को ही लिपिबद्ध किया है। बाबुल के सबसे प्रसिद्ध इतिहासकार बेरोसस (Berosus) ने विश्व-सृष्टि, मानव का प्रारम्भिक इतिहास तथा महान् प्रलय आदि का विशद विवरण लिखा है। उसके अनुसार विश्व-सृष्टि के समय से महान् प्रलय के समय की अवधि ६९१, २०० वर्ष है।

इस प्रकार की घटनाओं के अतिरिक्त, शुद्ध साहित्य का निर्माण बाबुल में बहुत ही कम हो सका। हाँ, एक महाकाव्य की रचना अवश्य हुई जो 'गिलगामेश का महाकाव्य' के नाम से प्रसिद्ध है। इस महाकाव्य में, शम्श-नपिशतिम का वंशधर, एवं उरूक नगरी का शासक गिलगामेश तथा देवी ईश्तार की प्रेमगाथा का रोचक वर्णन है। गिलगामेश वीर एवं सुन्दर नवयुवक है, जिसकी आज्ञा का पालन शहर के सभी नवयुवक करते हैं और नगर-रक्षा के लिए दिन-रात दीवारों का निर्माण करते हैं। उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर नगर की युवतियाँ तथा कुमारियाँ उसके पीछे-पीछे दौड़ती हैं। अतः नगर-निवासियों की कातर प्रार्थना से पिघल कर देवी ईश्तार, गिलगामेश की स्वर्गीय माता, अरुरु से प्रार्थना करती है कि वह गिलगामेश की तरह एक और वीर की रचना करे, ताकि गिलगामेश उसके साथ निरंतर युद्ध करने में लीन रहे और नगर-निवासियों को शांति मिले। अतः अरुरु द्वारा ईनगीडू (Engidu) नामक वीर का जन्म होता है जो मानव समाज में न रहकर, जंगलों में पशुओं के साथ रहने लगता है। आखिरकार एक शिकारी, एक सुन्दर पुरोहितन की सहायता से, ईनगीडू को प्रोत्साहित करते हुए, उरुक शहर में लाता है और इनगीडू गिलगामेश से युद्ध करने के लिए उद्यत होता है। परन्तु युद्ध में गिलगामेश उसे पराजित कर उदारतापूर्वक उसे अपना मित्र बना लेता है। फिर दोनों मित्र ईलम के आक्रमण से उरुक नगर की रक्षा के लिए चल पड़ते हैं, और विजयी होकर, लूट का माल लादे हुए, पुनः उरुक नगरी में प्रवेश करते हैं। वीर गिलगामेश के वीरत्व से प्रसन्न होकर देवी ईश्तार उससे प्रेम करने लगती है और गिलगामेश को अपना पति बनने के लिए आग्रह करती है। हजारों प्रलोभन देने के पश्चात् भी गिलगामेश उसको स्पष्टरूप से नकारात्मक उत्तर दे देता है, क्योंकि देवी ईश्तार के भूतपूर्व प्रेमियों को अकथ यन्त्रणायें सहनी पड़ी थीं।

देवी ईश्तार क्रोधित होकर अनु-देव से, गिलगामेश की हत्या के लिए एक जंगली ऊरुस (जानवर) सृजन करने को कहती है। अनुदेव पहले तो मना करते हैं, परन्तु बाद में देवी ईश्तार के धमकाने पर उसकी सृष्टि करते हैं। परन्तु गिलगामेश, तथा ईनगीडू, दोनों मित्र मिलकर उस जंगली जानवर को मार डालते हैं। तब देवी ईश्तार के शाप से इनगीडू का देहान्त हो जाता है।

इनगीडू की मृत्यु से गिलगामेश दुखी होकर अमर-जीवन की खोज में निकल पड़ता है। उसे स्मरण आता है कि अमर-मानव शम्श-नपिशतिम को मृत्यु से छुटकारे का रास्ता मालूम है। वह उसके पास जाने का निश्चय करता है। बारह मील लम्बी अन्धकारपूर्ण सुरंग को पार कर वह समुद्र के किनारे उपस्थित होता है, जहाँ वह समुद्र की देवी सवितु के सिंहासन का दर्शन करता है। देवी-सवितु की स्तुति करते हुए वह महान् सागर को पार करता है और चालीस दिन की तूफानी यात्रा के पश्चात् वह उस द्वीप में पहुँचता है जहाँ अमर मानव शम्श-नपिशतिम रहते हैं। वह गिलगामेश को एक पौधा देते हैं जिसके फल खाने से पुन: यौवन प्राप्त हो जाता है। गिलगामेश उस पौधे को लेकर खुशी-खुशी लौटता है परन्तु रास्ते में स्नान करते समय एक सांप, उस पौधे को छिपा लेता है। तब दुखी होकर गिलगामेश पुन: उरुक-नगर को लौट आता है और मन्दिरों में, ईनगीडू के पुनर्जीवन के लिए प्रार्थना करता है। आखिरकार ईनगीडू का आविर्भाव होता है, और गिलगामेश उससे नरक के बारे में पूछता है। ईनगीडू नरक (अरालू) की यातनाओं का वर्णन करता है और यहीं पर महाकाव्य की समाप्ति होती है।

(१३) **बैबोलोनीय कला, चित्र-कला तथा संगीत एवं वास्तु कला**—बाबुली सभ्यता के प्रधानत: व्यापारिक सभ्यता होने के कारण यहाँ नाना प्रकार की कलाओं का विकास बहुत कम हो सका। यहाँ के निवासी चमकीले खपरैल (टाईल्स), चमकते हुए पत्थर, काँसा, लोहा, चाँदी और सोने के बहुमूल्य सुन्दर आभूषण, जरी के काम किये हुए कपड़े, मुलायम कम्बल, रंगीन कपड़े, गलीचे, कालीन, सुन्दर पहिएदार टेबुल, कुर्सी तथा चारपाइयाँ इत्यादि की निर्माण-कला में पर्याप्त दक्ष थे। यहाँ हीरे-जवाहरात के आभूषणों का काफी प्रयोग होता था, परन्तु उनकी निर्माण-कला में वह सूक्ष्मता न थी जो कि मिस्र देश के बने हुए आभूषणों में पायी जाती है। हाँ, सोने-चाँदी की बड़ी-बड़ी मूर्तियों का निर्माण बाबुल वालों ने अवश्य किया। परन्तु उन मूर्तियों में भी सूक्ष्म-कला का अभाव था। संगीत में उनका पर्याप्त विकास हो चुका था। नाना प्रकार के वाद्य-यंत्रों जैसे ढोल, वीणा, मंजीर, बांसुरी, बीन, बाजा, तुरही तथा भोंपू का प्रयोग वे गाने-बजाने के लिए करते थे। राजमहल, मन्दिर तथा धनिकों के भोजों में गाना-बजाना (आर्केष्ट्रा तथा कंठ-संगीत) आवश्यक समझा जाता था।

स्थापत्य-कला में भी बाबुल-वाले अधिक उन्नति न कर सके। उनकी सभी मूर्तियों से मोटापन और भद्दापन जाहिर होता है। उनके पत्थरों पर किये गये रेखा-चित्र (relief pictures) अवश्य उनकी मूर्तियों से कहीं अधिक सुन्दर हैं, परन्तु उनमें भी कोई अभिव्यंजना नहीं है। इसी प्रकार चित्रकारी की भी कोई उन्नति न हुई। चित्रकारी का प्रयोग केवल मन्दिर की दीवारों और मूर्तियों के रँगने के लिए ही किया जाता था। यहाँ स्वतंत्र रूप से चित्रकला का वैसा विकास न हो सका जैसा कि मिस्र या भारत में हुआ था।

भवन-निर्माण-कला

बाबुल-वालों के भवन, सुमेरीय भवनों के ही अनुरूप थे। आम लोगों के मकान मिट्टी के और बड़े आदमियों के मकान ईंटों के बनते थे। भीतर एक चबूतरा होता था जिसकी ओर मकान के दरवाजे खुलते थे। प्रायः मकानों में खिड़कियाँ बहुत कम होती थीं। कुछ मकान ३ या ४ मंजिले भी होते थे। सिन्धघाटी के लोगों की भवन-निर्माण-कला, बाबुल वालों से श्रेष्ठ थी।

मन्दिरों की नींव, मकानों की छत की ऊँचाई के बराबर डाली जाती थी और उनका निर्माण भी मकानों की तरह, अन्दर बने चबूतरे के चारों ओर, किया जाता था।

ज़िगुरात

इन्हीं मन्दिरों के निकट कभी-कभी उन विशाल इमारतों का निर्माण होता था जिन्हें ज़िगुरात (Ziggurat) कहा जाता है। ज़िगुरात की निर्माण-कला का प्रचार सबसे पहले ईलमवासियों ने अपने देवता एनलील की पूजा के लिए किया था—जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इन ज़िगुरातों में ६ या ७ मंजिलें होती थीं, जिसके ऊपर की हर मंजिल, नीचे की मंजिल से छोटी होती थी। इन पर चढ़ने के लिए चारों ओर से सीढ़ियाँ बनी होती थीं। सबसे ऊपर की मंजिल पर देवता की मूर्ति होती थी। इसमें धार्मिक क्रियाएँ भी होती थीं, और यह मान-मन्दिर के काम में भी आता था, क्योंकि पुरोहित लोग इस पर चढ़कर सौर-मंडल के ग्रह, नक्षत्र, तथा तारों की गतिविधियों का निरीक्षण करते थे। इसी कारण बैबिलोनिया में फलित ज्योतिष तथा खगोल विद्या की इतनी अभूतपूर्व उन्नति हो सकी।

इन ज़िगुरातों में बोरसिप्पा नगर का ज़िगुरात सबसे अधिक प्रसिद्ध था। इसकी हर मंजिल एक विशेष ग्रह की द्योतक थी और उस ग्रह के रंग के अनुसार रंगी हुई थी। जैसे, सबसे नीचे की मंजिल, शनि ग्रह के रंग के अनुसार, काले रंग; उसके ऊपर वाली दूसरी मंजिल शुक्र ग्रह की द्योतक,

सफेद रंग; उसके ऊपर वाली तीसरी मंजिल बृहस्पति की द्योतक गुलाबी रंग; चौथी मंजिल, बुध की, गहरा नीला रंग; पाँचवीं मजिल, मंगल की, गहरा लाल रंग; छठवीं मंजिल चन्द्रमा की, चाँदी का रंग; और सातवीं, सूर्य की, सोने का रंग। यह सातों मजिलें, 'सप्त-मंडल' के नाम से प्रसिद्ध थीं और साप्ताहिक दिनों की भी द्योतक थीं। कहना असंगत न होगा कि आज भी हम हफ्ते के विभिन्न दिनों को इन्हीं ग्रहों के क्रम से गिनते हैं जैसे इस ज़िगुरात की मंजिलें बनायी गयी थीं।

परन्तु इन ज़िगुरातों में कला का अभाव था, यद्यपि इनमें मेहराब, गुम्बद, डाँट आदि का प्रयोग भी किया गया जो कि बाबुल वालों ने सुमेरिया वालों से सीखा था। कभी-कभी इनके भीतर और बाहर की ईंटों को चमकीले रंग (जैसे लाल, पीला, नीला, सफेद) से रंग दिया जाता था। परन्तु सस्ती तथा हल्की ईंटों के बने होने के कारण शीघ्र ही वे नष्ट भी हो गये। मिस्र की पिरामिड या भारत के मन्दिरों की भांति उनमें स्थायित्व न था।

(१४) **बैबोलोनीया में विज्ञान, ज्योतिष तथा गणित आदि का विकास**—यह पहले ही बताया जा चुका है कि बैबिलोनीय सभ्यता प्रधानतः व्यापारिक सभ्यता थी, अतः यहाँ विज्ञान, गणित तथा ज्योतिषशास्त्रों की प्रभूत उन्नति हुई। इनके ज़िगुरात किस प्रकार सातों ग्रह के अनुसार बनाये व रंगे जाते थे इसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। बाबुल वाले इससे साप्ताहिक दिनों तथा ऋतुओं का भी अनुमान लगा लेते थे।

बाबुल वालों ने वृत्त को ३६०° में बाँटा और सम्पूर्ण वर्ष को ३६० दिनों में। इसी सिद्धान्त के आधार पर उन्होंने ६० से गुणा करने की पद्धति का आविष्कार किया। गणना के लिए उन्होंने, १, १०, १०० इन तीन अंकों को निकाला जिनके जोड़ने और घटाने से बड़ी-बड़ी संख्याएँ बन जाती थीं। गुणा और भाग, एवं वर्ग, घन, आधा-तिहाई और चौथाई आदि को जानने के लिए उन्होंने मान-तालिकाएँ बनायीं। रेखागणित के द्वारा भिन्न-भिन्न नापों के क्षेत्रफल वे बड़ी आसानी से नाप लेते थे।

बाबुल वालों ने खगोल-विद्या में भी काफी उन्नति की। खगोल-विद्या का प्रयोग उन्होंने समुद्री यात्रा या कारवाँ की गतिविधि जानने से अधिक भविष्य जानने में किया। ग्रह-नक्षत्रों की गतिविधि का निरीक्षण करते हुए, पुरोहितों को सांसारिक घटनाओं की भविष्यवाणी करने का काफी मौका मिलता था। उदाहरणस्वरूप अगर चाँद नीचे है तो कोई दूरवर्ती देश राजा की अधीनता स्वीकार करेगा। अगर चाँद ऊँचे पर है तो राजा शत्रु को पराजित करेगा। कहना असंगत न होगा कि आज भी ईद का त्योहार, हमारे मुसलमान भाई, चन्द्रोदय से ही करते हैं। और भारतीय ज्योतिषी आज भी पंचांग-निर्माण

तथा राशि-चक्र के आधार पर व्यक्तिगत वर्षफल की भविष्यवाणी इसी खगोल-विद्या तथा फलित ज्योतिष-विज्ञान के आधार पर करते हैं।

इस प्रकार धीरे-धीरे बाबुल वालों ने खगोल विद्या में प्रभूत उन्नति कर ली। ग्रह तथा नक्षत्र का अन्तर तथा उनकी वास्तविक स्थिति तथा परिक्रमा आदि सभी बातों का पता उन्होंने लगा लिया। सम्राट नेबुचडरेजार के अधीन, इस विज्ञान की सर्वाधिक उन्नति हुई। चन्द्र तथा सूर्य ग्रहण, उत्तरायण तथा दक्षिणायन, पृथ्वी की गति एवं सूर्य के चारों ओर परिक्रमा तथा इसी के आधार पर १२ दिक्-चिह्नों (twelve Zodiac Signs) का निर्णय, इन सभी का आविष्कार तथा ठीक निरूपण इसी महान् सम्राट के समय, वैज्ञानिक पुरोहितों के द्वारा किया गया। उन्होंने वृत्त के ३६०° के हर डिग्री को ६० मिनट एवं हर एक मिनट को ६० सेकेण्ड में विभाजित कर समय-निरूपण करने का भी कायदा निकाला एवं समय जाँचने के लिये धूप-घड़ी एवं जल-घड़ी का भी निर्माण किया। दिन की गणना मध्य रात्रि से नहीं, बल्कि चन्द्रोदय से की जाती थी। दिन १२ घंटे में और प्रत्येक घंटा, ३० मिनट में विभाजित किये गये थे। श्री विल डूराण्ट महोदय के अनुसार, "हमारे मास का चार सप्ताहों में, घड़ी का १२ घंटे में (चौबीस घंटे के स्थान पर), घंटे का ६० मिनट एवं मिनट का ६० सेकेंड में विभाजन निश्चय ही हमारे समसामयिक संसार में बैबिलोनिया के ही अवशेष एवं देन हैं।"[1]

चिकित्सा-विज्ञान

तत्कालीन बैबिलोनीय समाज में चिकित्सा-विज्ञान की भी काफी उन्नति हुई। चिकित्सा-विज्ञान पर लिखे गये ८०० मिट्टी के चौकोर टुकड़े पाये गये हैं। यह पहले ही बताया जा चुका है कि, डाक्टरों की फीस तथा दंड देने के नियम आदि सभी महान् सम्राट हम्मुराबी की विधान-संहिता के अनुसार ही होते थे। परन्तु बाबुल वाले कुसंस्कार के कारण, डाक्टरों से अधिक, जादू-टोना करने वालों पर विश्वास करते थे। उनका विश्वास था कि पाप के कारण मनुष्य बीमार होता है और उस समय उसके ऊपर भूत-प्रेत या दानव का प्रभाव होता है। अतः उस भूत या दानव को भगाने के लिए मंत्र-तंत्र पढ़े जाते (जैसे आजकल देहातों में झाड़-फूंक होती है) या ऐसी दुर्गन्धयुक्त चीजों को मिलाकर औषधि बनाई जाती थी, जैसे कच्चा मांस, सांप का गोश्त, लकड़ी के छिलके, जिनमें

---

1. The division of our month into four weeks, of our clock into twelve hours—(instead of twentyfour) of our hour into sixty minutes, and of our minute into sixty seconds, are unsuspected Babylonian vestiges in our contemporary world.

—Will Durant, 'Our Oriental Heritage', pp. 257-258

शराब या तेल मिलाया जाता था, या सड़ी हुई खाने-पीने की चीजें, हड्डी के चूरे, चर्बी तथा धूल, जिनमें जानवर या मनुष्य के मल-मूत्र मिला दिये जाते थे। आश्चर्य है कि ऐसी औषधि के पीने पर रोगी जीवित कैसे रह जाता था ?

(१५) **दर्शन शास्त्र एवं दार्शनिक**—धर्म, देवता एवं पुरोहितों का बैबिलोनीय समाज पर इतना प्रभाव था कि शुद्ध दर्शन या दार्शनिक चिन्तन का विकास कभी भी बैबिलोनिया में न हो सका। गिलगामेश के महाकाव्य में अवश्य कुछ दार्शनिक बातें उपलब्ध होती हैं, जैसे अमर-जीवन के सन्धान में गिलगामेश की अरालू यात्रा, अमर-जीवन देने वाले पौधे की प्राप्ति तथा देवी सवितु के द्वारा गिलगामेश को उपदेश देना कि "इस प्रयत्न को छोड़कर सांसारिक सुखों का आनन्द उठाओ" आदि आदि। परन्तु आत्म-चिन्तन सम्बन्धी कोई पुस्तक असुरबानीपाल की लाइब्रेरी में या और कहीं अभी तक नहीं प्राप्त हुई है। स्वाभाविक है कि भौतिक ज्ञान, विशेषकर व्यापारिक ज्ञान की उन्नति जहाँ होती है वहाँ अध्यात्मिक ज्ञान की उन्नति होना असम्भव है। फिर, जिस समाज में हरएक व्यक्ति को स्वतंत्रतापूर्वक चिन्तन करने की सुविधा प्राप्त होती है वहीं पर, दार्शनिक चिन्तन का उद्भव होता है। परन्तु ऐसे समाज में, जो कि एक ओर तो पुरोहितों से दबाया हुआ, दूसरी ओर भौतिक सुख के सन्धान में लीन है, आध्यात्मिक या दार्शनिक चिंतन की गुंजाइश नहीं के बराबर है। अतः हम जिसे Philosophy या दर्शन-शास्त्र कहते हैं, उसका विकास प्राचीन बैबिलोनिया में न हो सका जैसा कि प्राचीन भारत, यूनान या रोम में हुआ था।

(१६) **बैबिलोनीय सभ्यता का उपसंहार एवं पतन**—सम्राट नेबुचडरेज्जर की मृत्यु ५६२ ई० पू० में हो गयी। कहा जाता है कि अपने अन्तिम दिनों में यह महान् सम्राट पागल हो गया। जानवरों की तरह चारों हाथ-पैर से चलने लगा और घास खाने लगा। इसकी मृत्यु के ३० वर्ष के अन्दर ही बाबुल-साम्राज्य का सामूहिक पतन हो गया। उसके लड़के नेबोनिदस ने १७ वर्ष तक (५६२ ई० पू०–५४५ ई० पू०) राज्य किया, परन्तु राज-कार्य से अधिक उसे पुरातत्व में दिलचस्पी थी—अतः प्राचीन खंडहरों को खोदने में उसने अधिक समय व्यतीत किया जब कि साम्राज्य के अंदर शासन-तंत्र में गड़बड़ी फैली हुई थी। बाबुल की सैनिक-शक्ति शिथिल पड़ गयी, व्यापारी लोग देश-प्रेम भूल गये, और साधारण जनता ऐशो-आराम में डूब गयी। फिर ५३९ ई० पू० में फारस सम्राट साईरस प्रथम ने बाबुल को जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया। २०० वर्ष फारस के अधीन रहने के पश्चात् ३३१ ई० पू० में, सिकन्दर महान् ने बैबिलोन पर विजय प्राप्त करते हुए, समारोह के साथ सम्राट नेबुचडरेज्जर के महल में प्रवेश किया जहाँ अत्यधिक शराब पीने से ही उसकी मृत्यु हो गयी।

श्री विल डूराण्ट का कहना है कि "**बैबिलोनिया की सभ्यता मानव-जाति के लिए उतनी लाभदायक नहीं थी जितनी मिस्र की। उतनी विशाल और वैचित्र्यमय नहीं थी जैसी भारत की। उतनी सूक्ष्म और परिपक्व नहीं थी जैसी चीन की।**"[1]

परन्तु तब भी बैबिलोनीय सभ्यता की देन तथा प्रभाव पूर्वी तथा पश्चिमी देशों की सभ्यता पर काफी गहरा है। यहूदियों की पौराणिक कथाएँ बाबुल की पौराणिक कथाओं पर आधारित हैं, और इनसे ये कथाएँ बाद में यूरोपवालों ने ग्रहण कीं। यूनानियों ने गणित, ज्योतिष शास्त्र, खगोल-विद्या, औषधि-शास्त्र, व्याकरण, शब्दकोष, पुरातत्व, इतिहास तथा दर्शन, आदि ज्ञान-विज्ञान-शास्त्रों की नींव डालने में बाबुलवालों से ही सहायता ली—पश्चात् ये विद्याएँ रोम होती हुई यूरोप भर में फैल गयीं। यूनानियों के कई धातुओं, नक्षत्रमंडल, वजन तथा तौल, गाने-बजाने के औजार तथा औषधियों के नाम, आदि बैबोलोनीय शब्दों के अनुवाद या अनुरूप ही हैं। यद्यपि यूनानियों ने अपनी वास्तुकला के नमूने मिस्र तथा क्रीटवालों से ग्रहण किये, परन्तु बैबिलोनीय वास्तुकला ने मुसलमानों की मस्जिदों की मीनारें और मध्ययुगीय कला, तथा वर्तमान अमेरिकी कला को काफ़ी प्रभावान्वित किया है। मुस्लिम मस्जिदों में मेहराब, प्रकोष्ठ, गुम्बद, डाट आदि का प्रयोग, बैबिलोनीय जिगुरातों के ही अनुरूप हैं। श्री विश्वंभरनाथ पांडे का कहना है कि दक्षिणी भारतीय-मन्दिरों के गोपुरम् जिगुरात के शीर्षमंडल के ही अनुरूप हैं। परन्तु गोपुर या विमान की बनावट तथा जिगुरात के शीर्षमंडल की बनावट में काफी अंतर है।

शासन तथा न्याय-विधान के क्षेत्र में सम्राट हम्मुराबी की विधान-संहिता ने सारे विश्व के शासन, न्याय तथा दंडविधान-प्रणाली (Penal System) को प्रभावान्वित किया है। बाबुल पर असीरियों की विजय एवं उनके द्वारा बाबुल की सभ्यता का ग्रहण तथा उनके विशाल साम्राज्य में उसका प्रचार, उनके कैदी, यहूदियों पर बाबुल की सभ्यता की अमिट छाप, पश्चात् बाबुल पर फारस तथा यूनानियों की विजय, आदि आदि कारणों से मेसोपोटामिया की सभ्यता, पूर्व और पश्चिम दोनों देशों में, सुगन्धित फूल की महक की तरह फैल गयी और अपना अमिट प्रभाव छोड़ गयी।

———

1. "The civilisation of Babylonia was not as fruitful for humanity as Egypt's, not as varied and profound as India's, not as subtle and mature as China's".—'Our Oriental Heritage', p. 263.

अध्याय | ३

असीरीय सभ्यता तथा असुर-साम्राज्य

जिस समय बैबिलोनिया पर कस्साइट जाति राज्य कर रही थी उसी समय बैबिलोनिया से ३०० मील उत्तर, असीरिया-प्रान्त में एक नवीन शक्ति का प्रादुर्भाव हो रहा था जिसने शीघ्र ही ईलम, सुमेरिया, बैबिलोनिया, फीनिशिया तथा मिस्र पर विजय प्राप्त कर, एक विशाल असुर-साम्राज्य की नींव डाली।

जनता तथा निवासी

यहाँ के निवासियों की उत्पत्ति बाबुल तथा अक्काद की सभ्य सेमेटिक या सामी जाति, पश्चिम की असेमेटिक जाति जिनमें सम्भवत: हिट्टाईट और (मिटानी) जातियाँ भी थीं—एवं कुर्दिस्तान के पहाड़ी निवासियों के मिश्रण से हुई। असीरिया निवासी अपनी भाषा तथा कला के लिए सुमेरिया तथा बैबिलोनिया के निकट ऋणी हैं। निरंतर युद्ध करते रहने के कारण असीरीयन युद्ध-प्रेमी एवं मजबूत शारीरिक-गठन के होते थे। सिक्खों की तरह ये दाढ़ी-मूँछ भी रखते थे। इन्होंने युद्ध-कला तथा कौशल में इतनी उन्नति की कि उस समय के पूर्वी एशिया के सभी देश इनका लोहा मानने पर बाध्य हुए।

असीरिया के प्रारम्भिक शासक, बैबिलोनिया राज्य द्वारा नियुक्त, उत्तरी इलाके तथा शहरों के 'पटेसी' (सूबेदार) मात्र थे। कस्साइट-जाति के आकमण से जब बैबिलोनिया दुर्बल हो गया, तब वे पूर्ण-स्वाधीन हो गये और अपने को 'सार्वभौम-चक्रवर्त्ती-सम्राट' (King of Universal reign) कहने लगे।

मानव-इतिहास में असुर जाति वीर, पराक्रमी एवं भयंकर योद्धा तथा इनके सम्राट उत्कट साम्राज्यवादी तथा भयंकर बदला लेनेवाले शासकों में गिने जाते हैं। इनकी निष्ठुरता, क्रूरता तथा बर्बरता, जर्मनी के नात्सी (Natzi) निष्ठुरता तथा बर्बरता के समान ही मार्मिक एवं करुणाजनक है।

इनके उपास्य-देवता 'असुर' थे और इन्हीं के नाम पर 'असुर-नगर' का नाम पड़ा। इस मुख्य नगर के अलावा इनके तीन और प्रधान शहर थे—अरबेला, कलख, निनेव। ये चारों शहर दजला नदी या उसकी सहायक नदियों के किनारे बसे

हुए थे। इनके आधुनिक नाम क्रमशः ये हैं—कलात-शेरघाट, ईरविल, निमरुद तथा कुमञ्जिक। प्रारम्भ में 'असुर-नगर' ही इनकी राजधानी थी। परन्तु पश्चात् अधिक गर्मी एवं बाबुलवालों के आक्रमण के कारण राजधानी शहर निनेव को हटा दी गयी।

शल्मनेसर प्रथम

यह इनका प्रथम प्रसिद्ध सम्राट हुआ जिसने सन् १२७६ ई० पू० उत्तर के नगर-राज्यों को मिलाकर विशाल आसुरी-साम्राज्य की नींव डाली। इन्होंने अपनी राजधानी कलख (आधुनिक Nimrud-निमरूद) में स्थापित की।

टिगलथ-पिलेस्सर प्रथम

परन्तु इन आसुरी-शासकों में सर्वप्रथम महान् तथा प्रसिद्ध सम्राट टिगलथ-पिलेस्सर प्रथम (Tiglath-Pilasser I) हुआ जिसने १११५ ई० पू०—११०२ ई० पू० तक राज्य किया। ये बड़े पराक्रमी एवं वीर शिकारी थे। कहा जाता है कि इन्होंने पैदल ही केवल १२०, तथा रथ पर चढ़कर ८०० शेरों का शिकार किया था। इनके एक शिलालेख से जाहिर होता है कि ये शेरों के ही नहीं, परन्तु पड़ोसी राष्ट्रों के भी शिकारी अर्थात् ध्वंसकारी थे। इस शिलालेख में इनका कहना है, "मैंने कुम्मु के निवासियों पर विजय प्राप्त करने के लिये यात्रा की। उनके शहरों को जीता और उन्हें आग लगाकर खाक कर दिया, और लूट का माल लेकर चला आया···। अदन्श (Adansh) के निवासी अपने पहाड़ी इलाके को छोड़कर मेरे पैर चूमने लगे। मैंने उन पर करों (taxes) का बोझ लाद दिया।"[1] केवल इतना ही नहीं, इस दुर्धर्ष (ferocious and fierce) सम्राट ने बैबिलोन पर कब्जा किया तथा, हिट्टाईट, आर्मेनी एवं ४० अन्य जातियों को जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया। मिस्र देश ने डर के मारे बहुमूल्य उपहार इनको भेंट किये। इस लूट-मार के धन तथा उपहारों से इन्होंने आसुरी देवी-देवताओं के कई मन्दिर स्थापित किये। परन्तु टिगलथ पिलेस्सर प्रथम का यह गौरव-रवि शीघ्र ही अस्तमित हो गया।

इनके पश्चात् **असुर-नासिर-पाल द्वितीय** (८८४-८५९ ई० पू०) ने और अन्यान्य छोटी-छोटी रियासतों को जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया और इस प्रकार आसुरी-साम्राज्य के विस्तार में एक अध्याय उसने और जोड़ दिया। अपने पूर्वजों के समान, इन्होंने भी पराजित राजाओं की आँखें निकलवा लीं और उनके हरेम (अन्तःपुर) को अपने पूर्ण-सम्भोग में लगाया।

चतुर्थ महान् सम्राट **शलमनेसर तृतीय** (८५९-८२४ ई० पू०) ने दमिश्क

---

1. "Our Oriental Heritage by Will Durant" p. 266.

(Damascus) तथा सीरिया पर विजय प्राप्त कर अपने साम्राज्य में मिला लिया। कहा जाता है इन्होंने सीरिया-विजय के समय १६००० सीरिया-निवासियों की हत्या की और विजित जातियों से कर वसूल किया। परन्तु इनके लड़के ने इनके विरोध में भयंकर विद्रोह करते हुए इनको मार डाला।

फिर तीन वर्ष तक (८११-८०८ ई० पू०) **राज-माता सम्मुरमात्** (Sammuramat) ने सकुशल असीरिया पर राज्य किया। यह महान् योद्धा तथा कुशल राजनीति एवं महलों की निर्मात्री (Engineer) थी।

इसके बाद **टिगलथ-पिलेस्सर तृतीय** (७४५-७२७ ई० पू०) ने आर्मेनिया, सीरिया, बैबिलोनिया, दमिश्क, समारिया आदि पर विजय प्राप्त करते हुए काकेशस पहाड़ियों से मिस्र तक आसुरी साम्राज्य को विस्तृत किया। अपने पूर्वजों की तरह यह भी कुशल योद्धा, निपुण शासक एवं मन्दिर तथा महलों का निर्माता था।

इनके पश्चात् **सार्गोन द्वितीय** (Sargon II) असीरीय साम्राज्य के गद्दी पर बैठा। यह आसुरी-सेनादल का सेनापति था और सैनिक सहायता से ही यह विशाल आसुरी-साम्राज्य का अधिपति बन बैठा। इसने बैबिलोनिया पर पुनः विजय प्राप्त की, पूर्व में ईलम तथा पश्चिम में मिस्र को पराजित किया एवं यहूदी, फिलीस्तीन तथा साईप्रस द्वीप के यूनानियों से उपहार प्राप्त किये। यह भी बड़ा ही सफल शासक था। अपने समय में इसने कला तथा साहित्य को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। इसके समय में उद्योग-धन्धे, कारोबार तथा व्यापार में यथोचित वृद्धि हुई। बर्बर सीमेरी जातियों के आक्रमण से असीरिया को बचाते हुए यह वीरगति को प्राप्त हुआ।

इनके बाद इनके पुत्र **सेन्नाचेरिब** (Sennacherib) ने—**७०५ ई० पू० से ६८१ ई० पू० तक**—असीरिया पर राज्य किया। अपने पिता की भांति यह भी वीर एवं पराक्रमी था। इसके समय में फारस की खाड़ी के आस-पास के प्रदेशों में कई विद्रोह हुए, जिनका दमन इन्होंने बड़ी कठोरता से किया। इन्होंने यरुशलम तथा मिस्र पर भी आक्रमण किया, परन्तु सफलता न प्राप्त हुई। इन्होंने अपने समय में ८९ शहरों को विध्वस्त किया, ८२० गांवों को उजाड़ा तथा ७,२०० घोड़े, ११,००० गधे, ८०,००० साँड, ८००,००० भेड़, तथा २०८,००० कैदियों को अपने कब्जे में किया। इनके समय में बाबुल वालों ने भयंकर विद्रोह किया, और उसने उतनी ही भयंकरता से उस विद्रोह का दमन किया। उसने बैबिलोन शहर को जलाकर भस्मीभूत कर दिया तथा जवान, बूढ़े, बच्चे सभी निवासियों का कत्लेआम किया। उसने मन्दिर और महलों को भी खूब लूटा और बैबिलोन के देवताओं को या तो काट कर टुकड़े-टुकड़े कर दिये, या बांध कर अपनी राजधानी नीनेव (Nineveh) ले गया।

इस लूट-मार के धन से सेन्नाचेरिब ने अपनी राजधानी नीनेव का पुनः निर्माण किया। उसने नदी की धाराओं के रास्ते बदल कर उसकी सुरक्षा कायम की तथा ऊसर, ऊजड़ बंजर भूमि को कृषि-योग्य बनाया, जिससे असीरिया में गल्ले की कमी न रही। परन्तु इस पराक्रमी सम्राट को, इनके पुत्रों ने, प्रार्थना करते समय, मार डाला।

परवर्ती-सम्राट ईस्सरहेडडन (Essarhaddon—681—669 B.C.) भी अपने पिता की ही भाँति वीर तथा पराक्रमी था। गद्दी पर बैठते ही उसने मिस्र पर चढ़ाई की, क्योंकि मिस्र ने सीरिया के विद्रोहियों की सहायता की थी। मिस्र पर विजय प्राप्त कर उसने मिस्र को विशाल असीरीय-साम्राज्य के एक प्रान्त (या राज्य province) के रूप में परिवर्तित कर दिया। इस प्रकार असुर राजधानी नीनेव से मिस्र की राजधानी मेम्फीस (Memphis) तक इसने अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इन युद्धों से लूट का असंख्य माल उसे प्राप्त हुआ जिसके द्वारा उसने असुर-साम्राज्य को ऐश्वर्यशाली बना दिया।

सम्राट् ईस्सरहेडडन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य था, बैबिलोनिया को स्वाधीनता प्रदान करना। बैबिलोनिया के जिन देवताओं को उनके पिता सेन्नाचेरिब, जंजीर में बाँध कर नीनेव ले आये थे, उनको उसने मुक्त कर दिया। बैबिलोन-शहर को भी उसने फिर से बसाया। ईलम के अकालग्रस्त लोगों को सामूहिक रूप से उसने खाने-पीने की चीजें दीं। वस्तुतः उसकी उदारता तथा महानता की तुलना, समकालीन सम्राटों में या अन्य देश के शासकों में उपलब्ध नहीं हैं। इन महान् कार्यों के कारण निश्चय ही आसुरी-सम्राटों में ईस्सरहेडडन का स्थान एक उज्ज्वल-ज्योतिष्क के रूप में है।

इस महान् सम्राट के उत्तराधिकारी तथा असुर सम्राटों में सबसे प्रसिद्ध, **सम्राट असुरबानीपाल** हुये जिन्होंने ६६९ ई० पू० से ६२६ ई० पू० तक विशाल असीरीय-साम्राज्य पर शासन किया। यूनानियों ने इन्हीं का Sardenapalus के नाम से उल्लेख किया है।

इस महापराक्रमी सम्राट ने, अपने दीर्घकालीन शासन-काल में, एक के बाद एक भयंकर युद्ध किया। नगरों में घेरा डालकर वहाँ के लोगों को अकालग्रस्त बनाया, और जीवित झुंड के झुंड कैदियों की चमड़ी, उधेड़ डाली। मानव इतिहास में इस प्रकार के कत्लेआम के वर्णन बहुत कम मिलते हैं। यहूदियों ने इसी कारण नीनेव शहर का नाम 'सिटी आफ ब्लड' (City of Blood) या 'रक्तमय नगर' रखा था।

इस सम्राट ने ईलम पर आक्रमण करते हुए उसकी क्या दुर्दशा की, वह उसी समय के एक असीरीय लेखक के वर्णन से ज्ञात होता है। सम्राट असुर-बानीपाल ने सारे ईलम-प्रान्त में नमक छिड़कवाये और कांटेदार झाड़ियाँ लगा

दीं। ईलम-राज-परिवार के सभी सदस्य (स्त्री या पुरुष) शासक वर्ग, कारीगर निवासी, घोड़े, खच्चर, गधे तथा जानवरों के झुंडों को कैद कर लूट के माल के रूप में असीरिया ले आया। इस प्रकार एक महीना तथा २५ दिन के अन्दर ही उसने ईलम जैसे सुखी देश को, एक भयंकर उजड़े हुये प्रान्त के रूप में बदल दिया। ईलम की रौनक हमेशा के लिये समाप्त हो गयी। उसके उजड़े हुये, खेतों में अब जंगली जानवर चरने-फिरने लगे।

"The voice of men, the steps of flocks and herds, the happy shouts of mirth—I put an end to them in its fields, which I left for the asses, the gazelles, and all manner of wild beasts to people"—'Our Oriental Heritage'—p. 269.

परन्तु इतने ही से यह रक्त-पिपासु सम्राट सन्तुष्ट न हुआ। जिस समय अपने महल में अपनी रानी तथा अन्य अतिथियों के साथ वह दावत खा रहा था, उसने ईलम-सम्राट के कटे हुए सर को मंगवाया और उसे एक ऊंचे बल्लम में बेधकर चारों ओर घुमवाया। फिर अपनी राजधानी नीनेव के फाटक पर उसे लगवा दिया जहाँ धीरे-धीरे सड़कर वह समाप्त हो गया। ईलम-सेना-पति दनानु के जीते जी चमड़े खिंचवाये गये तथा उसका खून बहाया गया। उसके भाई का पहले गला काटा गया, फिर शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर राज्य भर में विजय-पारितोषिक के रूप में बाँटा गया।

इस प्रकार रक्त के फौव्वारे और खून की नदियाँ बहाकर उसने विशाल असीरीय साम्राज्य में जो इनके समय में ईथीओपिया से आर्मोनिया, तथा सीरिया से मीडिया तक फैला हुआ था, सुव्यवस्था तथा शान्ति स्थापित की। विद्रोह तथा विद्रोही इस प्रकार दब गये कि फिर कभी सर उठाने का नाम ही न लिया।

परन्तु क्रूर तथा निर्दयी होते हुये भी वह कला तथा साहित्य का प्रेमी था। उसने हजारों लेखकों की नियुक्ति की और उनके द्वारा सारे सुमेरी तथा बैबीलोनीय साहित्यों की नकल करवाकर, अपनी राजधानी नीनेव के राजकीय पाठागार में सुरक्षित रखवा दिया। २,५०० वर्ष के पश्चात भी इनकी खुदाइयों में ये लेख (संख्या ३०,०००) अटूट तथा सुरक्षित अवस्था में पाये गये हैं। श्री विल-डूराण्ट ने इनकी तुलना, प्रशिया-सम्राट फ्रेडरिक से करते हुये कहा है कि "सम्राट असुरबानीपाल को अपनी साहित्यिक योग्यता पर उतना ही गर्व था जितना कि अपने युद्ध तथा शिकार पर" (Our Oriental Heritage, p. 269). कहा जाता है कि सिर्फ बल्लम और छुरा लेकर वह शेर का शिकार करने जाता था और स्वयं ही शेर को मारकर वापस लौट आता था। इस प्रकार अकेले जंगलों में शेरों का शिकार करना अवश्य ही विशाल विक्रम तथा वीरता का परिचायक है।

असुरबानीपाल ने कई भव्य महल तथा मन्दिरों का भी निर्माण किया।

तथा इनके निर्माण के लिए राज्य भर में कारीगरों और महल-निर्माताओं तथा संग-तराशों को ढुंढ़वा कर अपनी राजधानी नीनेव में एकत्र किया।

इस प्रकार सम्राट असुरबानी पाल के समय में असुर-साम्राज्य, धन, जन, ऐश्वर्य, पराक्रम, भवन इत्यादि में अपनी पराकाष्ठा को पहुंच गया। परन्तु अब उसके पतन के लक्षण दिखायी पड़ने लगे।

बाबुल तथा मिडिया का असीरिया पर सम्मिलित आक्रमण

६२६ ई० पू० में सम्राट् असुरबानीपाल की मृत्यु हो गयी एवं उसी वर्ष नेवोपलेस्सर ने (चाल्दीयन या खाल्दी साम्राज्य के संस्थापक जिनका वर्णन ऊपर किया गया है) मीड्सि सम्राट साईयाक्षरस (Cyaxares) की सहायता से असीरिया की अधीनता से बैबिलोनिया को मुक्त कर वहाँ "द्वितीय राजवंश" की स्थापना की। उसके पुत्र महान् नेबुचडरेज्जर से Cyaxares की लड़की की शीघ्र ही शादी हो गयी। अब तो चाल्दीयन और भी शक्तिशाली हो गये। ६१२ ई० पू० में नेबुचडरेज्जर के तथा मीडिस सम्राट् के सम्मिलित आक्रमण से असुरों की राजधानी नीनेव का पतन हो गया। विजयी योद्धाओं ने इस सुन्दर शहर को जलाकर खाक कर दिया, निवासियों का कत्लेआम किया और मूल्यवान वस्तुओं को खूब लूटा। इस प्रकार विशाल असीरिया साम्राज्य का पतन हो गया। साईआक्षरास ने उसके उत्तरी भाग को अपने साम्राज्य में मिला लिया और दक्षिणी भाग पर नेबोपलेस्सर ने अपना अधिकार कर लिया। ५३९ ई० पू० में प्रथम फारसी सम्राट् साईरस प्रथम ने सारे प्रान्त को फारसी साम्राज्य के अन्तर्गत कर लिया। इस प्रकार असीरिया के नामोंनिशान भी मिट गये। सन् ४०१ ई० पू० में जब यूनानी सेनापति ज़ेनोफोन, अपनी चुनी हुई १०,००० फौज के साथ ईरान से अपने देश की ओर नीनेव शहर के ध्वंसावशेषों के ऊपर से गुजर रहा था, तो उसे जरा सा भी सन्देह न हुआ कि इन खंडहरों में किसी समय उन असुरों की राजधानी थी, जिन्होंने केवल २०० वर्ष पहले विश्व के एक विशाल भाग पर राज्य किया था तथा जिस 'अमर देवता असुर' के नाम से असीरीय सम्राट युद्ध तथा शासन करते थे—उस महान् देवता का नाम भी उस समय तक मिट चुका था।

असुरों की महान् शक्ति, उत्थान एवं पतन के कारणों की विवेचना करने के लिए यह आवश्यक है कि उनकी, सरकार. शासन-प्रबन्ध तथा युद्ध करने के नवीन कौशल आदि की समीक्षा की जाय।

असीरीय-सरकार, शासन-प्रबन्ध एवं सेना

यह हम ऊपर लिख चुके हैं कि असुर सम्राट उत्कट साम्राज्यवादी थे

और असुर सम्राट असुरबानीपाल के विशाल साम्राज्य (जिसकी बराबरी केवल सिकन्दर-पूर्व फारसी-साम्राज्य ही कर सकता था एवं बाबुल सम्राट हम्मुराबी एवं मिश्र के फैरोआ थुतमोस तृतीय के साम्राज्य प्राय: इनके समान ही थे) में निम्न प्रान्त सम्मिलित थे—असीरिया, बाबुल, सुमेरिया, ईलम, आर्मेनिया, मीडिया, पैलेस्ताईन, सीरिया तथा मिश्र।

उस समय इतने विशाल साम्राज्य पर भलीभाँति शासन करना सरल न था। असुरों की केन्द्रीय सरकार सुव्यवस्थित तथा शक्तिशाली थी क्योंकि उन दिनों केन्द्रीय सरकार के शक्तिहीन होते ही यत्र-तत्र विद्रोह प्रारम्भ हो जाते थे। परन्तु स्थानीय शासन-प्रबंध में आसुरी सम्राट काफ़ी उदार थे। सभी बड़े-बड़े शहर निजी शासन-प्रबन्ध तथा धार्मिक मामलों में स्वतंत्र थे। नाममात्र के लिए उन्हें आसुरी सम्राटों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ती थी, और नियमित कर देना पड़ता था। हाँ, विद्रोह करने पर इन शहरों के शासक तथा निवासियों को भयंकर दंड दिया जाता था जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। फिर भी विद्रोह निरंतर होते ही रहते थे। अत: इन विद्रोहों को दबाने के लिए आसुरी सम्राट टिगलथ-पिलेस्सर तृतीय ने एक नया उपाय निकाला। उसके समय में विद्रोहियों या विजित देश के निवासियों को, दूर-दूर के प्रान्तों में, भेज दिया जाता था, जहाँ कुछ दिनों के पश्चात्, स्थानीय निवासियों के साथ घुल-मिल कर उनका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता था। परन्तु इतने पर भी विद्रोह होते ही रहे।

असीरीय सेना

असीरीय सम्राटों को सदैव अपनी सेना पर भरोसा रखना पड़ता था—इसलिए उन्होंने असीरीय फौज को खूब शक्तिशाली बनाया। और उन्हें विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित किया एवं नाना प्रकार की रणनीति सिखाकर उन्हें सर्वदक्ष तथा अविजित बना दिया।

असीरीय सेना के चार भाग थे, (१) रथ, (२) घुड़सवार, (३) पैदल, (४) सड़क-निर्माण तथा सफाई करने वाले। असीरीय सेना का सर्वोत्तम गुण था उसका लचीलापन—बहुत थोड़े समय में यह सेना, बहुत जल्दी सुव्यवस्थित ढंग से घूम-फिरकर, शत्रु का सामना कर सकती थी। आधुनिक रण-कौशल में अब भी इस प्रथा को अपनाया जाता है। नैपोलियन अपनी दुर्धर्ष फौज के इसी गुण के कारण 'महान्-विजेता' बन सका। असीरीय फौज घेरा डालने में तथा लड़ाई के मैदान में दुश्मनों से मोर्चा लेने में (जैसे द्रुतगति से शत्रु पर आक्रमण करना एवं खंड-युद्ध में उन्हें लिप्त रखना) इतनी पारंगत थी कि उस समय असीरीय सेना का नाम आस-पास के देशों के लिए एक त्रास बन गया था।

सेनादल के हर एक सिपाही को लोहे के कवच और वर्म पहनाकर अत्यधिक सुरक्षित बना दिया जाता था। उनके सिर पर लोहे या ताँबे की टोपी (helmet) होती थी। अन्दर वे गद्देदार कौपीन (loin cloth) तथा शरीर के ऊपर चमड़े का बना हुआ कवच, (जिसके ऊपर धातु की पटरियाँ लगी हुई होती थीं) पहनते थे ताकि शरीर के किसी भाग को अधिक आघात या चोट न पहुँचे।

युद्ध में सम्राट स्वयं सैन्य-संचालन करता था। सम्राट् तथा कुलीन वर्ग के सेनापति अपने-अपने रथों पर चढ़कर अपनी अधीनस्थ सेना को आदेश देते तथा संचालन करते थे।

सेना के मुख्य अस्त्र-शस्त्र थे—तीर-धनुष, भाला, बल्लम, गदा, मुग्दर (मूसल), कुल्हाड़ी (battle axe), आड़ीदार तलवार (Cutlasses) गोफ़न या ढेलवाँस, फरसा और खंजर। घेरे के समय शत्रुओं के किले की दीवार तोड़ने के लिए सामने लोहा लगा हुआ दीवार-तोड़ यन्त्र (battering ram) का प्रयोग किया जाता था जिसको लटकाने के लिए कभी-कभी जंजीरें भी प्रयोग की जाती थीं। घेरा डाले गये शत्रु किले के ऊपर से लक्षवेधी तीर, मशाल, बदबूदार बर्तन आदि नीचे आक्रमणकारी सेना पर फेंकते थे और दीवार तोड़ने वाले (battering ram) यन्त्र को फाँसने के लिए ऊपर से जंजीर भी फेंकते थे।

विजित शहरों को जलाकर भस्मीभूत कर दिया जाता था और वहाँ के पेड़ काट डाले जाते थे। लूट के माल सिपाहियों में (केवल सम्राट् तथा सेनापति के हिस्से के अलावा) समान भागों में बाँटा जाता ताकि वे सम्राट के प्रति वफादार रहें। विजित शत्रुओं के साथ कैसा व्यवहार किया जाता था यह तो ऊपर हम लिख चुके हैं। उस समय युद्धक्षेत्र में यदि कोई सिपाही, शत्रु के कटे हुए सर को लाकर सम्राट के सामने उपस्थित करता, तो उसे सम्राट् विशेष रूप से पुरस्कृत करते थे। अधिकतर कैदियों को मार डाला जाता था। उनकी हत्या करते समय सरकारी लेखक उनकी गिनती लिखते जाते थे। अन्त में कितने कैदियों को मारा गया इसकी सूचना सरकारी तौर से सम्राट को दी जाती थी। इस प्रकार से कैदियों की हत्या करने के तरीके को हिटलर ने भी अपनाया था।

विजित शत्रु के कुलीन-वर्ग के लोगों को विशेष रूप से दंड दिया जाता था। उन्हें या तो किले की ऊँचाई से नीचे फेंक दिया जाता या उनके हाथ, पैर, नाक, कान, धीरे-धीरे काट डाले जाते थे। कभी-कभी उनका चमड़ा उधेड़ लिया जाता या वे आग पर जलाये जाते थे। क्रूरता और नृशंसता में असीरीयन निःसन्देह विश्व के इतिहास में अतुलनीय हैं।

आसुरों के धर्म तथा देवता

सभी प्राचीन सभ्यताएँ धर्ममूलक थीं, और उस समय के सम्राट् धर्म

को अपने शासन का अविभाजित अंग बनाये हुए थे। अत. जनता को काबू में रखने के लिए यह आवश्यक था कि वे पुरोहितों को खूब दान इत्यादि दें तथा देव-मन्दिरों में नियमित रूप से पूजा-पाठ करें, एवं खूब चमक-दमक से उत्सवादि मनाएँ।

इस नीति का पालन बड़ी दक्षता से आसुरी सम्राटों ने भी किया। आसुरी साम्राज्य का प्रधान, उनके प्रधान देवता 'अशुर' माने जाते थे। यही 'अशुर,' ऋग्वेद वर्णित 'असुर' हैं या नहीं, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है यद्यपि कुछ लेखकों ने दोनों को मिलाने का भरसक प्रयत्न किया है। आसुरी सम्राट राज्य-संबंधी सभी कार्य, 'असुर-देव' के नाम से करते थे जैसे, शासन-प्रबन्ध, युद्ध, कर वसूलना, आदि-आदि। स्वयं आसुरी-सम्राट, सूर्य-देवता शम्स के अवतार माने जाते थे। वस्तुत: आसुरों ने अपना धर्म, साहित्य एवं विज्ञान, उद्योग-धन्धे तथा कानून आदि सभी कुछ सुमेरिया तथा बैबिलोनिया से ही उधार लिया था—केवल आवश्यकतानुसार यत्र-तत्र उनमें उन्होंने परिवर्तन कर दिये थे। अन्तर केवल इतना ही था कि सुमेरी तथा बाबुली सभ्यता मुख्यत: व्यापारिक सभ्यताएँ थीं—परन्तु असीरियन सभ्यता तथा राज्य एवं शासन मूलत: सैनिक थी, जिनका प्रधान कार्य तंत्र युद्धादि करना था। इन देवताओं के अलावा अन्य देवताओं के नाम भी, सम्राट् असुरबानीपाल के लेख (नीनेव में प्राप्त) में पाये जाते हैं। जैसे नबु, इनुर्त्त, नर्गल तथा अदाश। बाबुल के प्रधान देवता मार्डूक भी आसुरियों के प्रधान देवताओं में से थे। आसुरों की प्रधान धार्मिक क्रिया थी—मंत्र-तंत्र, जादू-टोने के द्वारा इन देवताओं को तुष्ट करना, एवं कैदियों का, इनके सामने बलिदान करना। उनकी कल्पना थी कि दुनिया भूत-प्रेतों से भरी हुई है और इनको भगाने के लिए ताबीज़ आदि का धारण करना आवश्यक है।

सैनिक शासन-तंत्र में दंड नीति सदैव कठोर होती है। असीरियनों के दंड भी बड़े कठोर होते थे। जैसे अपराधी को जनता के सामने उपस्थित करना। ज़बर्दस्ती शारीरिक परिश्रम करवाना, कोड़े लगवाना, नाक-कान काट डालना, बधिया करना, जबान खींच लेना, आँखें निकलवा लेना, चमड़ी खिंचवा लेना तथा सर काट डालना। आसुरी सम्राट् सार्गोन द्वितीय ने और भी क्रूर दंड-नियमों को इनमें शामिल कर दिया था जैसे, अपराधी को जहर पिलवाना या उसके बच्चों को देवता की वेदी के समक्ष जीवित जला देना। अवैध यौन-सम्बन्ध, धर्षण, और किसी प्रकार की चोरी करने वाले को मृत्युदंड दिया जाता था। अपराध-निर्णय के लिए प्रायश्चित्त-विधि भी अपनाई जाती थी, जैसे अपराधी के हाथ पैर जंजीर से बँधवा कर, उसे नदी में फेंक दिया जाना, अगर वह तैर के निकल जाता तो अपराध से मुक्त हो जाता था।

श्री विल डुराण्ट का कहना है कि **"असीरियनों के कानून, तथा न्याय-विधान, हम्मुरावी के विधान से कहीं अधिक अनुदार और वर्बरता से भरे हुए थे, यद्यपि हम्मुरावी का शासन-विधान इनके कई शताब्दी पहले ही बन चुका था।"**[1]

स्थानीय-शासन-प्रबन्ध

स्थानीय-शासन-प्रबन्ध पहले जमींदारों के हाथ में था, पश्चात् सम्राट्-द्वारा नियुक्त शासकों के हाथों में आ गया। साम्राज्य शासन-प्रबन्ध की इस प्रथा को पहले फारस, और पश्चात् रोम ने भी अपना लिया, और रोम की नकल करते हुए करीब-करीब सभी यूरोपीय देशों ने इसे अपना लिया। वस्तुत: इसके बगैर विशाल-साम्राज्य पर शासन करना सरल न था। स्थानीय शासकों का प्रधान कार्य था, कर वसूलना, नहर तथा सड़क-निर्माण के लिए स्थानीय लोगों से जबर्दस्ती काम करवाना तथा सैनिक एकत्र करना और युद्ध में उनका परिचालन करना।

इन स्थानीय-शासकों का गुप्त रूप से निरीक्षण करने के लिए अनेक गुप्तचर नियुक्त थे जो आये दिन इनकी गतिविधि तथा कार्यों का विवरण सम्राट् को प्रेषित करते रहते थे।

असीरीय समाज, नागरिकों के जीवन, कला, विज्ञान तथा साहित्य

असीरियनों का आर्थिक जीवन बहुत कुछ बैबिलोनीय जैसा ही था। अन्तर केवल इतना था कि बैबीलोनी अधिकतर व्यापारी तथा सौदागर थे और असीरीय अधिकतर भूमिधर या ज़मींदार थे। परन्तु कृषि-कार्य करने का ढंग एवं प्रथा, जैसे मेड़ बनाना, तथा शडूफ द्वारा खेतों में सिंचाई का बन्दोबस्त करना, आदि सब वैसे ही थे। असीरियनों की मुख्य उपज थी, गेहूँ, जौ, तिल-हन, जैतून, अंगूर. लहसुन, प्याज, लेटूस, बीट, गाजर, मूली, ककड़ी, इत्यादि। गोश्त का इस्तेमाल केवल कुलीन-वर्ग ही करता था. साधारण जनता का मुख्य भोजन अधिकतर मछली और साग-सब्जी ही था।

शहरों के उद्योग-धन्धे भी बाबुलवालों के उद्योग-धन्धे के ही अनुरूप थे। नाप तौल के बटखरे दोनों जगह समान थे। यद्यपि असुरों की राजधानी नीनेव तथा अन्य शहर अधिक उत्तर में होने के कारण प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र न बन सके, तब भी सम्राटों की लाई हुई दौलत ने इन शहरों को ऐश्वर्यशाली बना दिया। अत: कारीगरी तथा व्यापार में चमकना उनके लिये आसान हो गया।

"In general, Assyrian law was less secular and more primitive than the Babylonian Code of Hammurabi, which apparently preceded it in time"—'Our Oriental Heritage', p. 272.

मुख्य उद्योग-धन्धों में धातु-उद्योग प्रधान था। कई धातुओं की खानें असीरिया में ही थीं जहाँ से वे खोदकर निकाली जातीं, और कुछ धातुएँ बाहर से भी मँगायी जाती थीं। ७०० ई० पू० से अधिकांश वस्तुएँ तथा अस्त्र-शस्त्र, कांसे तथा पीतल के स्थान पर लोहे के बनने लगे। धातुओं की ढलाइयां होने लगीं, शीशे के सामान बनने लगे, कपड़ों की रंगाई होने लगी तथा मिट्टी के बर्तनों पर चमकीले पालिश (enamel) लगाये जाने लगे। राजधानी नीनेव के नागरिक उस समय ऐश-आराम के लिये कुर्सी, मेज, पलंग आदि सभी प्रकार के फर्नीचर का प्रयोग करते थे।

वस्त्र उद्योग के लिये सम्भवत: उन्हें भारतवर्ष के ऊपर निर्भर रहना पड़ता था। सम्राट सेन्नाचेरीब के ७०० ई पू के एक लेख में 'कपास' का उल्लेख प्राप्त होता है। असीरिया वाले इसे 'एक प्रकार का ऊन' कहते थे, जो एक विशेष प्रकार के 'पेड़ से पैदा होता था।'

"The tree that bore wool, they clipped and shredded for cotton"—Our Oriental Heritage, f. n. on 274.

इन उद्योग-धन्धों के लिए आंशिक सहायता व्यक्तिगत महाजनों (Private bankers) से प्राप्त होती थी जो २५% व्याज की दर से धन उधार देते थे। सीसा (lead), ताँबा, चाँदी तथा सोने के सिक्के प्रचलित थे। सम्राट सेन्नाचेरीब ने चाँदी के ⅓ बने हुए शेकेल राजकीय मुद्रा के रूप में चालू किया और इतिहास में यही प्रथम राजकीय मुद्रा का उदाहरण प्राप्त होता है।

समाज—समाज पाँच श्रेणियों में विभक्त था:—

(१) कुलीनवर्ग

(२) कारीगर जो समुदायों में संघबद्ध थे (organized in guilds)

(३) स्वतंत्र मजदूर तथा किसान जो शहरों और देहातों में रहते थे,

(४) जमींदारों के यहाँ काम करने वाले मजदूर (serfs bound to the soil)

(५) दास– जो या तो युद्ध में पकड़े जाते या ऋण न चुकाने के कारण, महाजन के यहाँ गुलामी करते। इनकी खास पहचान के लिए इनके कान बेध दिये जाते, तथा इनका सर मुड़वा दिया जाता। इनको कठोर शारीरिक परिश्रम करना पड़ता था। सम्राट सेन्नाचेरीब के एक उत्कीर्ण-रेखा-चित्र (bas-reliif) में दासों को समानान्तर कतारों में, एक गाड़ी पर, किसी मूर्ति को ढोते हुये दिखाया गया है, और दास–निरीक्षक, कोड़ों के द्वारा, उनसे काम ले रहा है।

विवाह:—सामरिक राजतंत्र होने के कारण असीरिया में विवाह तथा जन्म पर काफी जोर दिया जाता था। गर्भपात (abortion) करने वालों

को मृत्यु दंड दिया जाता। जो स्त्री गर्भपात करती या कराती हुई मर जाती, उसे शूली पर चढ़ाया जाता। अवैध सम्बन्ध, पति को आघात पहुँचाना, तथा बिना पर्दे के बाहर निकलना, आदि अपराधों के लिये, स्त्री को कठिन दंड दिये जाते यद्यपि पति को बहुसंख्यक रखैल रखने की आज्ञा थी। पति को यह अधिकार था कि अगर कोई उसकी स्त्री से अवैध-सम्बन्ध करे तो उसकी हत्या कर दे। विवाह के नियम साधारण थे, अक्सर पति कन्याधन देकर ही, अपनी स्त्री को उसके पिता से, ग्रहण करता था। अधिकतर स्त्री अपने पिता के यहाँ रहती थी।

सम्राट के हरम में कई सौ रखैलें होती थीं, जिनको आम जनता से दूर, राजमहलों में जीवन बिताना पड़ता था। उनके प्रधान कार्य थे, नृत्य, गीत, सिलाई या झगड़ा और षड्यन्त्र करना।

वेश्या-समागम की प्रथा थी और वह राज्य द्वारा नियन्त्रित होती थी।

असीरियों के जीवन के हरएक क्षेत्र में पितृप्रधान समाज जैसी कठोरता परलक्षित होती है। उनके जीवन का प्रधान उद्देश्य तथा आनन्द था—विदेशियों पर विजय प्राप्त करना, या विद्रोहियों को दबाना तथा युद्ध में बन्दियों को तरह-तरह की अमानुषिक यन्त्रणा, देकर मार डालना।

विज्ञान, साहित्य, तथा खगोल-विद्या की उन्नति

ऐसे सैनिक समाज तथा सामरिक राष्ट्र में केवल एक ही विज्ञान की उन्नति सम्भव है और वह है युद्ध-विज्ञान। इसका उल्लेख तथा विवरण ऊपर किया जा चुका है। चूंकि लोग सदैव युद्धादि में व्यस्त रहते थे, अतः उन्हें हमेशा उसके लिये पूरी तैयारी से प्रस्तुत रहना पड़ता था। इसलिये नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र, अंग-रक्षी कवच तथा सर की टोपी, आदि आदि के निर्माण में वे काफी दक्ष रहे। युद्ध क्षेत्र में नाना प्रकार के मोर्चे के द्वारा शत्रु का सामना करना, अकस्मात् झपाटे से आक्रमण करने का कौशल, खंड-युद्ध एवं पूर्णतया शत्रु का विनाश, इत्यादि रण कौशल तथा सामरिक अभियान में उस समय असीरियन फौज से बढ़ कर कोई न था। इसलिये प्रतिवेशी राष्ट्र हमेशा उनसे घबड़ाते थे। सैनिकों का श्रेणीबद्ध होकर मोर्चे पर अग्रसर होना एवं फुर्ती से, किसी भी ओर शत्रु पर आक्रमण करना इत्यादि कारणों से ये सदैव युद्ध में विजयी होते रहे।

अतः जो कुछ भी असीरियन लेख, प्राचीन साहित्य के रूप में पाये गये हैं, वे अधिकतर इन सम्राटों के विजय अभियान, शत्रुओं एवं विद्रोहियों का नृशंसतापूर्वक हनन एवं दलन, देवी-देवताओं को तुष्ट करने के लिए मंत्र-तंत्र तथा औषधियों के नुस्खे, भविष्यवाणी, राजवंशों एवं देवताओं की सूचियों के रूप में हैं। राजधानी नीनेव में, सम्राट असुरबानीपाल के पुस्तकागार में प्राप्त,

३०,०००चौकोर टुकड़ों में, असीरियन-साहित्य की पूर्ण झलक प्राप्त होती है, यद्यपि उनमें से कई प्राचीन सुमेरी एवं बैबिलोनीय ग्रन्थों की ही नकल हैं। ये चौकोर टुकड़े, बड़े ही यत्न एवं कायदे से, विषयानुसार सजा कर रक्खे हैं, जिन पर सम्राट की ये उक्तियाँ स्पष्ट लिखी हुई हैं, "**जो कोई इन टुकड़ों को उठायेगा, उनको असुर तथा बेलित देव के क्रोध से नष्ट होना पड़ेगा।**"

—"Our Oriental Heritage, p. 277."

सम्राट असुरबानीपाल ने स्वयं प्राचीन सुमेरी तथा अक्कादीयन, भाषा एवं साहित्य का पुनरुत्थान करते हुए, एक लेख में, बड़ा गौरव बोध किया है। "···जिस सुन्दर सुमेरी लेखन-कला को लोग भूल गये थे, जिस अक्कादियन लिपि को समझना कठिन हो गया था, उनको फिर से दोहराने में बड़ा ही आनन्द मुझे आया···। मैंने लिपिकारों एवं लेखकों की सभी विद्याएँ जान लीं। मैंने एक सम्राट की तरह शासन किया··" इत्यादि इत्यादि।

कला-कौशल

कला-कौशल के क्षेत्र में असीरियनों ने अपने पूर्वज बैबिलोनीय की तरह उन्नति की। धन-दौलत की वृद्धि के साथ, असुरों के सभी प्रमुख शहरों में, उत्तम कारीगरों तथा कलाकारों ने, नाना प्रकार की वस्तुएँ रचकर नागरिक जीवन को सुन्दर एवं समृद्धिशाली बना दिया। आभूषण एवं जड़ाऊ अलंकार, हर प्रकार तथा मूल्य के, सम्राट, साम्राज्ञी, पुरोहित तथा देव मंदिरों के लिए बनने लगे। धातुओं की ढलाई के द्वारा सुन्दर तथा आकर्षक वस्तुएँ बनाई जाने लगीं, नाना प्रकार के मेज, कुर्सी, पलंग आदि कीमती लकड़ियों के बनने लगे, जिन पर कभी-कभी सोना, चांदी, पीतल या बहुमूल्य पत्थर भी जड़े होते थे।

मिट्टी के बर्तनों में चमकीला पालिश लगाकर उन्हें मनोरम बनाया गया यद्यपि मिट्टी के बर्तनों के बनाने में कोई खास कारीगरी उन्होंने नहीं दिखायी।

इसी प्रकार संगीत, कला तथा यन्त्रों में भी उन्होंने अधिकतर बाबुलवालों का ही अनुकरण किया। चित्र-कला में भी कोई विशेष उन्नति उन्होंने नहीं की।

शिल्पकला

उभरी हुई मूर्तियों के निर्माण (Bas-reliefs) में उन्होंने वस्तुतः प्रभूत उन्नति की। सभी आसुरी सम्राटों ने इस कला को प्रोत्साहन दिया। कारण (१) इन उभरे रेखा-चित्रों में उनके विजय अभियानों के दृश्य अंकित होते थे। (२) पत्थर अधिक मजबूत होने के कारण उन पर खुदा हुआ चित्र या लिपि अधिक दिनों तक स्थायी होती थी। (३) इन प्रस्तर चित्रों को जन-बहुल

स्थानों में, जनता के अन्दर भय एवं श्रद्धा उत्पन्न करने के लिये स्थायी रूप से रखा जाता था ताकि प्रजा में किसी प्रकार का विद्रोह न हो । (४) अपने देवी-देवताओं को प्रसन्न करने का यह एक अभिनव उपाय था ।

जिस प्रकार महान् सम्राट अशोक की प्रस्तर-लिपियों के कारण मौर्यवंश का इतिहास विशेषतया सम्राट अशोक की कृतियों को हम पूर्णरूपेण जानने में सफल हुए हैं, उसी प्रकार असीरीयन सम्राट्‌ों के इन उभरे हुए चित्रों से भी, उनके इतिहास एवं कृतियों का पूर्ण आभास हमें प्राप्त होता है । अतः ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ये अमूल्य हैं, इसमें सन्देह नहीं ।

(१) सम्राट् असुरबानीपाल द्वितीय के अलबस्तर-पत्थर पर उभरे हुए चित्र—जिसमें मार्दूक-देव, शैतान-रूपी शून्य-देवता तिआमत को परास्त करते हुए दिखाए गये हैं । परन्तु अधिकतर इन रेखा-चित्रों में, मानव तथा देवताओं की प्रतिकृतियाँ (figures) भद्दी शक्ल की हैं, और बेढंगी तथा बदसूरत तरीके से बनायी गयी हैं । इन मूर्तियों में कोई नवीनता या सजीवता नहीं है—सभी एक ही ढंग से बनाई गई हैं, बड़े सिर, बड़ी-बड़ी मूंछें, फूली हुई तोंद (belly) छोटी गर्दन, आदि आदि । सिर्फ उन जिनों (spirits) की मूर्तियों में कुछ सजीवता पायी जाती है जो एक वृक्ष की पूजा करते हुए दिखाए गये हैं । सम्राट् शम्सी-अदद के चूने के पत्थर पर बने हुए प्रस्तर चित्र (कलख में प्राप्त) की मूर्तियों में ऐसी सजीवता दिखाई पड़ती है ।

मानव-चित्रों से कहीं अधिक सुन्दर पशुओं के शिकार चित्र हैं—उनमें गति, सजीवता, स्वच्छंदता तथा एक ही सिधाई में रेखाएँ खींची हुई प्रतीत होती हैं । नीनेव में प्राप्त सम्राट् असुरबानीपाल की, अलबरतर-पत्थर पर खींची हुई, सिंह-शिकार-दृश्य में गति, तथा सजीवता बड़े ही स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है । इसी प्रकार खोरासाबाद (Khorasabad) में प्राप्त सम्राट् सार्गोन द्वितीय के राजकीय घोड़ों के चित्र, नीनेव में सम्राट् सेन्नाचेरीब के महल से प्राप्त, घायल शेरनी एवं सम्राट् असुरबानीपाल के महल से प्राप्त अलबस्तर पत्थर पर, मृत्योन्मुख सिंह का चित्र, सम्राट् असुरनासिरपाल द्वितीय का सिंह-शिकार-चित्र, सभी में सजीवता एवं गति विशेष रूप से दिखाई देती है। वस्तुतः उभरे हुए चित्रों में, असीरियन कलाकारों की मौलिकता अवश्य माननीय है ।

मूर्ति-कला में असीरियन कलाकारों ने विशेष मौलिकता नहीं दर्शाई । इनमें केवल कुछ ही उल्लेखनीय हैं जैसे, कलख में असुरनासिरपाल द्वितीय के महल में प्राप्त, पंखवाले साँड़ (Winged bull) की मूर्ति है, जिसका सिर मनुष्य जैसा है । इसका सिर सम्राट के चेहरे के ही अनुरूप बनाया गया है । सम्राट असुरनासिरपाल द्वितीय की मूर्ति भी, राजसी ठाट-बाट के अनुरूप ही बनाई गई है । इस समय यह मूर्ति ब्रिटिश म्युजियम में संरक्षित है । इस मूर्ति

की प्रत्येक रेखा में भारीपन है, सम्राट के हाथ में राजदंड सुशोभित है, ओंठ बन्द हैं, आँखों में क्रूरता एवं सावधानी झलक रही है, गर्दन छोटी है, शासन तथा न्याय करने की मुद्रा में सम्राट को दिखाया गया है।

वास्तु-कला

वास्तु-कला के क्षेत्र में, असीरियन कारीगरों ने, बाबुली वास्तु-कला का ही अनुकरण किया। मेहराब तथा प्रकोष्ठ (Arch and vault) बनाने की कला तो उन्होंने विशेषरूप से बाबुल वालों से ही ग्रहण की। प्रारम्भिक अवस्था में असीरियन कारीगरों ने ईटों का प्रयोग महल तथा राजप्रासाद बनाने में किया, परन्तु क्रमशः वे पत्थर प्रयोग करने की ओर अधिक झुके। स्तंभ-निर्माण-कला में कुछ मौलिकता भी उन्होंने दिखाई, जिसका अनुकरण आगे चलकर पारसी तथा यूनानी कारीगरों ने भी किया। ऐसा प्रतीत होता है कि इन महलों में सूक्ष्मता तथा सुन्दरता की अपेक्षा विशालता की ओर कारीगरों का ध्यान अधिक था। इन महलों का निर्माण एक विस्तृत भूखण्ड पर किया गया। अधिक से अधिक २ या ३ मंजिलें ही इन महलों में बनाई गयीं। इनके बीच में ढका हुआ सम्राट का दरबार और आस-पास बड़े-बड़े हाल तथा कोठरियाँ बनायी गयीं। महलों के प्रवेश द्वार पर बड़े-बड़े जानवरों की मूर्तियाँ स्थापित की गयीं। प्रवेश-हाल की दीवारों पर ऐतिहासिक मूर्तियों तथा रेखा-चित्र बनाये गये, फर्श अलबस्तर पत्थर की लगायी गयी। दीवारों पर कामदार जड़ाऊ झालर लटकाये गये या मूल्यवान लकड़ियाँ लगायी गयीं, छतों में मजबूती के लिए भारी-भारी शहतीरों का सहारा दिया गया (जिन पर सोने-चाँदी की पत्तियाँ भी लगी होती थीं) छतों पर प्राकृतिक दृश्य भलीभाँति बनाये गये। इस प्रकार इन शाही महलों को सर्वरूपेण, असीरियन सम्राटों के उपयुक्त ही निर्माण किया गया। इन महलों में उनका पराक्रम तथा वैभव की गरिमा विशेष-रूप से परिस्फुटित हुई है।

सभी असीरियन सम्राटों ने महल तथा मन्दिर-निर्माण में अपनी-अपनी विशेष योग्यता दिखलाई। सम्राट टिगलथ विलेसर प्रथम ने असुर-देवता के मन्दिर बनवाये जिसके अन्दर के हिस्से को नाना प्रकार के कारुकार्य से उन्होंने "स्वर्ग जैसा सुन्दर" बनाया और "जिसकी दीवारें चमकते हुई तारे जैसी झलकने लगीं।" (Our Oriental Heritage. p. 280) इसी प्रकार असुर-नासिरपाल द्वितीय द्वारा निर्मित, कलख का पत्थर लगा हुआ ईटों का मन्दिर भी प्रसिद्ध है जिस पर युद्ध तथा दान के रेखा-चित्र बनाये गये हैं।

सम्राट सार्गोन द्वितीय ने, खोरासाबाद के निकट दुर-शर्रुकीन (Dur-Sharrukin) या 'सार्गोन का किला' नामक एक विशाल महल का निर्माण

किया, जिसके प्रवेश-द्वार के दोनों ओर परदार साँड़ (Winged bulls), दीवारों पर रंगीन टाईल तथा उभरे हुए रेखा-चित्र, राजप्रासाद के बड़े-बड़े कमरों में मूल्यवान असबाब एवं फर्नीचर तथा प्रभावशाली मूर्तियाँ, वस्तुतः असीरीय वास्तु-कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। इस प्रासाद के चारों ओर उन्होंने कई मन्दिर बनवाये और पीछे सप्त मंजिल वाली एक विशाल ज़िगुरात (जिस पर सोने-चाँदी जड़े हुए थे) का निर्माण किया।

सम्राट सेन्नाचेरीब ने नीनेव में इससे भी अधिक सुन्दर तथा भव्य एक महल बनवाया जिसका नाम उन्होंने रक्खा 'अतुलनीय' (Incomparable)। इसकी दीवारों तथा फर्शों को उसने बहुमूल्य, धातु, लकड़ी एवं पत्थर से सुसज्जित किया, इनकी खपरैलों को चाँद, सूर्य, तारों जैसा चमकीला बनवाया, ताँबे के विशाल सिंह तथा साँड़ों की मूर्तियाँ तथा चूने एवं अलबस्तर पत्थर के बने हुए परदार साँड़ की मूर्ति स्थापित की एवं प्राकृतिक दृश्यों के रेखा-चित्रों से दीवारों को सजाया।

सम्राट ईस्सहेड्डन ने अपने राजप्रासादों के निर्माण में मिस्री वास्तु-कला की विशेषताओं का प्रयोग कर, वास्तु-कला में, अपने पूर्वजों को भी मात कर दिया। केवल मिस्र ही नहीं, वस्तुतः सभी पूर्वी देशों की वास्तु-कलाओं की विशेषताओं का उन्होंने प्रयोग किया।

इन महल तथा राजप्रासादों में मजबूती एवं ठोसपन की कमी थी। सम्भवतः इसका प्रधान कारण यह था कि अधिकतर युद्ध में पकड़े गये कैदी तथा गुलामों ने इन प्रासादों का निर्माण किया था। स्वतंत्र व्यक्ति और गुलामों की बनाई हुई चीजों में अन्तर होना स्वाभाविक है। अतः अर्ध-शताब्दी बीतने भी न पायी थी कि अधिकतर राजप्रासाद ढह गये। सम्राट असुरबानीपाल ने इनमें से अधिकांश का पुनर्निर्माण किया। सिर्फ इतना ही नहीं, सुन्दर-सुन्दर बाग-बगीचे, उद्यान एवं फल-फूलों के पेड़ों से भी उन्हें सुसज्जित किया। (देखिए, Our Oriental Heritage. p. 281)

असीरिया का पतन

सम्राट असुरबानीपाल की मृत्यु ६२६ ई० पू० हो गयी। उसकी मृत्यु के १४ वर्ष उपरान्त किस प्रकार नेबोपलेस्सर ने स्वाधीनता प्राप्त कर बैबिलोनिया में एक नये राजवंश की नींव डाली, यह ऊपर कहा जा चुका है। यहाँ असीरिया के पतन के कुछ प्रमुख कारण दर्शाए जा रहे हैं :—

(१) असीरिया प्रधानतः एक सामरिक राष्ट्र था। अतः जिस निर्दयता से यहाँ के सम्राट् युद्ध-बंदियों एवं विद्रोहियों को दण्ड देते थे, वह उस समय के पड़ोसी देशों के लिए त्रास बन गया। साथ ही असीरिया के विरुद्ध घृणा और

हिंसा की भावना पड़ोसी राज्यों में धीरे-धीरे बढ़ गयी। नेबोपलेस्सर ने इसी भावना तथा संयोग एवं सहायता से स्वाधीनता प्राप्त की।

(२) असीरिया के आर्थिक अवलम्बन (Economic Support) का केवल एक ही साधन था—युद्ध में प्राप्त लूट-मार के द्रव्य तथा अथाह धन-राशि। व्यापार तथा उद्योग-धंधों में कभी वैसी उन्नति नहीं हुई जैसी कि सुमेरिया या बैबिलोनिया में हुई थी। अत: जब तक असीरियन सम्राट् युद्धादि के द्वारा अपने शहरों और नगरों के लिए अतुल ऐश्वर्य लाते रहे तब तक इनकी रौनक बनी रही। जब वे निर्बल पड़ गये तो इन शहरों का वैभव भी जाता रहा।

(३) इन युद्धों के कारण, समाज के वीर शक्तिशाली पुरुषों का सदैव निधन (massacre) होता रहा। धीरे-धीरे समाज में निर्बल, तथा कायर व्यक्तियों की संख्या बढ़ती गयी जिससे पतन और निकट आ गया।

(४) बहुसंख्यक लोग सैनिक-वृत्ति ग्रहण किए हुए थे, अत: खेतों में फसल उगाने तथा पैदावार एकत्र करने के लिए बहुत कम व्यक्ति समय पर मिल सकते थे। अत: कृषि की शनै:-शनै: जवनति हो गयी।

(५) सम्राट् टिगलथ-विलेसर प्रथम एवं उनके परवर्त्ती असीरीय-सम्राटों ने विद्रोह-दमन के लिए, विद्रोहियों को दूर विदेशों में भेजना प्रारम्भ किया ताकि वहाँ के स्थानीय निवासियों से घुल-मिल कर, उनका जातीय-अस्तित्व (racial existence) ही समाप्त हो जाये। परन्तु इसका फल विपरीत हुआ। इन मिश्रित तथा वर्णसंकर जातियों ने असीरियनों के मूल राष्ट्रीय गुण तथा चरित्र को एकदम नष्ट कर दिया। साथ ही असीरीय-साम्राज्य के प्रति वे वफादार भी न रहे तथा विरोध की भावना सदैव उनमें प्रबल रही। असीरियन सम्राटों को निरन्तर युद्ध करने के लिए इन्हीं लोगों को सेना में भर्ती करना पड़ता था और यह भली-भाँति कल्पना की जा सकती है कि ऐसे राष्ट्रीय एवं जातीय गुणहीन व्यक्तियों ने मोर्चे पर जाकर कौन सी वीरता प्रदर्शित की होगी।

(६) सीमाप्रान्त पर सीमेरीयन तथा सीदियन जैसी असभ्य जातियों का आक्रमण बारम्बार होता रहा जिससे असीरियन सम्राटों को कभी चैन नहीं मिला। इन असभ्य जातियों से निरन्तर युद्ध करने के कारण देश की आर्थिक स्थिति को बड़ा धक्का पहुँचा।

(७) अन्त में बैबिलोनिया, मीडिया तथा सीदियन जातियों के सम्मिलित आक्रमण से, ६१२ ई० पू० में अतिशीघ्रता से असीरियन राजधानी नीनेव का पतन हो गया। नीनेव-पतन के साथ ही, विशाल असीरियन साम्राज्य भी समाप्त हो गया।

असीरिया-साम्राज्य के पतन से सभी को अत्यधिक आनन्द हुआ। निर्दयी, क्रूर तथा त्रास-संचार करने वाले इस सामरिक राष्ट्र के प्रति कोई भी सहानुभूतिसम्पन्न न था। यहूदियों ने नीनेव शहर का नाम ही रक्खा था—'खूनी शहर', जो झूठ और लूट-मार से भरा है (the bloody city, full of lies and robbery)। अतः जाहिर है कि उस समय के पड़ोसी पूर्वी देशों ने असीरिया के पतन से वैसे ही खुशियाँ मनायी होंगी, जैसे हिटलर के नाजी जर्मनी के पतन से वर्तमान विश्व के राष्ट्रमंडल ने मनाई थी।

———

अध्याय | ४

प्राचीन ईरान की सभ्यता एवं संस्कृति

'ईरान' तथा 'पारसी' शब्दों की उत्पत्ति

असीरिया के पतन के पश्चात् मिडिस जाति ने किस प्रकार शक्ति संचय कर पूर्व में पारसो या पारस्य साम्राज्य की स्थापना की थी, इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। 'पारसी' या 'प्रशियी' शब्द 'पर्स' (Pars) शब्द से लिया गया है, जो फारस की खाड़ी के पूर्व में स्थित एक छोटे से प्रान्त का नाम था। इसका आधुनिक नाम है 'फर्स' (fars) या 'फर्सिस्तान' (farsistan)। इसी शब्द से आधुनिक 'पर्शिया' या 'पारसी' (Persia) शब्द का जन्म हुआ है।

ज़रस्थुत्री अपने प्राचीन देश को "ऐर्याना-वैजो' (Airyana-vaejo) कहते थे जिसका शाब्दिक अर्थ है "आर्यों का प्राचीन निवास-स्थान।" यूनानी ऐतिहासिक स्ट्रोबो ने इसी के आधार पर इसका नाम "एरियाना" (Ariana) रक्खा जिससे आगे चलकर 'ईरान' शब्द बना। यही पर्शिया का दूसरा नाम है।

इस प्रकार इस देश के दो आधुनिक नाम, ईरान तथा पर्शिया, के उद्गम का पता हमें लगा। प्राचीन आर्य-जाति की एक शाखा, जो इतिहास में 'मिडिस' जाति के नाम से प्रसिद्ध हैं, सर्वप्रथम इसी देश में आकर स्थायी रूप से बस गई और उसने विशाल पारसी-साम्राज्य की नींव डाली। असुर-सम्राट शलमनेसर तृतीय के अभियान वर्णन में (जो एक तख्ते या tablet पर लिखा हुआ पाया गया है) इस देश को 'पर्सुआ' (Parsua) कहा गया है जो कुर्दिस्तान की पहाड़ियों में स्थित था। यहाँ २७ छोटे-छोटे राज्य थे, जिनके अलग-अलग स्वतंत्र शासक थे। यहाँ के निवासी अमादाई, मदाई तथा मिडिस कहे जाते थे। शलमनेसर तृतीय के इस अभियान की तिथि ८३७ ई० पू० मानी गयी हैं।

इस देश की जलवायु शुष्क, तथा अधिकांश भूखण्ड पहाड़ी है। नदियों की कमी है। शीत और ग्रीष्म दोनों ही कठोर हैं। इस देश के पहाड़ी निवासी

सम्भवत: दक्षिण रूस से आकर यहाँ बस गये हैं। मिडिस जाति कैस्पियन सागर की ओर से, १००० ई० पू० पहले बोखारा तथा समरकन्द होती हुई इस देश को पहुँची। वस्तुत: मिडिस जाति ने ही इस देश की भौतिक उन्नति की। पहाड़ों में उन्हें सोने, चाँदी, ताँबे, लोहे तथा सीसे एवं बहुमूल्य पत्थरों की खानें प्राप्त हुईं, अत: ये यहीं स्थायी रूप से बस गये। पहाड़ियों की ढाल तथा मैदानों में इन्होंने कृषि-कार्य भी प्रारम्भ किया जिससे अनाज की कमी इनको न रही।

इन्हीं मिडिस तथा पर्शिया के प्राचीन पहाड़ी निवासियों के संयोग से आधुनिक पारसी जाति का जन्म हुआ। सम्राट डेरीयस प्रथम ने, अपनी नख्शी-रुस्तम-शिलालेख में, स्वयं को इस प्रकार उल्लिखित किया है, "मैं पारसी, पारसी की सन्तान, आर्य तथा आर्यवंशोद्भूत हूँ।"

"A Persian, the son of a Persian, an Aryan of Aryan Descent"

—Our Oriental Heritage, p. 356.

यह प्राचीन मिडिस-जाति, भारतीय आर्य जाति की ही एक शाखा थी, जैसा कि इनकी भाषा तथा धर्म से स्पष्ट प्रतीत होता है।

भौगोलिक स्थिति

ईरान के पठार के एक ओर दजला-फरात की घाटी तथा पूर्व में सिन्धु की घाटी है। इस प्रान्त का विस्तार एशिया में पश्चिम से पूर्व की तरफ जाग्रोस पहाड़ों (Zagros mountains) से लेकर सुलेमान पहाड़ तक है। इसके दक्षिण में फारस की खाड़ी तथा उत्तर में कोहकाफ प्रान्त, कैस्पियन सागर एवं आमू नदी स्थित है। ईरान के पठार का पश्चिमी प्रान्त पर्शिया तथा पूर्वी प्रान्त अफगानिस्तान एवं बिलोचिस्तान कहलाता है। जलवायु, भौगोलिक स्थिति, निवासियों के रहन-सहन आदि के विचार से इस देश की तुलना कभी-कभी स्पेन से भी की जाती है। इसके वर्तमान निवासियों की संख्या लगभग एक करोड़ है।

इस देश का जलवायु प्राचीन काल में इतना शुष्क न था, और न इसके धरातल इतने सूखे थे। अवेस्ता जैसे प्राचीन ग्रन्थों में जंगल आदि का उल्लेख मिलता है अत: वर्षा भी उस समय अवश्य ही अधिक होती होगी। परन्तु कुछ, असभ्य जातियों के आक्रमण एवं जंगलों के कट जाने से यहाँ बड़े-बड़े रेगिस्तान या 'लूत' बन गये। सारा ही देश धीरे-धीरे सूखा एवं जलहीन हो गया। प्राचीन ईरान में बड़े-बड़े व्यापारिक शहर थे जिनसे कई हजार कारवाँ (Caravan) प्रतिदिन गुजरते थे। अत: प्राचीन ईरान समृद्धिशाली था।

प्रथम पारसी राज्य तथा सम्राट्

आधुनिक 'हमादान' तथा प्राचीन 'एकबटाना' (Ecbatana) शहर ही सर्वप्रथम पारसी राज्य की प्रथम राजधानी बना। 'एकबटाना' शब्द का शाब्दिक अर्थ है, "कई रास्तों का मेल"। यह एक सुन्दर मनोरम दृश्यावली घाटी तथा अलवद पहाड़ी की तलहटी में स्थित है। पहाड़ों से पिघली हुई बर्फ के कारण भूमि उपजाऊ है। इनका प्रथम शासक 'डिओसीस' (Deioces) मिडिस जाति का था जिसने इस नगर को अपनी राजधानी बनाकर एक भव्य राजप्रासाद का निर्माण किया (७०९ ई० पू०)। इस सफल, शक्तिशाली तथा रणचतुर सम्राट् के संरक्षण में मिडिस जाति ने केवल असीरिया के आक्रमणों को ही नहीं रोका, अपितु असीरिया की शक्ति को नष्ट करने में भी पूर्ण सफल हुई। इनके परवर्त्ती सम्राट् साइक्सारस (Cyaxaras) के नेतृत्व में मिडिस जाति ने, असुरों की राजधानी 'नीनेव' को किस प्रकार उजाड़ डाला, इसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। विजयी सम्राट् ने सार्डिस (Sardis) नगरी पर भी धावा बोल दिया। परन्तु सूर्य-ग्रहण होने के कारण, (जिसे वे अशुभ समझते थे) उन्हें सैन्य समेत वापस लौटना पड़ा। विरोधी नेताओं से शीघ्र ही उसका संघर्ष हो गया और अगले वर्ष उसकी मृत्यु हो गयी। अपने क्षणिक जीवन में मीडिया, फारस तथा असीरिया को मिलाकर उसने एक विशाल पारसी साम्राज्य की नींव डाली।

सम्राट् साइक्सारस का पुत्र अस्टागीस (Astyages) अपने पिता की भाँति पराक्रमी न था। वह विलास-व्यसन में, राजकार्य से अधिक रुचि रखता था। अतः शीघ्र ही समाज तथा राष्ट्र के कुलीन एवं उच्च वर्गों में भी विलासिता की वृद्धि हुई तथा नैतिक पतन प्रारम्भ हो गया। पुरुष जरीदार पैजामा पहनने लगे और स्त्रियों में प्रसाधन द्रव्यों का व्यवहार तथा आभूषणों का प्रयोग बढ़ गया। यह मूल्यवान रथों पर सवारी करते, दावतें खाते और अपने घोड़ों को भी सोने से सुसज्जित करते थे।

सम्राट् अस्टागीस केवल विलासी ही नहीं अपितु तानाशाह भी था। उसके अत्याचार से उसकी प्रजा इतनी दुखी हो गयी कि जब अनशान प्रान्त के अधीनस्थ शासक साईरस (Cyrus) ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया, तो प्रजा ने सहर्ष उसका स्वागत किया और उसको अपना सम्राट् स्वीकार कर लिया। अब राजनैतिक-शक्ति मिडिया से हटकर पर्शिया या फारस में केन्द्रित हो गयी और यहीं से विशाल फारस-साम्राज्य का श्रीगणेश हुआ। सम्राट् साईरस ने ५५५ ई० पू० में इतिहास-प्रसिद्ध 'अखामीनीद' या 'हुख्मनीशी' (Achaemenid) वंश की स्थापना की जिसमें कई प्रसिद्ध तथा पराक्रमी शासक एवं योद्धा हुए।

फारसी सभ्यता को मिडिस-जाति की देन

फारसी सभ्यता तथा संस्कृति को मिडिस जाति की देन अपूर्व है, जैसे फारस में आर्य-भाषा का प्रचार, ३६ अक्षर वाली वर्णमाला (alphabet) का प्रयोग, मिट्टी के बदले पार्चमेण्ट पर लिखने की कला एवं लिखने के लिए कलम का प्रयोग, महल नथा प्रासाद एवं मन्दिर निर्माण-कला में स्तम्भों का प्रयोग, शान्ति के समय स्थिर-चित्त से कृषिकार्य करने की क्षमता तथा युद्ध के समय असीम बहादुरी, जरस्थुत्री धर्म का प्रचार (जिनके प्रधान देवता आहुर-मज्द (Ahura Mazda) तथा अहिरमैन (Ahriman) थे, पितृ-प्रधान कुटुम्ब एवं बहुविवाह की प्रथा, और साम्राज्य-शासन तथा संगठन के लिए विधान-संहिता। परन्तु खेद की बात है कि उनके साहित्य एवं कला का कोई भी ध्वंसावशेष अभी तक प्राप्त नहीं हुआ।

हुख्मनीशी वंश एवं साईरस महान् (Cyrus the Great)

केवल प्राच्य-देशों में ही नहीं, अपितु प्रतीची-देशों में भी, हुख्मनीशियों के द्वारा स्थापित विशाल फारसी-साम्राज्य सदैव गौरवमय स्थान को प्राप्त करता रहेगा। इस वंश का प्रतिष्ठापक हुखमंश (Achaemene) था जिसने लगभग ६५० ई० पू० में इस वंश की नींव डाली। इसके पुत्र तिश्पेश (Tiespes) ने, ईलम के अन्शान (Anshan) प्रान्त को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया और अपने को "महान् सम्राट्, अन्शान का राजा" कहने लगा। इसके मरने पर, इसका एक लड़का, अन्शान प्रान्त का, और दूसरा लड़का, फर्स (Fars) प्रान्त का शासक बना। इस प्रकार हुख्मनीशी वंश की दो शाखाएँ हो गयीं। डेरियस महान् के बेटिस्तून के शिलालेख में यह लिखा हुआ है, "मेरे पहले मेरी जाति के ८ सम्राट् हो चुके हैं। मैं नौवाँ (सम्राट्) हूँ। इस प्रकार हम सभी (सम्राट्) दो शाखाओं से उत्पन्न हुए हैं।" इस शिलालेख से स्पष्ट प्रतीत होता है कि आगे चलकर इस वंश की दो शाखाएँ हो गयी थीं। सम्राट् साईरस, इसी अन्शान वंश का सबसे महान् सम्राट् था। वह उदार-चरित्र का नवयुवक, पराक्रमी तथा देखने में सुन्दर एवं शत्रुओं के साथ भी सहानुभूति का व्यवहार करने वाला व्यक्ति था। विश्व-इतिहास में उसकी तुलना केवल नेपोलियन से ही की जा सकती है। इसी कारण पारसी इतिहास में उसे 'साईरस महान्' (Cyrus the Great) कहा जाता है।

सम्राट् कुरु या साईरस की कृतियाँ तथा विजय

मिडिस तथा फारसी जातियों को मिलाकर सम्राट् साईरस ने एक विशाल सेना का संगठन किया और विजय-यात्रा के लिए निकल पड़ा। शीघ्र ही

असीरिया, लीडिया (राजधानी सार्डस), बैबिलोनिया तथा एशिया-माइनर (तथा एशिया माईनर स्थित यूनानी उपनिवेश) को जीतकर उसने फारसी-साम्राज्य में मिला लिया। कहना असंगत न होगा कि पूर्वी तथा पश्चिमी देशों में, विशाल रोमन-साम्राज्य के पहले, इतने बड़े साम्राज्य की किसी ने स्थापना नहीं की थी।

सम्राट् कुरु की इस विराट् साम्राज्य-स्थापना के मूल में भी उसकी उदार-नीति थी। भयंकर घेरे के बाद जब लीडिया पराजित हुआ, तो उसका सम्राट् क्रोसियस (Croesus) चिता पर जल कर मरने को तैयार हो गया। परन्तु कुरु ने उसको क्षमा करते हुए, जलने से बचा लिया और आजीवन अपने सहकारी विश्वस्त-बन्धु के रूप में उसे रक्खा। यहूदियों के साथ भी उसने उदारता का व्यवहार किया और उन्हें बन्दी-जीवन से मुक्त कर फिलस्तीन वापस भेज दिया। इसी प्रकार बाबुल-सम्राट् ने बोनिदस को क्षमा करते हुए उसने उसे बैबिलोनिया का शासक (Viceroy) बना दिया। केवल इतना ही नहीं, धार्मिक मामलों में उसने अपनी प्रजा को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की। यरूसलम के टूटे हुए मन्दिर तथा बैबिलोन के मार्डूक देव-मन्दिर का पुन: निर्माण किया। विजय-अभियान के पश्चात् जब किसी भी पराजित नगर एवं शहर में प्रवेश किया, वहाँ के देवी-देवताओं के प्रति उचित सम्मान प्रदर्शित किया।

"महान् नैपोलियन की भाँति कुरु भी उच्चाकांक्षी था, और इसी में उसकी मृत्यु हुई" "Like Napolean he too, died of excessive ambition", (Our Oriental Heritage, p. 353)

इस महान् सम्राट् की मृत्यु, ५२९ ई० पू० में, मस्सागीटी (Massagatae) नामक एक असभ्य जाति (जो कैस्पियन सागर के दक्षिणी तट पर रहती थी) के विरुद्ध युद्ध करने के समय, हो गयी। इस अकाल मृत्यु के कारण वह अपने विशाल-साम्राज्य को संगठित न कर सका।

उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र कैम्बिसस (५२९ ई० पू०--५२२ ई० पू०) फारस साम्राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। वह अपने पिता की भाँति न तो पराक्रमी ही था, और न उदार। बचपन से ही वह मृगी रोग का शिकार रहा। गद्दी पर बैठते ही उसने अपने भाई वरदीय (Bardiya) को मरवा डाला। इसका यूनानी नाम स्मेर्डीस (Smerdis) था और सम्राट् साईरस ने उसे खोरास्मीया (खीव), बैक्ट्रिया, पार्थिया तथा करमानिया (करमान) प्रान्तों का शासक बना दिया था। फिर उसने मिस्र पर आक्रमण किया और थोड़े ही दिनों में मेम्फीस नगरी पर अपना अधिकार कर लिया। मिस्रवासियों के साथ उसने निर्दयता का व्यवहार किया और उनके धर्म का उपहास करते हुए, मिस्र-निवासियों के पूज्य नान्दी (बैल), जिसे वे अपिस-देव मानते थे, की छाती में

छुरा भोंक कर मरवा डाला। इसके बाद मिस्र-सम्राट् फैराओं की कब्रों में घुसकर उनकी मृत देहों (मम्मी) को उलट-पुलट दिया। शीघ्र ही वह पुनः मृगी रोग से आक्रान्त हो गया।

परन्तु इसके बाद जो कुछ उसने किया वह बिल्कुल ही पागलपन था। उसने अपनी स्त्री रोक्साना तथा पुत्र प्रेक्षास्पस (Prexaspes) एवं १२ कुलीन वर्ग के फारसीयों को मरवा डाला एवं अपने पिता के परम मित्र क्रोसीयस (भूतपूर्व लीडिया-सम्राट्) की भी हत्या करने का आदेश दिया, फिर उस आज्ञा को रद्द किया, क्रोसीयस की मृत्यु न होने पर बड़ा आनन्द मनाया, परन्तु जिन अफसरों ने उसकी प्रथम आज्ञा को (क्रोसीयस को वध करने की) कार्यान्वित करने में विलम्ब किया था, उनको मृत्युदंड दे दिया। प्राचीन इतिहास में इस प्रकार के पागलपन दर्शाने वाले केवल दो ही सम्राट् हुए हैं, रोमीय सम्राट् नीरो, एवं भारतीय सम्राट् मुहम्मद तुग़लक।

मिस्र-विजय के पश्चात् लौटते समय उसे मालूम हुआ कि उसके भाई स्मेर्डीस (जो सम्भवत: बच गया था) ने जबर्दस्ती फारस की गद्दी छीन ली। परन्तु यह व्यक्ति, वास्तव में, प्राचीन मागी-पंथी था, जो जरस्थुत्री-धर्म को समाप्त करने के लिए स्मेर्डीस के नाम से गद्दी का दावादार बन बैठा था।

परन्तु उसके अत्याचार एवं कुशासन से जनता घबरा उठी। शीघ्र ही उसके अमीरों ने मिल कर उसके विरुद्ध एक विशाल विद्रोह उपस्थित कर दिया। कहा जाता है कि घबरा कर कैम्बिसस ने आत्महत्या कर ली। उन ७ अमीरों ने मिलकर एक स्वर से "डेरीयस" (Darius), जो उन्हीं में से एक था—को अपना सम्राट् चुना और उसे फारस की गद्दी पर बैठा दिया। कहना असंगत न होगा कि गद्दी पर बैठने के पहले डेरीयस ने उस मक्कार गौमत को मरवा डाला, जो भूतपूर्व सम्राट् कैम्बिसस का भाई वरदीय (स्मेर्डीस) के गुमनाम से फारस का सम्राट् बन बैठा था।

सम्राट डेरीयस प्रथम (५२२ ई० पू०—४८५ ई० पू०)

प्राचीन इतिहास की यह धारणा है कि राज्य में सम्राट के परिवर्तन होते ही दूर-दूर के प्रान्तों में विद्रोह भड़क उठते हैं। अत: डेरीयस प्रथम को भी इन विद्रोहों का सामना करना पड़ा। मिस्र तथा लीडिया के स्थानीय शासकों ने उसकी अधीनता अस्वीकार की, एवं सुसियाना, बैबिलोनिया, मीडिया, असीरीया, आर्मेनिया, सेशिया आदि दूरवर्ती प्रान्तों में विद्रोहियों ने विद्रोह के झंडे खड़े कर दिये। परन्तु वीर एवं पराक्रमी डेरीयस ने बड़ी ही कुशलता तथा शीघ्रता से इन्हें दबा दिया और विद्रोहियों को उचित शिक्षा देने के लिए, उसने तीन हजार बाबुल-निवासियों को शूली पर चढ़ा दिया।

अपने विजय-अभियान को और अधिक सफल तथा स्थायी बनाने के लिए, डेरीयस अपनी विशाल तथा रण-चतुर सेना को लेकर दक्षिणी रूस की ओर बोस्फोरास की खाड़ी तथा डेन्यूब नदी पार कर, बोल्गा नदी तक जा पहुँचा और सीदीयन जाति को पूर्णतः परास्त किया। फिर पूर्व में अफगानिस्तान, पार करते हुए, भारत में सिन्ध-नदी के तट पर जा पहुँचा और उसे भी अपने साम्राज्य में मिला लिया।

अब उसने यूनान की ओर ध्यान दिया। परन्तु मरेथान (४९० ई० पू०) की लड़ाई में वह ऐथेन्स की सेना को पराजित न कर सका और अपनी राजधानी को वापस लौट आया। इसके थोड़े ही दिनों में—४८५ ई० पू० में उसकी मृत्यु हो गयी।

डेरीयस प्रथम (महान्) का शासन-प्रबन्ध

इतिहास में 'डेरीयस' केवल अपने विजय-अभियान एवं विद्रोह-दमन के लिए ही 'महान्' नहीं कहा जाता है। उसके समय में फारस का शासन-प्रबन्ध, व्यापारिक, आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति अपनी पराकष्ठा को पहुँच गयी। इसीलिए ऐतिहासिकों ने उसे "डैरीयस महान्" कहकर अभिहित किया है। इतने विशाल साम्राज्य के समुचित शासन-प्रबन्ध के लिए डेरीयस ने कई नवीन उपायों की उद्भावना की। (१) सर्वप्रथम उसने सम्पूर्ण साम्राज्य को २० क्षत्रपी या प्रान्तों में बाँट दिया और उनके शासन के लिए एक-एक क्षत्रप या गवर्नर (यानी स्थानीय शासक) की नियुक्ति कर दी। इन क्षत्रपी या समपीयों के नाम निम्नलिखित हैं :—

मिस्र, फिलीस्तीन, सीरिया, फीलीशिया, लीडिया, फ्रीजिया, आओनिया, केप्पाडोशिया, सिलीशिया, आर्मेनिया, असीरिया, काकेशस, बैबिलोनिया, मीडिया, फारस या पर्शिया तथा वर्तमान अफगानिस्तान एवं बिलूचिस्तान तथा सिन्धुनद के पश्चिम तटवर्ती प्रदेश, सोगडियाना एवं बैक्ट्रिया। मध्य-एशिया की मेस्सागिटि आदि असभ्य जातियों को भी उसने अपने 'क्षत्रपी' में मिला लिया।

क्षत्रपियों का शासन-प्रबन्ध

इन क्षत्रपियों के शासक 'क्षत्रप' कहलाते थे, इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। ये क्षत्रप राजकुल या परिवार के सदस्य होते थे। परन्तु इन क्षत्रपियों में नियुक्त सेनाओं का एक अलग सेनापति होता था जो सैनिक शासन-प्रबन्ध में क्षत्रप से, स्वतंत्र होता था। क्षत्रप और सेनापति के अलावा एक और सचिव या सेक्रेटरी होता था, जो क्षत्रप और सेनानायक दोनों से

स्वतंत्र होता था। इन तीनों की कार्यवाहियों को गुप्त रूप से देखने के लिए, सम्राट की ओर से विशेष गुप्तचर नियुक्त होते थे जो इन तीनों अफसरों की गुप्त रिपोर्ट, सदैव सम्राट को दिया करते थे। इस व्यवस्था का महान् लाभ यह था कि यह तीनों उच्च पदस्थ अफसर कभी भी, संगठित होकर, सम्राट के विरुद्ध विद्रोह करने की हिम्मत नहीं करते थे। इन गुप्तचरों को सम्राट के 'आँख और कान' कहा जाता था और ये किसी भी समय, किसी भी क्षत्रपी में जाकर, वहाँ के शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी तमाम कागज, दस्तावेज, रेकार्ड, इत्यादि का निरीक्षण कर सकते थे। कभी-कभी क्षत्रप अपने पद से हटा भी दिया जाता था और कभी-कभी सम्राट की आज्ञा से उसके नौकर उसे विष देकर भी मार डालते थे।

क्षत्रप और सचिव के अधीन लेखपाल होते थे जो राज्य कार्य-सम्बन्धी सभी रेकार्ड रखते थे। यह एक प्रकार से नौकरशाही शासन था जो सम्राट या क्षत्रपों के परिवर्तन के बावजूद भी चलता रहता था।

इन क्षत्रपियों की प्रजा ही, इन प्रान्तीय अफसरों के वेतन के लिये जिम्मेदार थी। प्रजा से वेतन के रूप में जो धन तथा द्रव्य प्राप्त होता था, उससे क्षत्रप एवं अन्यान्य अफसर अपना निजी महल एवं राजप्रासाद, हरम, उद्यान आदि का निर्माण बड़ी आसानी से करते हुए, काफी ऐशो-आराम का जीवन बिता सकते थे। परन्तु इन क्षत्रपियों को, सम्राट को भी वार्षिक कर देना पड़ता था, जो धन तथा द्रव्य, दोनों में चुकाया जाता था। इस प्रकार अरब से ४६८० टैलेण्ट (स्वर्ण मुद्रा), असीरिया तथा बैबिलोनिया से १००० टैलेण्ट, मिस्र से ७००, तथा एशिया माईनर के चार क्षत्रपी मिलकर १७६०, टैलेण्ट, सम्राट को प्रतिवर्ष भेजा जाता था।

टैलेण्ट के अलावा वार्षिक कर के रूप में मिस्र १२०,००० मनुष्यों के लिए गल्ला भेजता, मिडिस से १००,००० भेड़ें भेजी जातीं, आर्मेनिया निवासी ३०,००० घोड़े के बच्चे भेजते तथा बैबिलोनिया से ५०० जवान हिजड़े (enuchs) प्रतिवर्ष फारस को भेजे जाते थे। सिकन्दर महान् ने, सन् ३३३ ई० पू० में फारस पर आक्रमण करने के समय, १८०,००० टैलेण्ट, सम्राट डेरीयस तृतीय के खजाने से प्राप्त किया था, जब कि फारसी सम्राट स्वयं ८,००० टैलेण्ट लेकर भाग गया था।

परन्तु सबसे आश्चर्य की बात यह है कि इतने अधिक वार्षिक कर देने के बावजूद भी, इन देशों में कभी विद्रोह नहीं हुआ, अपितु शान्ति और सुव्यवस्था ही कायम रही। अवश्य ही सम्राट डेरियस प्रथम की शासन-व्यवस्था का अधिकांश जनता ने हार्दिक स्वागत किया होगा क्योंकि इस महान् सम्राट ने इन प्रान्तों (क्षत्रपीयों) को, धार्मिक, सामाजिक, भाषा. तथा मुद्रा

चालू करने के विषय में पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की थी। कहीं-कहीं तो प्राचीन राजवंश के शासक ही पीढ़ी दर पीढ़ी उसी प्रान्त या राज्य में शासन करते रहे। इस प्रकार, स्थानीय जनता के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करने के कारण, अधिकांश जनता उसकी शासन-व्यवस्था से सन्तुष्ट रही।

सम्राट का स्थान एवं गौरव

इस विशाल साम्राज्य का अधिपति सम्राट स्वयं था जो अपने को 'क्षश्र' (संस्कृत-क्षत्र, जिससे क्षत्रिय शब्द बना है।) यानी 'योद्धा' कहता था क्योंकि युद्ध में प्रधान सेनापति के रूप में वही सैन्य-संचालन करता था। चूँकि उसके अधीन कई छोटे-छोटे राजा भी होते थे अतः सम्राट अपने को 'राजाओं का राजा' कहता था—यद्यपि यूनानी सिर्फ उसे 'बादशाह' (यानी Basileus) ही कहते थे।

सभी प्राचीन सम्राटों की भाँति फारस का सम्राट भी निरंकुश शासक होता था। उसकी इच्छा ही कानून थी, और उसी के बनाये हुए कानूनों के आधार पर साम्राज्य का शासन-प्रबन्ध होता था। वह इच्छानुसार किसी की भी हत्या कर सकता था। यहाँ तक कि अपने किसी भी दरबारी के पुत्र को भी उसी के पिता के सामने अपनी तीरन्दाजी का लक्ष्य बना सकता था। दरबार में हिजड़ों का बोलबाला था क्योंकि सम्राट के हरम की देखभाल तथा राजकुमारों की शिक्षा का भार इन्हीं लोगों पर होता था। अक्सर ये लोग षड़यन्त्र इत्यादि करते रहते थे। अतः सम्राट को सदैव इनसे सतर्क रहना पड़ता था।

परन्तु सम्राट के दरबारी उनकी निरंकुशता को सर्वदा नियंत्रित करते थे। सम्राट डेरीयस प्रथम, अपने उन ६ अमीर मित्रों को, बड़ी ही श्रद्धा की दृष्टि से देखता था एवं हर मामले में उनकी बातों को सुनता था। इन ६ अमीरों की तूती दरबार में बोलती थी।

दरबार के अन्य अमीर भी प्रतिदिन दरबार में उपस्थित होते थे। इन सबको सम्राट की ओर से जागीरें प्राप्त थीं, जिनके शासन-प्रबन्ध में वे स्वतंत्र थे। यहाँ तक कि उन्हें अपनी सेना रखने की भी आज्ञा थी।

कानून तथा न्याय एवं न्यायालय

चूंकि सम्राट ही कानून-निर्माता होता था अतः हरएक मामले या मुकदमे का फैसला भी वही करता था। सम्राट अपने को देवता अहूर-मज्द का प्रतिनिधि समझता था और उसी के नाम से शासन करता था। सम्राट् का राज-दरबार ही सारे साम्राज्य के लिए उच्चतम न्यायालय (Supreme

Court) का काम करता था, परन्तु सम्राट अक्सर न्याय करने का अधिकार अपने कुछ चुने हुए शिक्षित दरबारियों के हाथों में सौंप देता था।

इस उच्चतम न्यायालय के नीचे उच्च न्यायालय (High Court) होते थे एवं इनके नीचे स्थानीय न्यायालय जो राज्य भर में बिखरे हुए थे। ये न्यायालय केवल दंड ही नहीं, अपितु पुरस्कार भी प्रदान करते थे। दंड देने के पहले, अपराधी के गुण-दोषों पर भली-भाँति विचार कर लिया जाता था। जामिन-प्रथा (bail system) भी किसी-किसी खास मामले में लागू की जाती थी। न्यायालय में अपराधी को पूरा-पूरा मौका, मुकदमे को चलाने के लिए दिया जाता था। कभी-कभी न्यायालय की ओर से, वादी-प्रतिवादी को, आपसी झगड़े मिटाने के लिए, पंच (arbitrator) भी निश्चित करने की सलाह दी जाती। शपथ ग्रहण तथा प्रायश्चित्त करने की विधियाँ प्रचलित थीं। कुछ दिनों के पश्चात् कानूनी कार्यवाहियों, मामलों की जाँच-पड़ताल तथा कानून समझाने के लिए "कानून-वक्ता" (Speakers of Law.) पैदा हो गये जिनका काम आधुनिक वकीलों से काफी मिलता-जुलता था। घूस देनेवाले और लेनेवाले, दोनों को कठिन दंड दिये जाते। अन्यायी न्यायाधीश के लिए बड़ा कठोर दंड-विधान था। सम्राट् कैम्बीसस ने एक अन्यायी न्यायाधीश की चमड़ी उतरवाकर अन्य न्यायाधीशों के समक्ष एक उदाहरण उपस्थित किया। फिर उस मृत न्यायाधीश के लड़के को उसके पिता के स्थान पर नियुक्त कर दिया।

न्यायाधीश पहले-पहल अधिकतर पुरोहित हुआ करते थे। पश्चात् साधारण व्यक्ति (स्त्री अथवा पुरुष) को भी न्याय तथा फैसला करने का मौका प्राप्त होने लगा।

छोटे-मोटे अपराधों के लिए कोड़े मारने का विधान था। कभी-कभी कोड़े के बदले जुर्माना भी वसूल किया जाता था। जैसे एक कोड़े के लिए छः रुपया। भारी अपराधों के लिए अंगहानि (mutilation) या मृत्यु-दंड भी दिया जाता। राजविद्रोह, स्त्री-धर्षण, सहमैथुन (sodomy), हत्या, मृतकों को जलाना या गाड़ना (कारण आगे दिया गया है), सम्राट के गुप्त कक्षों में प्रवेश या उनकी किसी रखैल से अवैध सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा, भूल से सम्राट के सिंहासन पर बैठना या उनके पारिवारिक वर्ग के किसी सदस्य को असंतुष्ट कर देना, आदि आदि भारी अपराधों में गिने जाते थे। ऐसे अपराधी को मृत्युदंड भी आजकल की तरह सीधे-सीधे न दिया जाता था। मृत्युदंड देने की कई प्रथाएँ थीं, जैसे विष दे देना, चमडी उतरवा लेना, शूली पर चढ़ाना, सिर नीचे लटका कर फांसी देना, पत्थर मारना, सिर तक शरीर को गाड़ देना, दो पत्थरों के बीच में सिर को पीस देना, गरम राख में अपराधी को फेंक देना या उसे दो नावों

के बीच बांध कर मुँह पर शहद और दूध मल देना ताकि मक्खियाँ भिन-भिन कर उसको परेशान करें और इस प्रकार उसका प्राणान्त हो जाय।

राजधानी एवँ अन्यान्य नगर-राज-मार्गों का निर्माण

साम्राज्य के सभी नगर सम्राट की राजधानी के रूप में व्यवहृत होते थे, जैसे गर्मियों में राजधानी एकबटाना या अक्सर सुसा में होती थी। अन्य समयों के लिए पशरगेडी (यही प्रथम राजधानी थी) या पार्सीपोलिस शहर चुना जाता था। इन सबमें सुसा नगरी ही सम्राट को प्रिय थी क्योंकि वहाँ पहुँचना आसान था और वह साम्राज्य के केन्द्र में स्थित थी।

ये सभी राजधानियाँ एक दूसरे से बड़ी-बड़ी सड़कों के द्वारा सम्बन्धित थीं जिससे शासन-संचालन बड़ी सुगमता से होता था। परन्तु दुर्भाग्यवश इन्हीं राज-मार्गों के कारण, सिकन्दर महान् को, फारसी साम्राज्य विजय करने में बेहद सुविधाएँ प्राप्त हुईं जिससे विशाल फारसी-साम्राज्य का पतन बहुत ही शीघ्र हो गया।

इन राज-मार्गों (Royal roads) का निर्माण सम्राट डेरियस प्रथम के इंजीनियरों ने किया था। इन सड़कों में सबसे लम्बी सड़क, सुसा तथा सार्डिस को मिलाने वाली, पन्द्रह सौ मील लम्बी थी। सड़क की नाप परसंग के द्वारा होती थी जो ३·४ मील लम्बी होती थी। हर चौथे परसंग पर राजकीय छावनी (Royal station) तथा सरायें होती थीं। हरएक छावनी पर डाक ले जाने के लिए राजकीय डाकगाड़ी, घोड़ों समेत हर समय जुती हुई, प्रस्तुत रहती थी, और आनेवाली डाक (mail) को लेकर तुरन्त अगले स्टेशन या छावनी को रवाना हो जाती थी। इस प्रकार दूर-दूर के स्थानों में भी एक हफ्ते से भी कम दिनों में डाक पहुँच जाती थी। पूर्व में अफगानिस्तान तथा पश्चिम में मिस्र तक पहुँचने वाली सड़कों की केन्द्रस्थली थी सूसा नगरी। यद्यपि सैनिक तथा शासन-प्रबन्ध की दृष्टि से ही इन सड़कों का निर्माण हुआ था, परन्तु इन्हीं रास्तों से फारस का अधिकांश व्यापार भी होता रहा, एवं दूर-दूर प्रदेशों के व्यापारी तथा यात्रियों के आने-जाने से उन देशों के कायदे, कानून, सभ्यता तथा संस्कृति का काफी प्रभाव फारस के समाज एवं संस्कृति पर पड़ा।

नदियों को पार करने के लिए फेरी-नावें होती थीं। डेरियस के इंजीनियर अवसर पड़ने पर, नदियों के ऊपर मजबूत पुल भी बांध सकते थे, जैसा कि यूनान आक्रमण के समय उन्होंने हेलेस्पाण्ट के ऊपर किया था। परन्तु नौ-यात्रा या जहाजरानी (navigation) में फारसी उतने सफल न हुए। फारसियों के न तो अपने जहाज थे न नौसेना—यह काम तो उन्होंने वेतनभोगी यूनानियों एवं फीनिशियावालों को सौंप दिया था।

डेरियस प्रथम ने फारस को भूमध्यसागर से मिलाने के लिए नील नदी तथा लाल सागर को मिलाते हुए एक नहर का निर्माण करवाया था जो वर्तमान स्वेज नहर की जन्मदात्री मानी जाती है। परन्तु उसके उत्तराधिकारियों ने इस सुन्दर तथा विशाल एवं उपयोगी नहर को स्थायी रखने के लिए कोई उपाय न किया और धीरे-धीरे बालू भरने के कारण यह एकदम ही नष्ट हो गयी। यहाँ तक कि सम्राट जारक्सस् (या क्षयार्श) ने जब अपने नाविकों को अफ्रीका के चक्कर लगाने के लिए भेजा तो वे "हरक्यूलिस के स्तम्भ" तक ही जाकर लौट पड़े। केवल जहाज़रानी में ही नहीं, अपितु जलपथ से वैदेशिक व्यापार के लिए भी फारसी, अन्य विदेशी जातियों जैसे वैबिलोनिया, फीनिशिया के लोगों या यहूदी, यूनानी आदि पर निर्भर करते थे।

डेरियस के सिक्के

लेन-देन का कारोबार पहले द्रव्यों के द्वारा (गल्ला एवं मवेशी द्वारा) ही फारस में होता था, पश्चात् डेरियस ने, अपने नाम से "डेरीक" नामक सोने-चाँदी के सिक्के चलवाए जिन पर उसकी शक्ल भी खुदी हुई होती थी। श्री विल डूराण्ट महोदय का कहना है कि इन सिक्कों का नाम "डेरीक" उसके नाम के अनुसार नहीं हुआ था। वस्तुतः "डेरीक" शब्द, फारसी शब्द "जरीक" से लिया गया था, जिसका अर्थ होता है "सोने का टुकड़ा"। इस प्रकार तीन हजार सोने की डेरीक, एक सोने की टैलेण्ट के बराबर होती थी। (देखिए "Our Oriental Heritage," f. n. on p. 358.) अब आप अनुमान लगा सकते हैं कि विभिन्न, क्षत्रपियों से कितने सोने चाँदी के सिक्के, वार्षिक-कर के रूप में केन्द्रीय सरकार यानी सम्राट को प्राप्त होता होगा। सोने के डेरीक सिक्के का वजन १३० ग्रेन तथा चाँदी का ८६½ ग्रेन होता था। अतः एक सोने की टैलेण्ट ३९०,००० ग्रेन के बराबर होती थी। चाँदी के सिक्के को 'सिगलोस' (Siglos) भी कहा जाता था। इस प्रकार १ चाँदी का टैलेण्ट = ६००० सिगलोस = ३०० डेरीक (सोना) के होता था। अतः १० चाँदी के टैलेण्ट, १ सोने के टैलेण्ट के बराबर होता था (देखिए, A History of Persia, Vol. I, by Sir P. Sykes, f.,n. on p. 163)

इस प्रकार डेरियस प्रथम के स्वर्ण तथा रौप्यमान (Gold and Silver bullion Standard) से स्पष्ट हो जाता है कि उस समय फारसी-साम्राज्य अवश्य ही काफी समृद्धिशाली रहा होगा। डेरियस के इन सिक्कों का प्रचलन बहुत दिनों तक सिन्ध नदी के तटवर्ती प्रदेशों में भी रहा, और भारतीय सिक्कों का जन्म इन्हीं "डेरीक" सिक्कों से हुआ, इसमें सन्देह नहीं। "डेरीक" के सोने-चाँदी के सिक्कों की विनिमय राशि १ : ८ थी जबकि वही राशि फारस

में १ : १३ मानी जाती थी। इसका कारण यह था कि सुवर्ण डेरीक की वजन १३० ग्रेन था, और भारतीय सुवर्ण-मुद्रा या निष्क का वजन था १५० ग्रेन।

डेरियस प्रथम की सेना एवं सैन्य-संगठन

इतने बड़े विशाल साम्राज्य का शासन सुचारु रूप से तभी संभव था जबकि सम्राट के पास एक सुसंगठित, रण-चतुर, विशाल सेना होती। अतः डेरियस महान् ने अपनी सेना का संगठन बड़ी ही मुस्तैदी से किया। १५ से ५५ वर्ष के सभी जवान पुरुषों को सेना में भर्ती होना पड़ता था, विशेषकर जब युद्धादि की घोषणा होती थी।

सेना का प्रधान अग्रभाग था राजकीय सैन्य दल जिसमें २००० पैदल और २००० घुड़सवार होते थे। ये सभी कुलीन वर्ग के होते थे और इनका प्रधान कार्य था युद्ध के समय सम्राट की रक्षा करना। सम्राट की स्थायी सेना में केवल मिडिस और फारसी सिपाही ही भर्ती हो सकते थे। स्थायी सेना की छावनियाँ, साम्राज्य के मुख्य-मुख्य स्थानों पर बनी हुई थीं।

स्थायी सैन्य दल में, साम्राज्य में बसे हुए भिन्न-भिन्न जातियों की सेनाएँ भी थीं, जिनकी भाषा, अस्त्र-शस्त्र और युद्ध करने के ढंग, एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न थे। अस्त्र-शस्त्रों में ये मुख्य थे, तीर-धनुष, बर्छा, बल्लम, टेढ़ी तलवार, छुरा, चाकू, फन्दे इत्यादि। सैनिक के सिर पर धातु की टोपी और रक्षा के लिए ढाल तथा शरीर पर कवच होता था।

इस विपुल सेना-दल के साथ घोड़े, हाथी, चारण, कवि, लेखक, हिजड़े, वेश्याएँ, रखैल आदि चलती थीं। सेना के साथ, लोहे की तलवार युक्त रथ भी होते थे जिनका सामना करना शत्रु के लिये आसान न था। फारसी-सम्राट जारक्स (Xerxes—क्षयार्स) के यूनान आक्रमण के समय उसकी फौज में भिन्न-भिन्न जातियों के १, ८०,००० सिपाही थे, जिनमें एकता का सर्वथा अभाव था। इस विशाल पारसी फौज की तुलना हम उस मुगल फौज से कर सकते हैं जो मुगल सम्राट औरंगजेब के समय में महाराष्ट्र पर आक्रमण करने के लिये भेजी गयी थी। पारसी फौज की भाँति, मुगल फौज में भी, नाना जातियों के सिपाही थे, और उनके मनोरंजन के लिये रखैल, हिजड़े तथा वेश्याएं सदैव साथ-साथ रहती थीं। इसके अलावा बड़े-बड़े तम्बू तथा रसद आदि ढोने के लिये विशालकाय हाथी तथा ऊंटों का झुंड भी साथ ही चलता था। अतः वीर मराठों के फुर्तीले घुड़सवारों के सामने मुगल फौज बिल्कुल असफल सिद्ध हुई और दक्षिण में ही मराठों के विरुद्ध लड़ते-लड़ते १७०७ ई० में, सम्राट औरंगजेब का देहान्त हो गया। पारसी-सम्राट जारक्सस भी, यूनानियों के विरुद्ध, कई लड़ाइयों में असफल होकर लौट आया, और एशिया पर यूनानियों के आक्रमण करने का रास्ता खोल दिया। पारसी फौज की इस

पराजय से ही उत्साहित होकर, सिकन्दर महान् ने सम्राट डेरियस तृतीय (३३८–३३० ई० पू०)को, ईसस के मैदान में, (३३३ ई०पू०)पूर्णतः पराजित कर विशाल पारसी-साम्राज्य को अपने साम्राज्य में मिला लिया।

डेरियस महान के समय की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक अवस्था एवं भाषा, रीति-नीति तथा नैतिक जीवन

निवासी

इस विशाल साम्राज्य के निवासियों में फारसी सबसे अधिक सुन्दर तथा सभ्य थे। महलों तथा प्रासादों में प्राप्त प्रस्तर-चित्रों में देखा जाता है कि वे बलिष्ठ शरीर तथा सुडौल गठन के थे। उनकी नाक यूनानियों जैसी सुन्दर थी। उनकी पोशाक तथा अलंकार मिडीम-वालों के ही अनुरूप थे। उनके सिर पर पगड़ी या ऊन की टोपी (felt cap) होती थी, और पैरों में जूते। उन के शरीर पर तीन पोशाकें होती थीं, सबसे नीचे, शरीर से लगा हुआ सफेद लिनेन कपड़े का एक टुकड़ा, उसके ऊपर, बाहों और हाथों को ढँकता हुआ, एक दोहरा अंगरखा (tunic), और कमर में कमरबन्द। केवल चेहरे के अलावा, शरीर के और किसी भाग को प्रदर्शित करना, वे असभ्यता समझते थे। पुरुषों के चेहरे पर लम्बी दाढ़ियाँ एवं सिर पर धुंघराले बाल होते थे। वे कभी-कभी बनावटी केश (wigs) भी पहनते थे। प्रसाधन तथा विलास-द्रव्य एवं सुगंध (scent) का व्यवहार, स्त्री पुरुष दोनों उसी भाँति करते थे जैसे अलंकारों का। चेहरे के सौन्दर्य-वर्धन के लिये क्रीम (cream) तथा आँखों में सुर्मा तथा काजल का प्रयोग करते थे। क्रमशः धनिक वर्गों के समाज में, प्रसाधन द्रव्यों द्वारा सज्जित करने वाली एक श्रेणी (adorners, dressers) का जन्म हुआ जिन्हें यूनानी 'Rosmetai' कहते थे। इसी शब्द से आधुनिक शब्द 'Cosmetics' (यानी प्रसाधन द्रव्य) का जन्म हुआ। सम्राट भी युद्ध क्षेत्र में अपने निजी प्रसाधन द्रव्यों की पेटी साथ रखता था, और युद्ध में हार हो या जीत, दोनों ही हालत में, वह प्रसाधन-सामग्रियों का प्रयोग करता था।

सम्राट की पोशाक एवं दरबारी

सम्राट स्वयं गुलाबी रंग का पाजामा तथा पोशाक, एवं केसरिया बटन वाला जूता पहनता था। उसके सिर पर 'टायरा' (Kydaris or tiara) होता था, जिसे पहनने का अधिकार केवल सम्राट को ही था। पार्सी-पोलिस में प्राप्त मूर्तियों में, सम्राट, टायरा पहने दिखाई पड़ता है। उसके कानों में बालियाँ (ear-rings) हाथों पर ब्रेसलेट (bracelet) जंजीर, तथा सोने

का कमरबन्द होता था। प्रस्तर मूर्तियों में वह एक बहुमूल्य सिंहासन पर बैठा हुआ दिखाई पड़ता है। उसके हाथ में, सुनहरा सेब लगा हुआ राजदंड है, पीछे चामरधारी सेवक दंडायमान हैं।

सम्राट के दरबार में, प्रधान स्थान, सम्राट् की अंगरक्षक सेना के सेनापति का होता था। अन्यान्य प्रधान अफ़सरों में, प्रधान बावर्ची, और प्रधान हिजड़ा होता था। इसके अलावा, चैम्बरलैन (Chamberlain) या महल का प्रधान, प्याले वाले, शिकारी, राजदूत, संगीतज्ञ, रसोइये आदि होते थे। यूनानी ऐतिहासिक टिसीयस (Ctesias) का कहना है कि सम्राट रोज पंद्रह हजार लोगों को भोजन देता था, और ऊँट घोड़े, गदहे, भेंड़, बकरी, साँड, शुतुर्मुर्ग, बतख, एवं अन्यान्य छोटे-छोटे पक्षी, सभी के शोरबे बनाये जाते थे। सम्राट अकेले ही भोजन करता था परन्तु उसकी सम्राज्ञी एवं बच्चे भी कभी-कभी उनका साथ देते थे। (यह रीति अब भी फारस में वर्तमान है।) सोने के पलंग पर लेटकर, सम्राट जी भर कर शराब पीता था। सोने चाँदी के प्याले तथा बर्तन ही खाने-पीने के काम में इस्तेमाल किये जाते थे।

सम्राट के आमोद-प्रमोद एवं विहार-यात्रा

युद्ध तथा शिकार ही सम्राट एवं उसके प्रिय दरबारियों के मुख्य मनोरंजन के साधन थे। साथ में, शिकार के लिये शिकारी कुत्ते होते थे, जिन की सहायता से वे, शेर या भालू का शिकार करते थे। अक्सर शिकार के लिये जानवर, बड़े-बड़े उद्यानों में पाले जाते थे जिनके चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवारें होती थीं। यह तरीका उन्होंने असुरी सम्राटों के अनुकरण में ही ग्रहण किया था। जंगली गधों का शिकार भी, घुड़सवार, बड़े शौक से करते थे।

अपने अवकाश के समय, सम्राट अपने निजी महल के अन्दर ताश-पाशा खेलता, चित्र खींचता, एवं कभी-कभी लकड़ी पर खुदाई का काम भी करता था। पारसी सम्राट अक्सर निरक्षर भट्टाचार्य (illiterate) हुआ करते थे, अतः असीरीय सम्राटों की तरह उन्हें, पाठागार स्थापित करने (जैसे आसुरी सम्राट असुरबानीपालने बौरासिया के पाठागार में ३०,००० पुस्तकें यानी चौकोर तख्ते एकत्र किये थे) या साहित्य-सेवा में दिलचस्पी न थी। हाँ कभी-कभी, अपने पूर्वजों की एवं प्राचीन राजवंशों की गाथायें अवश्य ही सुना करते थे।

रानीमहल के अन्दर सम्राज्ञी का अधिकार काफी विस्तृत था। उनका अपना निजी आय-कर (revenue), नौकर-चाकर तथा दास दासियाँ थीं। कभी सम्राज्ञी और राजमाता (Queen mother) में अधिकार के लिये संघर्ष हो जाता था जिससे नाना प्रकार के षड्यन्त्रों की उत्पत्ति होती थी।

सम्राट की रखैलों के पद तथा अधिकार सम्राज्ञी से काफी नीचे थे और उन्हें वर्ष में केवल एक बार ही सम्राट के साथ रात्रि-यापन करने का अवसर प्राप्त होता था।

परन्तु दरबार तथा महल में (जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है) हिजड़ों का बोलबाला था। राजकुमारों को चरित्र-भ्रष्ट करने में इनका बड़ा हाथ होता था। यह दोषपूर्ण रीति, अफगानी, तुर्की, तथा मुगल बादशाहों के दरबारों में भी मौजूद थी, जिससे नाना प्रकार के कुविचार, षड्यन्त्र, हत्या आदि सदैव इन दरबारों में हुआ करते थे।

यथा राजा तथा प्रजा; अवश्य ही तत्कालीन पारसी-समाज में भी रखैल तथा हिजड़े रखने की प्रथा थी। परन्तु आम लोग नैतिक जीवन में बड़े ही उच्च आदर्श के होते थे और तभी यह विशाल पारसी-साम्राज्य तथा समाज काफी दिनों तक कायम रह सका।

ऐतिहासिक हेरोडोटस का कहना है कि आम-पारसी के अस्त्र-शस्त्र थे, जालीदार ढाल, जिसके नीचे तीरकश लटका हुआ रहता था, छोटे बल्लम, तीर-धनुष (नरकुल के बने हुए) और दाहिने कंधे के ऊपर लटकता हुआ छुरा। (History of Persia, Vol I, by Sykes, P 175)

प्रचलित भाषाएं एवं लिपियाँ:—

डेरियस प्रथम के समय दरबार एवं दरबारियों की भाषा थी प्राचीन पारसीक भाषा, जो बहुत कुछ वैदिक संस्कृत भाषा से मिलती-जुलती थी, और दोनों किसी एक ही प्राचीन भाषा की सन्तानें थीं, इसमें सन्देह नहीं। प्राचीन पारसी भाषा से और दो भाषाओं का जन्म हुआ। (१) ज़ेन्द जिसमें पारसियों का प्रधान धर्मग्रन्थ ज़ेन्दावेस्ता लिखा गया है और (२) पहलवी जिससे आधुनिक पारसी-भाषा का जन्म हुआ है।

पारसियों ने अपने शिलालेखों में बाबुल वालों के उत्कीर्ण-लेख का प्रयोग किया और आवश्यकीय कागज-पत्र, डाकुमेण्ट आदि लिखने के लिये अरमैईक वर्ण-माला का। फारसियों ने बाबुलवालों के द्वारा प्रयोग किये गये तीन सौ अक्षरों को छत्तीस चिन्हों में परिवर्तित कर दिया ताकि प्रयोग में आसानी हो। यह छत्तीस चिन्ह आगे चलकर अक्षरों में बदल गये और इस प्रकार एक उत्कीर्ण-वर्णमाला की सृष्टि हुई। पारसी लिखने-पढ़ने को ऐय्याशी समझते थे, अत: कुछ शिलालेखों के अलावा उनके साहित्य का कुछ भी पता नहीं चलता। लिखने पढ़ने से अधिक दिलचस्पी उनको युद्ध, शिकार तथा प्रेम करने में आता था। इन्हीं में उनका अधिक समय व्यतीत होता था। अत: साहित्य-सेवा के लिये उनके पास समय कहाँ था ?

पारसी-शिलालेख बेहिस्तून के त्रिभाषीय शिलालेख

अब पारसी शिलालेखों के बारे में कुछ कहना उचित होगा। इन शिलालेखों के पाठोद्धार करने वाले विद्वानों में सर हेनरी रालिसन का नाम प्रमुख हैं। अन्य दो विद्वान्, श्री एल० डब्लू० किंग तथा श्री आर० सी० थाम्पसन (जिनका उल्लेख श्री साईक्स महोदय ने अपनी पुस्तक History of Persia, Vol I P. 196 fn. 1. में किया है) ने भी इन शिलालेखों को पढ़ने और नकल करने में श्री रालिसन की भाँति ही अपने प्राणों को खतरे में डाला है, क्योंकि ये "त्रिभाषीय-शिलालेख" (Trilingual inscription) सम्राट डेरियस महान् के द्वारा, एक पहाड़ की चोटी पर, ४००० फुट ऊँचाई पर, उत्कीर्ण किये गये हैं। ये शिलालेख ही, इतिहास-प्रसिद्ध, 'बेहिस्तून के शिलालेख' (Behistun inscription) हैं। क्योंकि इस स्थान का नाम बेहिस्तून या 'बेसितून' है। ये शिलालेख, पारसी, सूसीयान या नव्य ईलमी (new elamite language) तथा बैबिलोनीय, आदि तीन भाषाओं में लिखे गये हैं। स्पष्ट है कि ये तीनों भाषाएं उस समय फारस में प्रचलित थीं, एवं पढ़ी व समझी जाती थीं। करमन्शा से हमादान की ओर जाते हुये जो बिखरी हुई पहाड़ियाँ दिखाई पड़ती हैं, उसी पहाड़ी श्रेणी की अन्तिम चोटी पर ये शिलालेख पाये गये हैं। इन बिखरी हुई पर्वत-श्रेणियों के पास कई झरने हैं, जहाँ पर सदैव से, आते जाते हुये काफिले, आराम एवं विश्राम के लिये रुकते हैं। ऐसे ही जनप्रिय स्थान पर सम्राट डेरियस ने, अपनी कृतियों को, शिलालेख के रूप में, जनता के सामने उपस्थित किया था।

इन शिलालेखों का सर्वप्रथम उल्लेख डाओडौरस सीकुलस (Diodorous Siculus) नामक रोमन ऐतिहासिक ने, (प्रथम शताब्दी ई० में) किया है। इनका कहना है कि इन शिलालेखों की मूर्तियों का निर्माण सम्राज्ञी सेमीरामीस' ने किया है। इन मूर्तियों में दाढ़ी वाली मूर्ति को (जो वस्तुतः डेरियस महान् की है) उन्होंने इसी सम्राज्ञी का बताया जो कि उसकी भूल है। अधिक ऊँचाई पर होने के कारण, ये मूर्तियाँ अब भी सुरक्षित अवस्था में हैं। सम्राट डेरियस के दोनों ओर उनके दो अफसरों की मूर्तियाँ हैं। शेष मूर्तियाँ, विजित शत्रुओं की हैं। इनमें से, एक, उस गौमत की मूर्ति है जो बरदीय (सम्राट कैम्बीसस के भाई) के गुमनाम से फारस का अधिपति बन बैठा था। सम्राट, अपने बायें पैर के द्वारा, उसे मजबूती से दबाये हुये हैं, जो पीठ के सहारे लेटा हुआ, हाथों को ऊपर उठाये क्षमा-प्रार्थना कर रहा है। सम्राट के सम्मुख अन्य नौ विद्रोही नेता दंडायमान हैं, जिन्होंने किसी न किसी गुमनाम से, अपने-अपने इलाके में, सम्राट के विरुद्ध विद्रोह के झंडे उठाये थे। इन सब विद्रोही नेताओं के हाथ एक साथ रस्सी से बंधे हुये हैं और उनके

नाम, नीचे शिलालेखों में दिये गये हैं। सर्वोपरि, देवता अहुरमज्द की मूर्ति मंडरा रही है, और सम्राट दायाँ हाथ उठाकर, श्रद्धा से उनका अभिवादन कर रहा है। इन त्रिभाषीय शिलालेखों में, सम्राट डेरियस की उपाधियाँ (titles) एवं साम्राज्य-विस्तार का वर्णन है। फिर इनमें, सम्राट कैम्बिसस के द्वारा, उसके भाई बरदीय (या स्मेर्डीस-यूनानी नाम) की हत्या, एवं बरदीय के गुमनाम से, मागी-धर्मावलंबी गौतम के, सिंहासनारोहण का वर्णन है। जब सम्राट कैम्बिलस, विद्रोह दमन के लिये, मिस्र गया हुआ था, सम्राट डेरियस के हाथों गौमत की मृत्यु एवं उसके द्वारा विद्रोह-दमन आदि का सबिस्तर वर्णन इन शिलालेखों में है। अन्तिम चरण में सम्राट अपने उत्तराधिकारियों को, मक्कारों से सावधान रहने एवं पाठकों को इन मूर्तियों की रक्षा करने का आदेश देते हुए इस प्रकार इनकी समाप्ति करता है, "बादशाह डेरियस, इस प्रकार घोषणा करता है कि अगर तू इस स्मृति-फलक या मूर्तियों को देखता है और फिर उन्हें नष्ट करता है, या जब तक तेरा वंश अक्षुण्ण है, और तू उन्हें सुरक्षित करने की चेष्टा नहीं करता, तो भगवान अहुर-मज्द, तेरा निधन करे, तेरा वंश निर्मूल हो जाय और जो कुछ भी तू करे, उसे भवगान अहुर-मज्द, नष्टभ्रष्ट कर दें।" (Vide History of Persia, Vol. I, by Sir P. Sykes, p. 178)

आम-जनता की सामाजिक तथा आर्थिक अवस्था

परन्तु साधारण व्यक्ति अधिकतर अनपढ़ होते थे। डेरियस महान् या अन्य फारसी सम्राटों ने जन-शिक्षा के लिए किसी विद्यालय आदि की स्थापना नहीं की जैसा कि सुमेरिया तथा बाबुलवालों ने किया था।

अधिकतर लोग कृषि कार्य करते थे। उनके धर्म-ग्रंथ जेन्दावेस्ता में, कृषि-कार्य को, काफी महानता प्रदान की गई है और मानव का सर्वोत्तम पेशा माना गया है। देवता अहुर-मज्द भी कृषि-कार्य करने वाले पर संतुष्ट होते हैं। अतः स्वाभाविक था कि जनता का अधिकांश भाग खेती-बारी से ही जीवन निर्वाह करता था।

किसान कभी-कभी स्वयं अन्य किसान-भाइयों से मिलकर भी खेती करते थे। अधिकांश कृषि-योग्य भूमि जमींदारों के हाथ में थी जो या तो किसान-मजदूरों से खेत जोतवाते थे, या विदेशी गुलामों से। किसान-मजदूरों को, मजदूरी के रूप में, उपज का एक भाग दिया जाता था। खेत जोतने के लिए हल-बैल का प्रयोग किया जाता था—हल लकड़ी के बने होते और उनमें धातु का फल लगा होता था जैसा अब भी भारतवर्ष में प्रयोग होता है।

सिंचाई—नहरों के द्वारा, दूर-दूर के पहाड़ों से, खेतों की सिंचाई के लिए, पानी लाया जाता था। मुख्य उपज थी, गेहूँ और जौ। इनके अलावा पारसियों का मुख्य भोजन था मांस। शराब पीने में भी वे कुशल थे। कोई भी महत्वपूर्ण विषय पर वाद-विवाद करते हुए, किसी निश्चित निर्णय पर पहुँचने के समय वे गोष्ठी में बैठकर, आकण्ठ शराब पीते थे। हाँ, दूसरे दिन प्रातः वे अक्सर अपने निर्णय या सिद्धान्तों में परिवर्तन कर देते थे। सम्राट साईरस अपनी फौज को स्वयं शराब वितरण करता था।

अध्याय | ५

प्राचीन पारसीक धर्म एवं धार्मिक विश्वास—जरस्थुत्र का आगमन—समाज, कला-कौशल, वास्तुकला, सम्राटों के महल

जरस्थुत्र के आगमन के पहले पारसियों के धर्म तथा धार्मिक विश्वास, वैदिक आर्यों की भाँति ही थे। वैदिक आर्यों की भाँति वे भी प्रकृति-पूजक थे। प्रारम्भ में दोनों ही 'असुर' (अवेस्ता में इन्हीं को अहुर कहा गया है) यानी 'विश्वपति' और 'देव'—(अवेस्ता में इन्हें दैव कहा गया है) यानी 'आकाशस्थ देवता' की पूजा करते रहे। ऋग्वेद के प्रारम्भिक अंश में 'वरुण' यानी जलाधिपति को 'असुर' (विश्वपति) कह कर अशेष श्रद्धा प्रकट की गयी है। परन्तु इसी 'असुर' को ऋग्वेग के अन्तिम भाग में, 'दुष्ट एवं शैतान' कहा गया है। स्पष्ट है कि इसी समय के लगभग यानी २००० ई० पू० में, 'असुर' के मानने वाले आर्य, 'देव' या 'दैव' मानने वाले आर्यों से अलग हो गये—और उनके धार्मिक विरोध ने उन्हें अन्यत्र जाने पर विवश किया। अतः 'देव' की पूजा करने वाले आर्य सम्भवतः भारत चले आये। जिस प्रकार वेद के अन्तिम भाग में 'असुर' की निन्दा की गयी है, उसी प्रकार, आवेस्ता में "दैव" की निन्दा की गयी है। वैदिक आर्यों ने आगे चलकर, 'असुर' को दैत्य एवं दानव श्रेणी में सम्मिलित कर लिया। ईरानी आर्यों ने इसके विपरीत "देव" को निम्नतम श्रेणी तथा मर्यादा प्रदान की।

जरस्थुत्र के आगमन के समय, ईरानी आर्य, मिथ्र (वैदिक मित्र) या सूर्य-देव, अनैत (पृथ्वी तथा उत्पादन की देवी) और 'हओम' या बैल-देवता की पूजा करते थे। इसी 'हओम' देवता की श्रद्धा में वे 'होम-रस' या सोम-रस का पान करते थे, जो एक पहाड़ी पौधों का रस था। यज्ञ तथा होम इत्यादि के समय

वैदिक आर्य भी, इसी सोमरस का पान करते थे। इन देवताओं की पूजा करने एवं बलिदान चढ़ाने के लिए 'मागी' नामक पुरोहित-सम्प्रदाय नियुक्त था। चूंकि ये अग्नि-पूजक थे, अतः इन्हें 'अथर्वन्' भी कहा जाता था (अथर शब्द का अर्थ है अग्नि) प्रारम्भ में जरस्थुत्र को इन्हीं 'मागियों' से मोर्चा लेना पड़ा, क्योंकि जरस्थुत्र, बहु देव-देवियों में विश्वास न कर केवल 'अहुर-मज्द' में विश्वास करते थे जो 'आकाश तथा आलोक के अधिपति' थे—एवं अन्यान्य देवता केवल उनके विकास-मात्र थे।

जरस्थुत्र का जन्म, निवास-स्थान, तिथि

सर पर्सी साइक्स के अनुसार ज़रस्थुत्र 'अज़रबैजान' प्रांत के 'उरुमिया' नामक स्थान में पैदा हुए थे। यूनानियों के अनुसार, वह (यूनानियों के समय से) ५५०० वर्ष पहले पैदा हुए थे। बैबिलोनीय ऐतिहासिक बेरोसस, उन्हें २००० ई० पू० के बताते हैं। आधुनिक ऐतिहासिक उन्हें १० वीं ई० पू० से ६ ठी ई० पू० के बीच में पैदा हुए बतलाते हैं। (देखिए Our Oriental Heritage by Will Durant, p. 364-365) श्री विलियम जैक्सन, परम्परा के अनुसार, उनकी जन्म तिथि ६६० ई० पू० एवं मृत्यु तिथि ५८३ ई० पू० मानते हैं। (Vide History of Persia Vol I, by Sir P. Sykes p. 105) श्री विल डूरांट का कहना है कि **'अगर सम्राट विशतश्प (जिन्हें गुअतशप भी कहा जाता है) सम्राट डेरियस प्रथम का पिता माना जाय, तो निश्चय ही, जरस्थुत्र को ६ठीं ई० पू० का मानना चाहिए।"**

(Vide Our Oriental Heritage, p. 365 and fn.)

ज़रस्थुत्र की धार्मिक शिक्षाएँ 'आवेस्ता' नामक धर्मग्रंथ में संकलित हैं। 'आवेस्ता' एवं 'वेद' की भाषा प्रायः एक सी है। यह एक और प्रमाण है कि ईरानी आर्यों और वैदिक आर्यों की भाषा मूलतः एक ही थी—पश्चात्, स्थान तथा काल के परिवर्तन से दोनों भाषाओं में कुछ अन्तर हो गया।

परम्परा के अनुसार, मूल अवेस्ता, २१ खंड या ग्रंथों में संकलित था तथा (अरब ऐतिहासिकों के अनुसार) १२,००० बैल के चमड़ों के ऊपर स्वर्णाक्षरों में; लिखा हुआ था। कहना असंगत न होगा कि अवेस्ता की भाषा और हुरव-मनोषी सम्राटों की शिलालेखी भाषा में बहुत अधिक अन्तर है। हुरव-मनीषी वंश के पतन के पश्चात्, मूल अवेस्ता के प्रायः सभी खंड (या नस्क—Nask) नष्ट कर दिये गये थे। इन खंडों या नस्कों में केवल एक ही अखंड बच गया जिसे 'वेन्दिदाद' (Vendidad) कहते हैं। बाकी खंड बिखरे हुए टुकड़ों में इधर-उधर हो गये थे जिन्हें पश्चात्, 'दिनकद' और 'बुन्दाशिह' (Dinkard and Bundashih) नामक ग्रन्थों में एकत्र किया गया। सम्राट

निशतश्प ने (जिन्होंने प्रथम इस धर्म को ग्रहण किया था) मूल अवेस्ता की दो नकलें करवाई थीं। उनमें से एक तो पार्सीपोलिस के राजप्रासाद में, सिकंदर महान् के द्वारा, जलाकर खाक़ कर दी गयी और दूसरी नक़ल यूनानी अपने साथ उठा ले गये, जिसका अनुवाद करने के पश्चात् उन्हें काफी वैज्ञानिक ज्ञान की प्राप्ति हुई।

ईसा की तृतीय शताब्दी में, असीशीद वंश के पार्थियन-सम्राट वोलोजेसस पंचम (Vologesus V) ने, इन सब बिखरे हुए हिस्सों को एकत्र कर पुनः मूल अवेस्ता को वर्तमान रूप देने की चेष्टा की। चतुर्थ शताब्दी में इसका वर्तमान रूप स्थायी हो गया और पारसी-राज्य का सरकारी धर्म निश्चित रूप से माना गया। परन्तु ७वीं सदी में, मुसलमानों के आक्रमण से, पुनः अवेस्ता का यह संकलन, नष्ट-भ्रष्ट हो गया। जो कुछ बच गया, उन्हें ५ भागों में बाँटा जा सकता है।

(१) **यस्न** (Yasna)—इसमें ४५ अध्याय मन्त्र के और २७ अध्याय गाथा के हैं।

(२) **विस्पेरेद** (Vispered)—इसमें मंत्रों के ऊपर २४ और अध्याय संग्रहीत हैं।

(३) **वेन्दीदाद** (Vendidad)—इसमें २२ अध्याय या फरगरद हैं जिनमें ज़रस्थुत्र की नैतिक शिक्षाओं का संग्रह है।

(४) **यश्त** (Yasht)–इसमें देवदूतों की प्रशंसा में २१ गाथाएँ हैं जिनमें बीच-बीच में प्रागैतिहासिक कहानियाँ एवं 'विश्व के अन्त' के बारे में भी वर्णन प्राप्त होते हैं।

(५) **खोर्दा या छोटा अवेस्ता** :—इसमें जीवन के भिन्न-भिन्न मौके पर करनेवाली प्रार्थनाएँ दी हुई हैं।

ज़रस्थुत्री धर्म के प्रधान देवता अहुर-मज्द एवं अन्यान्य देवता

इस धर्म के सर्वप्रधान देवता थे अहुर-मज्द, जैसे कि ऋग्वेद के प्रधान देवता थे इन्द्र। अहुर-मज्द के सात गुण बताये गये हैं, जैसे वह द्युतिमय, स्वच्छ बुद्धिवाला, न्यायपूर्ण, अधिकारपूर्ण, दयालु, सुखी एवं स्वस्थ जीवन देने वाला तथा अमर है। जरस्थुत्र ने अपनी धार्मिक शिक्षाओं में, एकमात्र अहुर-मज्द को ही उपासना करने के लिए उपदेश दिये हैं। परन्तु उनके पश्चात्, उनके भक्त अहुर-मज्द के इन सात गुणों को, 'सात पवित्र आत्मा' मानकर उनकी उपासना करने लगे। इन पवित्र आत्माओं के अलावा, उन्होंने रक्षक देवदूतों की भी उपासना प्रारंभ कर दी। इनका विश्वास था कि ये पवित्र आत्माएँ तथा रक्षक देवदूत, मनुष्य को सदैव धर्म तथा सत्य के

रास्ते पर ले जाते हैं। इनके विरोधी "सात दैव" या शैतान हैं जो मनुष्य को, असत्य, पाप तथा दुराचार की ओर ले जाते हैं। अहरिमन या अग्र-मैन्यु, इन शैतान दैवों के नेता हैं। इनका राज्य पाताल लोक या यम लोक है। विश्व की सभी बुराइयों के सृष्टिकर्त्ता यह अहरिमन हैं। इन्हीं के षड्यन्त्र से, उस स्वर्ग का ध्वंस हुआ जिसमें अहुर-मज्द ने, मानव-जाति के पिता को सुरक्षित रक्खा था। अगर अहुर-मज्द, उज्ज्वल प्रकाश है तो अहरिमन कोई अंधकार—अतः प्राचीन युग से दोनों में संघर्ष होता चला आ रहा है। यह संघर्ष, प्रकाश-अन्धकार, सत्य-असत्य, पुण्य-पाप, आदि का चिरन्तन संघर्ष है। जरस्थुत्रीयों का विश्वास है, यह संघर्ष चार-युग (प्रत्येक युग ४००० वर्ष का होगा) तक व्याप्त रहेगा, और कभी अहुर-मज्द, तथा कभी अहरिमन की विजय होगी। परन्तु इस अवधि के पश्चात्, अहुर-मज्द की विजय होगी—अहरिमन की शक्ति पूर्णतः पराजित हो जायगी—सत्य की सर्वत्र विजय होगी। उस समय सभी साधु व्यक्तियों का, अहुर-मज्द के साथ स्वर्ग में मिलन होगा, और शैतान तथा दुष्ट व्यक्तियों का स्वर्ग के बाहर, भयंकर अन्धकार (नरक) में पतन होगा, जहाँ वे शाश्वत-काल पर्यन्त विष का आहार करते रहेंगे।

बेहिस्तून में प्राप्त, डेरियस प्रथम के प्रस्तर-चित्र में अहुर-मज्द को एक योद्धा के रूप में दिखाया गया है जिनका नीचे का हिस्सा पक्षियों की पूंछ जैसा है। (देखिए History of Persia, Vol. I, F. P. 162). सर साइक्स का कहना है कि अहुर-मज्द का यह रूप, असीरियन-देवता असुर से लिया गया है।

अहुर मज्द के अलावा क्रमशः प्राचीन पारसी, मिथ्र देव (वैदिक मित्र या सूर्य) अनैता देवी (जिनकी कल्पना ईश्तार देवी की तरह की गयी) की भी पूजा करने लगे। इस प्रकार जरस्थुत्र का एकेश्वरवाद शीघ्र ही बहुदेववाद में परिवर्तित हो गया।

जरस्थुत्र की नैतिक-शिक्षाएँ

'वेन्दिदाद' में जरस्थुत्र के तीन मूल नैतिक सिद्धान्त पाये जाते हैं :—

(१) कृषि और पशु-पालन सर्वोत्तम पेशा एवं कार्य है।

(२) सारा विश्व ही भलाई और बुराई का युद्धक्षेत्र है।

(३) चार तत्व जैसे वायु, जल, अग्नि और पृथ्वी परम पवित्र (pure) है, अतः उन्हें अपवित्र न करना चाहिए।

इन नैतिक सिद्धान्तों का, समाज तथा व्यक्ति पर अदम्य प्रभाव पड़ा जैसा कि तत्कालीन पारसियों के व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन से प्रतीत होता है। प्रथमतः इन नैतिक सिद्धान्तों ने, समाज के प्रत्येक व्यक्ति को नैतिक जीवन-

यापन करने पर बाध्य कर दिया। जरस्थुत्र का कहना था कि अहुर-मज्द ने हर एक व्यक्ति को स्वतंत्र इच्छा दी है—अतः वह चाहे अहुर-मज्द को माने या अहरिमन को, यानी चाहे सत्य जीवनयापन करे या असत्य-जीवन। चाहे प्रकाश के पीछे दौड़े या अन्धकार के, सच बोले या झूठ आदि।

इस प्रकार के धार्मिक एवं नैतिक विचारों के कारण धीरे-धीरे लोग-बाग, अपने-अपने जीवन में, एक प्रकार के सरल एवं साधारण नैतिक नियमों का पालन करने लगे, जिनका मूल मन्त्र था, "उसी का स्वभाव अच्छा है, जो दूसरे के प्रति वह व्यवहार नहीं करता जो कि वह स्वयं दूसरों से, अपने प्रति न करने की आशा करता है।" अतः मनुष्य का कर्त्तव्य, अवेस्ता के अनुसार, तीन हैं (१) जो शत्रु है उसे मित्र बनाना (२) जो शैतान है उसे सत्यवादी बनाना (३) जो अनपढ़ है, उसे पढ़ाना।

अवेस्ता के अनुसार, मनुष्य का सर्वोत्तम गुण है उदारता एवं दया प्रदर्शित करना। कर्म तथा वचन से प्रतिष्ठा एवं ईमानदारी प्रगट करना। इसके बाद आते हैं, अगर कोई पारसी किसी अन्य पारसी को उधार दे, तो उससे सूद न वसूल करे, परन्तु उधार (loan) को सदैव पवित्र समझे।

जरस्थुत्र-धर्म के प्रति अविश्वास करनेवालों को कठिन दंड देने का विधान था। विदेशियों को 'काफिर' समझा जाता था। हेरोडोटस का कहना है कि "पारसी अपने को विश्व में सर्वश्रेष्ठ जाति मानते हैं एवं उनका विश्वास है कि उन देशों के निवासी जो अपनी-अपनी भौगोलिक स्थिति के अनुसार, फारस के समीप हैं, अच्छाई की मात्रा को पहुँचे हुए है। जो देश फारस से बिलकुल दूर हैं, उस देश के लोग बिलकुल ही जंगली एवं असभ्य हैं।"

जरस्थुत्री धर्म के मानने वालों ने देवता या मन्दिरों का निर्माण नहीं किया। पहाड़ों की चोटियों पर, महल में, या शहर के बीचोबीच, अग्नि-वेदी का निर्माण कर, वे पवित्र एवं द्युतिमय अग्नि की पूजा करते थे, क्योंकि अग्नि-देव को अहुर-मज्द का पुत्र समझा जाता था। इस धर्म के मानने वाले अब भी अग्नि की पूजा करते हैं। उनके घरों में सर्वदा पवित्र अग्नि जलती रहती है। वैदिक आर्य भी अग्नि की पूजा करते थे, और उनका विश्वास था कि अग्नि देवताओं का दूत है और देवताओं के उद्देश्य में दिये गये बलि तथा हवन, घृत इत्यादि वह देवताओं को पहुँचाता है। वेद में अग्नि को इसी-लिए 'अग्नि-गार्हपत्य' भी कहा गया है।

जैसे वैदिक आर्य अपने-अपने घरों में, इस पवित्र अग्नि को सदैव प्रज्वलित रखने का प्रयत्न करते थे, उसी प्रकार जरस्थुत्री भी अपने-अपने गृह में अग्नि सदैव जलाकर रखने की चेष्टा करते थे। वैदिक आर्यों की भाँति, वे भी सूर्य की पूजा करते थे, क्योंकि सर्वप्रकाशमान, द्युतिमान, सूर्य, देवता अहुर-मज्द

या मिथ्र का ही अन्य रूप था। अतः अहुर-मज्द, सूर्य एवं अग्नि के लिए फूल, फल, रोटी, सुगन्धित द्रव्य, एवं ऊँट, भेंड़, बैल या साँड़, घोड़े, गधे एवं हिरण आदि की बलि चढ़ाई जाती थी। कभी नरबलि या नरमेध भी किया जाता था। यद्यपि अवेस्ता में 'सोमरस' चढ़ाने का उल्लेख नहीं है. तथापि इन देवताओं की उपासना के समय, उनके लिए में 'हओम' या सोमरस चढ़ाया जाता था। सोमरस का पान पुरोहित एवं उपासक दोनों करते थे।

स्वर्ग तथा नरक की कल्पना

इनके मृत्यु-देवता (वैदिक यमराज) का नाम था अस्तिविहाद। पारसियों का विश्वास था कि इनके हाथ से बचना किसी भी व्यक्ति के लिए मुश्किल है। अतः सभी को किसी न किसी दिन मृत्युलोक जाना पड़ेगा। मृत्योपरान्त, मृतात्माओं को परलोक पहुँचने के लिए एक पुल को पार करना पड़ेगा। जो पवित्र आत्मा हैं, वे स्वर्ग को चले जाएँगे, जहाँ वे अनन्तकाल तक अहुर-मज्द के साथ सुख से जीवन व्यतीत करेंगे। स्वर्ग राज्य में इन आत्माओं का एक सुन्दर तरुणी स्वागत करेगी। जो दुष्टात्माएँ हैं वे नरक में पतित हो जायँगी और अपने-अपने पाप की सीमा के अनुसार नरक-यन्त्रणा-भोग करने के पश्चात्, स्वर्ग चली जायँगी। परन्तु ऐसा तभी सम्भव होगा जब कि ये दुष्टात्माएँ कुछ भलाई के कार्य, मरने के पहले किये होंगी। नहीं तो उन्हें अनन्तकाल तक नरक-यन्त्रणा भोग करनी पड़ेगी। अधिक से अधिक, ऐसी आत्माओं को (अगर उन्होंने कुछ भलाई का कार्य किया होगा तो) १२,००० वर्ष तक नरक में रहना पड़ेगा। ऐसी दुरात्माओं के त्राण के लिए जरस्थुत्र एवं उसके वंश के ३ और पैगम्बर, ३,००० वर्ष की अवधि में पैदा होंगे, और विश्व-धर्म का प्रचार करेंगे।

इस अवधि (१२,००० वर्ष) के पश्चात् अन्तिम निर्णय या फैसले का दिन (Day of Last Judgement) घोषित होगा, तब अहुर-मज्द का राज्य पुनःस्थापित होगा, अहरिमन एवं उसकी सभी दुष्ट शक्तियाँ पराजित एवं नष्ट हो जाएँगी। अर्थात् सत्य की विजय होगी, असत्य का नाश होगा। फिर सभी पवित्र आत्माएँ पुनः अपना नवीन जीवन प्रारम्भ करेंगी और तब विश्व से शैतानी, बुराई, दुःख एवं अन्धकार सभी दूर हो जाएँगे।

कहना असंगत न होगा कि ईसाइयों के "अन्तिम फैसले का दिन" भी इसी प्राचीन जरस्थुत्री विश्वास पर आधारित है। अपितु, स्वर्ग तथा नरक की उपर्युक्त कल्पना, वैदिक आर्यों की कल्पना से बहुत कुछ मिलती-जुलती है।

सम्राट डेरियस प्रथम के संरक्षण में यह धर्म खूब फूला और फैला। परन्तु क्रमशः अहुर-मज्द की पूजा एवं उपासना के साथ-साथ, मित्र (यानी

सूर्य-देव) एवं अनैता (यानी, उत्पादन, उपज, वनस्पति एवं काम या प्रेम की देवी) की पूजा भी लोगों में फैलने लगी और सम्राट अर्टाजारक्सस द्वितीय (४०४ ई० पू०-३५९ ई० पू०) के शिलालेखों में इनके नाम फिर से लिखे जाने लगे। सूर्य या मित्र की पूजा क्रमशः इतनी व्यापक हो गयी कि लोग अहुर-मज्द की उपासना प्रायः भूल गये। एवं ईसा की प्रथम शताब्दी में, मित्र की पूजा (जिनकी कल्पना, मस्तक पर ज्योतिमंडल धारण किए हुए एक युवा-देव के रूप में की गयी है) सारे रोम-साम्राज्य में व्यापक हो गयी तथा अनैता की मूर्तियाँ, अनेक पारसी शहरों में जनता द्वारा स्थापित की गयीं। लोग जरस्थुत्र की सरल-उपासनाविधि एवं उपदेशों को भूल गये एवं तंत्र-मंत्र, रोग-आराम और जादूगरी में अधिक दिलचस्पी लेने लगे।

केवल यही नहीं, ज़रस्थुत्र के मृत्योपरान्त, पुरोहित वर्ग यानी मागी सम्प्रदाय (जिन्हें Wise men या बुद्धिमान पुरुष भी कहा जाता था) पुनः शक्तिशाली हो गये एवं जनता पर अपना अधिकार तथा प्रभाव फिर से स्थापित कर लिया। उन्होंने महान् नेता ज़रस्थुत्र को भी अपने सम्प्रदाय में शामिल कर लिया। इन पुरोहितों का जीवन सरल परन्तु कठिन था, एवं बड़ी ही पवित्रता एवं शुद्धता से ये जीवन बिताते थे। इनकी पोशाक भी सीधी-सादी थी और ये मांस-भक्षण नहीं करते थे। अतः स्वाभाविक था कि जनता पर इनका प्रभाव असीम हो—यहां तक कि यूनानी भी इनकी बुद्धिमत्ता के लिये इनका आदर करते थे। स्वयं फारस के सम्राटों ने इनका शिष्यत्व स्वीकार किया और कोई भी महत्वपूर्ण कार्य कभी, इनकी सलाह के बिना करना बन्द कर दिया। इन मागियों ने देव--उपासना से लेकर, तन्त्र-मन्त्र, नक्षत्र बिद्या (Science of sky) भविष्यवाणी, तथा स्वप्न के बारे में कहना, आदि सभी कुछ शुरू कर दिया। धीरे धीरे जरस्थुत्र का प्रभाव पारसियों के धर्म एवं समाज में घटने लगा। ससानीद वंश (२२६ ई० पू०—६५१ ई० पू०) के समय फिर यह धर्म चमक उठा, परन्तु मुस्लिम और तातार आक्रमणों के कारण, पुनः यह विनाश को प्राप्त हुआ।

ज़रस्थुत्री धर्मावलम्बी अब केवल 'फर्स' प्रान्त को कुछ जातियों में और भारत निवासी ६०,००० पारसियों में ही पाये जाते हैं। ये अब भी 'अवेस्ता' का श्रद्धापूर्वक अध्ययन एवं उसी के अनुसार उपासनादि करते हैं, अग्नि, जल, वायु एवं पृथ्वी की पूजा करते हैं, मृतकों को 'शांति के बुर्ज' (Tower of Silence) में, पशु-पक्षियों के द्वारा भक्षण करने के लिए छोड़ देते हैं। (क्योंकि मृतकों को जलाना या गाड़ना वे बुरा समझते हैं) इन लोगों का स्वभाव तथा चरित्र बड़ा ही सुन्दर होता है, जिससे इस बात का स्पष्ट आभास मिलता है कि ज़रस्थुत्र धर्म का प्रभाव, तत्कालीन पारसी समाज पर काफी गहरा पड़ा

होगा जो अपनी, सभ्यता एवं सुन्दर आचार-व्यवहार के लिए उस समय भी, सभ्य देशों में आदर की दृष्टि से देखे जाते थे।

ज़रस्थुत्री धर्म का पारसी समाज तथा जनता के नैतिक आचरण पर प्रभाव

अगर धर्म का प्रभाव समाज पर न हो एवं वह मानव-चरित्र निर्माण करने में सहायक न हो सके, तो स्वाभाविक है कि धर्म का बाह्य आडम्बर एक दिन उस समाज एवं जाति तथा राष्ट्र के लिए घातक सिद्ध होगा। धर्म का अर्थ केवल मन्दिरों में देवोपासना नहीं, अपितु दरिद्रनारायण की सेवा है—समाज को स्वस्थ तथा शक्तिशाली बनाना ही उसका परम कर्त्तव्य है।

अतः उपर्युक्त दृष्टिकोण से जाँचने पर ज़रस्थुत्री धर्म का प्रभाव तत्कालीन पारसी समाज पर बड़ा ही व्यापक एवं महत्वपूर्ण दिखाई पड़ेगा। यद्यपि पारसी सम्राट अपने शत्रुओं के साथ असीम निर्दयता का व्यवहार करते थे, परन्तु आम जनता इस प्रकार के क्रूर तथा निर्दय व्यवहार से प्रायः दूर ही थी। उनके वैयक्तिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय चारित्रिक गुण हर अवसर पर झलकते थे। युद्ध में की गई संधियों को वे कभी भंग नहीं करते थे। अपितु कोई भी पारसी, किसी भी पारसी के विरुद्ध कभी भी अस्त्र धारण नहीं करता था, या किसी भी प्रलोभन के द्वारा उन्हें आपस में लड़ाया नहीं जा सकता था, जबकि तत्कालीन यूनानी, वेतनभोगी सैनिक के रूप में, अपने ही देशवासियों के विरुद्ध अस्त्र धारण करने में जरा भी नहीं हिचकते थे। ईसस के रणक्षेत्र में (३३३ ई० पू०) सिकन्दर के विरुद्ध जो पारसी फौज भेजी गई थी, उस सेना के मध्य व्यूह (centre) में ३०,००० वेतनभोगी यूनानी सिपाही थे।

रणक्षेत्र के अलावा अपने व्यक्तिगत एवं व्यावहारिक जीवन में तत्कालीन पारसी बड़े ही उदार, सच्चरित्र, स्पष्टवक्ता और अतिथिवत्सल होते थे। आचार-व्यवहार एवं आचरण में वे उतने ही नीतिमान थे जैसे चीनी। दो समान पद तथा प्रतिष्ठासम्पन्न पारसी, भेटं होने पर गले मिलते थे और परस्पर ओठों पर चुम्बन करते थे। अपने से श्रेष्ठ तथा ऊँचे पद वाले व्यक्ति को पूर्ण सम्मान एवं श्रद्धा प्रदर्शित करते थे। अपने से निम्न पद वाले व्यक्ति को वे अपने गालों पर चुम्बन करने देते एवं साधारण व्यक्तियों को केवल सिर झुकाकर ही नमस्कार करते थे। खुली सड़कों पर कोई चीज खाना या पीना, या खुलेआम थूकना या नाक झाड़ना वे असभ्यता समझते थे। दिन को केवल एक बार भोजन करते और जल के अलावा और किसी प्रकार की शराब या नशीली चीज पीने के काम में नहीं लाते थे। परन्तु ज़रस्थुत्री-धर्म के अनुसार, पारसियों ने उपवास (fasting) को कोई महत्व नहीं दिया। क्योंकि

वेन्दिाद के अनुसार, "भोजन न करने से मनुष्य दुर्बल हो जाता है, अतः वह कोई भी काम नहीं कर सकता। बिना खाए प्राणी की मृत्यु हो जाती है"..... आदि आदि।

इसी प्रकार शारीरिक स्वच्छता तथा सफाई की ओर उनका पूरा-पूरा ध्यान था। उनका ऐसा विचार था कि जबतक शरीर से अपवित्रता दूर न होगी, तब तक देवदूत शरीर में प्रवेश न करेंगे। हरएक धार्मिक एवं सामाजिक उत्सव के मौके पर, वे अपने नाखूनों को काटकर, बालों को बनाकर, नहा-धोकर एवं श्वेत-वस्त्र पहनकर, एकत्र होते थे (अवेस्ता में, ऐसे मौके पर, शुद्धता एवं पवित्रता के लिए, स्नान इत्यादि की कई विधियाँ तथा नियमादि दिये गये हैं) इस प्रकार शारीरिक शुद्धता को वे आध्यात्मिक शुद्धता की पहली सीढ़ी मानते थे।

नैतिक जीवन में भी इनकी 'पवित्रता' की भावना बड़ी ऊँची थी। अवैध यौन सम्बन्ध तथा वेश्यावृत्ति को बड़ी ही घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। इसी प्रकार सहमैथुन (Sodomy) के लिए अवेस्ता में यह कहा गया है कि, यह एक ऐसा पाप है, जिसे कभी धोया नहीं जा सकता। अतः इस पाप के लिए माफी नहीं दी जा सकती।

समाज में बहु-विवाह एवं रखैल रखने की प्रथा (concubinage) प्रचलित थी। परन्तु अविवाहित पुरुष एवं स्त्रियों को किसी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं दिया जाता था। विवाहित नर-नारी को आदर की दृष्टि से देखा जाता था। अवेस्ता में विवाहित जीवन एवं पारिवारिक जीवन को सर्वोत्तम तथा आदर्शमय बताया गया है। जरस्थुत्र अहुर-मज्द से प्रश्न करता है, "हे विश्व-स्रष्टा तथा पवित्र देव, विश्व में कौन सा दूसरा स्थान है, जहाँ, पर लोग सुखी दिखाई पड़ते हैं ?" अहुर-मज्द उत्तर देता है, **"यह वह स्थान है, जहाँ धर्म-विश्वासी, अपना गृह-निर्माण कर उसमें पुरोहित, मवेशी, स्त्री, बच्चे, दुधारू जानवर आदि का पालन करता है और जहाँ इनकी तथा अग्नि की श्रीवृद्धि होती रहती है।"**

("Oh Maker of the material world," Zarasthustra asks Ahur-Mazda, "thou Holy One, which is the second place where the earth feels most happy ?" And Ahura-Mazda answers him— It is the place whereon one of the faithful erects a house with a priest within, with cattle, with a wife, with children, and good herbs within and wherein afterwards the cattle continue to thrive, the wife to thrive, the child to thrive, the fire to thrive and every blessings of life to thrive."

Our Oriental Heritage, p. 374 Hindi Tr. by the author himself.)

गृहपालित जानवरों में सबसे अधिक महत्व कुत्ते को दिया जाता था। कुत्ता

परिवार का अभिन्न अंग माना जाता था। महाभारत में भी, महाप्रस्थान के समय, युधिष्ठिरादि पाँच-पांडवों का साथी एक कुत्ता ही था जिसे धर्मराज का ही एक रूप कहा गया है। यूनान तथा रोम में भी कुत्तों का विशेष आदर होता था। यूरोप में तथा विश्व के भिन्न भागों में अब भी कुत्तों का विशेष आदर होता है एवं वह परिवार का एक मुख्य सदस्य माना जाता है। कुत्ते के कई गुणों के कारण ही, आज भी, वह मानव-जाति का अभिन्न मित्र बना हुआ है। कुत्ते को बहुत गरम खाना या खराब खानादेनेवाले के लिए, आवेस्ता में कठिन दंड विधान का आदेश था। मैथुन-रत या जोड़ा खाने वाली कुतिया को मारने पर १४,००० बेंत (कोड़े) लगाए जाते थे। बैल की उत्पादन-शक्ति के कारण उसकी बड़ी श्रद्धा की जाती थी और गाय के लिए प्रार्थना तथा बलिदान किये जाते थे।

अन्यान्य गृहपालित जानवरों तथा चिड़ियों में मुर्गा एवं ऊदबिलाव की विशेष रूप से रखवाली होती थी। ऊदबिलाव के मारने वाले को १०,००० बेंत लगाने का नियम था।

विवाह के नियम एवं समाज में स्त्रियों का स्थान

लड़के तथा लड़कियों के वयस्क होने पर उनका विवाह पितामाता कर देते थे। आश्चर्य की बात यह है कि उस समय फारस में, भाई-बहिन, पिता-पुत्री, एवं माता तथा पुत्र में भी विवाह होते थे। बहिन से विवाह करने का रिवाज प्राचीन मिस्र में भी था। अधिकतर धनियों तथा कुलीनों में रखैल रखने की प्रथा थी, यहाँ तक कि कुलीन वर्ग के लोग उनको अपने साथ युद्ध में भी ले जाते थे। सम्राटों के हरम में रखैलों की संख्या कभी-कभी ३२९ से ३६० तक पहुँच जाती थी।

ज़रस्थुत्र के समय, समाज में स्त्रियों का स्थान बड़ा ऊँचा था। परिवार में स्त्री का स्थान कितना महत्वपूर्ण था, यह हम ऊपर देख चुके हैं। उस समय स्त्रियाँ, खुलेआम (पर्दे के बिना) घूम-फिर सकतीं, सम्पत्ति की मालकिन होतीं, और अपने पति की ओर से, हरएक प्रकार के कार्यों को स्वयं कर सकतीं तथा संचालित कर सकती थीं। वे अपने पति के नाम से लिखा-पढ़ी भी कर सकती थीं।

डेरियस महान् के पश्चात् समाज में स्त्रियों का स्थान धीरे-धीरे भिन्न हो गया। धार्मिक एवं कुलीन वर्गों की स्त्रियों में परदे की प्रथा चल पड़ी। बाहर जाते समय, चारों ओर परदे से ढकी हुई पालकी में उन्हें जाना पड़ता था। खुले-आम, पुरुषों से मिलने-जुलने की स्वतंत्रता बन्द हो गयी। विवाहित स्त्रियों का अपने पिता या भाई से भी मिलना निषिद्ध हो गया। सम्राटों

के शिलालेख या महलों में, किसी स्त्री का नाम या चित्र नहीं दिखायी पड़ता है। कुलीन वर्गों की स्त्रियों में अधिक स्वतंत्रता तो रखैलों को थी। हाँ, राजदरबार में, राज-माता या राजमहिषी को पर्याप्त अधिकार प्राप्त था एवं दरबारों के षड्यन्त्रों में वे कभी-कभी हिजड़ों को भी मात कर देती थीं।

तत्कालीन फारस के समाज में बच्चे वाले व्यक्ति को श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता था—यद्यपि लड़कियों से अधिक लड़के की कामना लोग करते थे। पुत्र उत्पन्न होने से दो लाभ होते थे—एक तो वे परिवार के सहायक होते थे, फिर युद्ध के समय सैनिक रूप में वे राष्ट्र की सेवा कर सकते थे। अनेक पुत्रों के पिता को प्रति वर्ष सम्राट की ओर से पुरस्कार प्राप्त होता था। इस प्रकार विवाह एवं सन्तान दोनों को ही सामाजिक एवं राष्ट्रीय आवश्यकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण समझा जाता था। फारस को निरंतर संघर्ष में लिप्त रहना पड़ता था ; उसके लिए उसे निरंतर जन-बल की आवश्यकता प्रतीत होती थी—अतः सन्तानोत्पादन करने वाले को राज्य की ओर से प्रोत्साहन दिया जाता था और यह तभी सम्भव था जब अधिक से अधिक लोग विवाह करें। अतः समाज में क्वारी कन्याएँ या अविवाहित पुरुषों को अवांछित एवं अनावश्यक समझा जाता था। इन्हीं कारणों से तानाशाह हिटलर ने भी जर्मनी में विवाह को अनिवार्य कर दिया था, ताकि दीर्घकालीन युद्ध के लिए उसे सैनिकों की कमी न रहे। प्राचीन वैदिक आर्य भी जन-वृद्धि के लिए इन्द्र की स्तुति करते थे।

चूँकि विवाह तथा सन्तानोत्पादन को राष्ट्र की ओर से आवश्यक समझा जाता था, अतः गर्भपात करना या बच्चों को नष्ट करना, बहुत भारी अपराध समझा जाता था। गर्भपात के लिए मृत्युदंड निश्चित था।

शिक्षा तथा स्कूल

बच्चे ७ वर्ष तक अपने पिता-माता के संरक्षण में रहते थे, पश्चात् वे स्कूल भेजे जाते थे। उस समय फारस में, मन्दिर या पुरोहित का घर ही स्कूल होता था और शिक्षा का विषय था. अवेस्ता एवं उस पर लिखे गये भाष्य, धर्म, कानून तथा औषधि। विद्याध्ययन की रीति थी—सुनकर उसे याद करना (memory by Note)—जिस प्रकार प्राचीन आर्य सन्तान गुरु-गृह में जाकर वेद, उपनिषद (श्रुति-स्मृति) आदि का अध्ययन करते थे। शिक्षागृह, बाजारों से दूर होते थे, ताकि बाजार एवं शहरी वातावरण का कुप्रभाव बच्चों पर न पड़े।

शिक्षा अधिकतर कुलीन वर्ग के बच्चों को ही दी जाती थी और वे २४ वर्ष तक उच्च शिक्षा प्राप्त करने के अधिकारी थे। इस प्रकार उच्च शिक्षा

देहे वाले स्कूलों में, छात्रों को बड़ा कठिन जीवन बिताना पड़ता था। युद्ध-शिक्षा में सबको पारंगत होना पड़ता था। कुछ तो राज्य-शासन एवं उच्च सरकारी पद सम्बन्धी शिक्षा भी प्राप्त करते थे। इन विद्यार्थियों को (यद्यपि वे कुलीन वर्ग के थे) प्रतिदिन, बहुत सुबह, उठना पड़ता था। पश्चात् काफी दूर तक दौड़ना, घोड़ों पर तेजी से दौड़ना, तेज धूप या जाड़े में लम्बा रास्ता तै करना, बिना कपड़े या हथियार भिगोये-बड़ी-बड़ी नदियों को पार करना, रूखे-सूखे भोजन पर जीवन निर्वाह करना, एवं हर एक प्रकार से ऋतु परिवर्तन (Change of Climate) या ऋतुओं की कठिनाइयों को सहने का अभ्यास करना पड़ता था। प्राचीन स्पार्टा में भी इस प्रकार की कठोर सैनिक शिक्षा प्रत्येक नागरिक के लिए अनिवार्य थी। और सैनिक राष्ट्रों (Military States) के लिए यह परमावश्यक समझा जाता था और आज भी समझा जाता है।

कुलीन-वर्ग के अलावा, अन्यान्य श्रेणियों के बच्चों के लिए शिक्षा-विधि दूसरे ढंग की थी। उन्हें पुस्तकादि नहीं पढ़ायी जाती थी। उन्हें केवल तीन चीज सिखाई जाती थी—घुड़सवारी करना, तीर-धनुष चलाना तथा सत्य बोलना। ये बच्चे केवल साधारण सैनिक ही बन सकते थे अतः उनके लिए उपर्युक्त शिक्षा-विधान की व्यवस्था थी।

विज्ञान, औषधि, साहित्य एवं कला की उन्नति

साहित्य या विज्ञान की कोई विशेष उन्नति फारस में न हो सकी। वस्तुतः फारसीयों ने इस ओर कभी विशेष ध्यान ही नहीं दिया। विज्ञान-सम्बन्धी विषयों के लिए वे बैबिलोनिया वालों पर निर्भर करते थे। साहित्य-सृजन के लिए जो अध्ययन एवं गवेषणा की आवश्यकता होती है, उतना समय वे नष्ट करने के लिए तैयार न थे। इससे कहीं अधिक आनन्द उन्हें गप लड़ाने में आता था। हाँ, कुछ कविता-प्रेमी वे अवश्य थे परन्तु कविता-रचना उन्होंने भिन्न श्रेणी के व्यक्तियों के हाथ छोड़ दी। उनका अधिक समय तथा ध्यान व्यतीत होता था, धर्म, राजनीति, राज्य-शासन एवं रण-कौशल की उन्नति में।

रोगियों के उपचार एवं औषधि देने का काम पहले पुरोहितों के ही हाथों में था जो औषधि से अधिक मन्त्र-तन्त्र पर विश्वास करते थे। परन्तु क्रमशः औषधि-शास्त्र (Medicine) की उन्नति होने लगी एवं सम्राट जारक्सस द्वितीय के समय डाक्टर एवं वैद्य तथा शस्त्रोपचारियों (surgeons) की निर्दिष्ट समितियाँ (guilds) बन गयीं। डाक्टरों की फीस कानून द्वारा निर्धारित हो गयी। नवीन डाक्टरों के लिए यह आवश्यक था कि वे

२/३ वर्ष पर्यन्त उम्मेदवारी (apprenticeship) करें एवं अविश्वासियों (यानी जरस्थुत्री धर्म को न मानने वालों) एवं विदेशियों पर अपनी चिकित्सा विद्या का प्रयोग करें। इस विधि (Method) का अर्थ केवल यही था कि नवीन डाक्टर चूँकि अनुभवी नहीं होता है, अत. अगर उसकी चिकित्सा कराते हुए किसी विदेशी की मृत्यु भी हो जाय, तो राष्ट्र के किसी नागरिक को तो कोई नुकसान नहीं पहुँचेगा। अवेस्ता में, अहुर-मज्द ने स्वयं, इस प्रकार के चिकित्सा-विधान को प्रयोग में लाने का आदेश दिया है। इसके अनुसार, नवीन चिकित्सक को, दैव-पूजने वालों पर (जो अहुर-मज्द के विरोधी हैं) अपनी विद्या का प्रयोग तीन बार करना चाहिए। परन्तु अगर वह दैव-पूजक पर अपनी विद्या का प्रयोग करते हुए, तीनों बार असफल हो जाय, तो उसे कभी भी अहुर-मज्द के पूजकों की चिकित्सा न करने दिया जाय। परन्तु अगर वह तीनों बार सफल हो, तो समझना चाहिए कि अवश्य ही वह अहुर-मज्द के पूजकों की चिकित्सा करने योग्य है।

कला-कौशल, आभूषण आदि की उन्नति

पारसी लोग काफी शौकीन थे और सुन्दर मकानों में रहते थे जिनमें प्रमोद-उद्यान या बगीचे अवश्य होते थे। इनके टेबुलों पर सोने-चाँदी मढ़े होते थे, पलंग पर सुदृश्य एवं मनोरम चादरें होती थीं, फर्शों पर नाना प्रकार की रंग-बिरंगी कालीनें बिछी होती थीं। पीने के लिए सोने का पात्र प्रयोग करते थे एवं अपने टेबुल या अलमारियों को सजाने के लिए, विदेशों से मंगाये हुए फूल-दान (flower vases) रखते थे। नृत्य-गीतों से इन्हें काफी प्रेम था और संगीत के लिए, सितार, बाँसुरी, ढोलक, झूमझूमि आदि का प्रयोग करते थे। आभूषणों का प्रयोग स्त्री-पुरुष दोनों करते थे, जिनमें मुख्य ये थे—टायरा (मुकुट की भाँति सिर पर पहना जाता था) कर्णफूल, पैजनी या पायजेब (anklets), बाजूबन्द, एवं कभी-कभी सोने के जूते। मोती, गोमेद, हरा पत्थर (emerald) तथा नीलम आदि कीमती पत्थर, बाहर से मँगाये जाते थे, परन्तु टर्कोय (Turquois) पत्थर, फारस की खानों से ही प्राप्त होता था। इसी पत्थर से कुलीन लोग अपनी मुद्रक-अंगूठी (signet-ring) भी बनवाते थे। इन बहुमूल्य पत्थरों से कभी-कभी कल्पित दैत्य-दानव की भद्दी आकृतियों के अलंकार बनाकर भी पहने जाते थे। सम्राट स्वयं, स्वर्ण-दंड एवं छतरी से सुशोभित, स्वर्ण-सिंहासन पर शोभायमान होते थे।

ईरानी वास्तुकला, महल एवं समाधि तथा शिला-चित्र

वास्तुकला के क्षेत्र में ईरानियों ने अपनी मौलिकता अवश्य प्रदर्शित की यद्यपि सिकन्दर के आक्रमण के कारण कई महल बिल्कुल ही ध्वंस हो गये।

ईरानी सम्राटों में साईरस, डेरियस प्रथम, जारक्सस प्रथम, आर्टा जारक्सस प्रथम और द्वितीय के बनवाये हुए महल अधिक प्रसिद्ध हैं। इनका वर्णन नीचे दिया जाता है :—

पसरगडी (Pasargadae) के खंडहर

पसरगडी, फारस की सबसे प्राचीन राजधानी थी। यहीं पर सम्राट साईरस की संगमरमर की समाधि बनी हुई है। सात चबूतरों के ऊपर बना हुआ यह भवन ३५ फुट ऊँचा, १४० फुट लम्बा, और ११६ फुट चौड़ा है। इस भवन के बड़े-बड़े प्रसार खंड किसी समय धातु के छोटे टुकड़ों (metal clamps) से जुड़े हुए थे, परन्तु बाद में आनेवाली असभ्य जातियों ने इन टुकड़ों को निकाल लिया। कहा जाता है कि इसका निर्माता एक यूनानी कारीगर ही था। इसका प्रवेश-द्वार बहुत ही सँकरा है। किसी समय इसके चारों ओर स्तंभ थे जिसके अवशेष अब भी कहीं-कहीं दिखाई पड़ते हैं। बहुत दिनों तक फारस के लोग इसे, 'मशशद-ई-महार-ई-सुलेमान' या 'सुलेमान के मां की कब्र' के नाम से जानते थे। (देखिए, History of Persia, by P. Sykes, p. 179).

साईरस की इसी समाधि के सन्निकट, चूना-पत्थर का बना हुआ एक स्तंभ है, जिस पर एक पंखवाली मूर्ति बनी है और यह शिलालेख खुदा हुआ है, "मैं हूँ सम्राट साईरस, हुख्मनीशी"। इस मूर्ति का चेहरा, बिल्कुल आर्यों के जैसा है, परन्तु सिर के मुकुट से मिस्री कला, एवं पोशाक तथा पंख से असीरियन कला झलकती है। श्री पी० साईक्स, इसे, 'सम्राट साईरस की पंखवाली मूर्ति' मानते हैं (History of Persia, p. 179.)

तीसरा खंडहर, एक चबूतरे का है (जिसका वर्णन श्री साईक्स ने अपनी पुस्तक में दिया है) जो "तख्ते-सुलेमान" के नाम से प्रसिद्ध है। इस चबूतरे की लम्बाई ३०० फुट है और यह एक छोटी सी पहाड़ी पर बना हुआ है। सम्भव है कि इसे भी सम्राट साईरस ने बनवाया हो, यद्यपि श्री साईक्स ने इसके बारे में कुछ और अधिक नहीं बताया है।

पसरगडी के ये खंडहर, पोलवर-घाटी में पाये गये हैं।

पार्सीपोलिस में प्राप्त महलों के खंडहर

पार्सीपोलिस शहर, मर्वदश्त की घाटी में बसा हुआ है। ईरान के स्वर्ण-युग में, साम्राज्य की राजधानी होने के कारण, यहाँ पर, डेरियस महान् से लेकर सभी सम्राटों ने अपने-अपने महल बनवाये थे। इन सभी महलों का निर्माण एक ऊँचे चबूतरे पर किया गया है ताकि दूर से ही वे दृष्टिगोचर हों।

इस चबूतरे पर चढ़ने के लिए, सुमेरीय ज़िगुरात के अनुरूप सीढ़ियाँ बनायी गयी थीं। इन सीढ़ियों की चौड़ाई इतनी अधिक थी कि दस घुड़सवार, बड़ी आसानी से इन सीढ़ियों पर चढ़ सकते थे। इस विशाल चबूतरे की ऊँचाई २० से ५० फुट है, एवं लम्बाई १५०० फुट तथा चौड़ाई १००० फुट है। पसरगडी में प्राप्त चबूतरे की भाँति यह भी चूना-पत्थर का बना हुआ है जो पास ही खोद कर निकाला गया है। इसकी निर्माण-कला, असीरियन कला की भाँति है। दोनों ओर की सीढ़ियों के मिलने के शीर्ष-स्थान पर, प्रवेश द्वार बनाया गया हैं जिसके दोनों ओर, मनुष्य के सिर तथा पंखवाले बैलों की मूर्तियाँ पाई जाती हैं। इन बैलों की मूर्तियाँ निकृष्ट असीरियन कला के अनुरूप हैं।

इन बैलों के ऊपर एक त्रिभाषीय शिलालेख है जिसमें यह लिखा हुआ है, **"मैं जारक्सस, महान् सम्राट, राजाओं का राजा, कई भाषा-भाषी देशों का शासक, महान् विश्व का सम्राट, डेरियस का पुत्र, सम्राट, हुख्मनीशी (वंश का) हूँ"**—

("I am Xerxes, the Great King, the King of Kings, the King of many tongued countries, the King of the great universe, the son of Darius, the King, the Achaemenian." See History of Persia, Vol. I, by P. Sykes, p. 181)

आगे, उसी शिलालेख में लिखा हुआ है, "जारक्सस महान् सम्राट कहता है कि "ओर्मुज्द (अहुर-मज्दा) की कृपा से मैंने यह प्रवेश-द्वार बनाया है, जिसमें सभी प्रदेश दिखाए गये हैं।"

सम्राट जारक्सस का बड़ा महल, या 'चेहिल-मीनार' इसी प्रवेश-द्वार की दाहिनी ओर बना है। इस महल की ओर जानेवाली सीढ़ियों की दोनों ओर सुन्दर अलंकृत पैरापेट (parapet) दिखलायी पड़ते हैं, जिनपर बहुत ही सुन्दर उत्कीर्ण-मूर्तियाँ बनायी गयी हैं। इस महल के, ७२ संगमरमर-स्तंभों में, केवल १३ अब बचे हैं। इनकी बनावट बहुत ही उत्तम है। ये स्तंभ, यूनान या मिस्र में पाये जाने वाले स्तंभों से पतले हैं, जिनके निम्न-भाग घंटे के आकार के हैं और जिन पर उल्टी पत्तियाँ रखी हुई प्रतीत होती हैं। (belts overlaid with inverted leaves) सम्राट अशोक के प्रसिद्ध सिंह स्तंभ का निम्न भाग भी इसी शक्ल का है, जिसे भारतीय विद्वान कमल-फूल की आकृति मानते हैं। इन खंभों के शीर्ष-भाग पर दो बैल या यूनिकार्न के अगले हिस्से, कंधे से कंधे मिलाकर बनाये गये हैं जिनकी गर्दन पर, संभवतः महल के शहतीर (crossbeams) सहारे के लिए रक्खे जाते थे। ये शहतीर निश्चय ही लकड़ी के थे, क्योंकि ये स्तंभ इतने दृढ़ नहीं हैं कि पत्थर के शहतीर का भार उठा सकें। खिड़कियों के फ्रेम तथा दरवाजे के जैम्ब (door-jamb) अलंकृत एवं चमकीले काले पत्थर के बने हुए थे। इसकी दीवारें ईंटों की बनी हुई थीं,

जिनको रंग-बिरंगी टाइलों के द्वारा बहुत ही सुन्दर बनाया गया था, जिन पर फूल तथा पशुओं की आकृतियाँ बनी हुई थीं। इस 'चेहिल-मीनार' या हाल के सभी खंभे या सीढ़ियाँ, उत्कृष्ट चूना-पत्थर या सख्त नीले संगमरमर पत्थर के बनी हुई थी। इसकी छत देवदारु की लकड़ी की थी जो सिकन्दर के आक्रमण के समय जलकर राख हो गयी। इस हाल का सम्पूर्ण क्षेत्रफल पोर्टिको समेत १५० वर्ग-फुट है।

सम्राट डेरियस का महल इसके बाद दिखाई पड़ता है। यह सम्राट जारक्सस की 'चेहिल मीनार' से छोटी आकृति का है और संभवतः केवल इसमें सम्राट के रहने के ही कमरे बने थे। चेहिल मीनार के पीछे (पूर्व में) 'सौ खंभोंवाला हाल' है, जो संभवतः सम्राट डेरियस का दरबारे आम (Hall of audience) था। सौ खंभे इसकी छत को सहारा दिए हुए शोभायमान थे, तभी इसका नाम "सौ खंभों वाला हाल" (Hall of hundred coloumns) पड़ा। सिकन्दर महान ने विजय-प्राप्ति के बाद इसी हाल में बैठकर महा भोज किया था। खुदाई के समय देवदारु लकड़ी की राख का ढेर यहाँ प्राप्त हुआ है।

इस हाल के उत्तर की ओर एक पोर्टिको (यानी द्वार-प्रकोष्ठ) है जिसमें मनुष्य-मूर्ति बनी हुई है। यहाँ से दो प्रवेश-द्वार हाल की ओर जाते हैं। यहाँ पर प्राप्त उत्कीर्ण मूर्तियाँ, ईरानी-कला के सर्वोत्कृष्ट नमूने हैं। इनमें से एक में सिंहासन पर बैठे हुए सम्राट डेरियस दिखाये गये हैं। इस सिंहासन को उनकी पंक्तिबद्ध प्रजा ऊपर को उठाये हुए दिखलायी पड़ती है।

पार्सीपोलिस में प्राप्त समाधियाँ

यहाँ पर प्राप्त समाधियाँ, महलों से दूर, पश्चिम में स्थित हैं। इन पर मिस्री कला की छाप, स्पष्ट दिखायी पड़ती है। इनमें, सम्राट डेरियस की समाधि मुख्य है, जिसके भीतर की लम्बाई-चौड़ाई ६० × २० फुट है। सम्राट तथा उसके परिवार के सदस्यों की समाधि के लिए खोदे हुए गड्ढों को ढंकने के वास्ते पत्थर के जो ढक्कन (Stone lids) बनाये गये थे, उनमें से कुछ-कुछ अब भी अवशेष हैं। इस समाधि में ९ मृतदेहों को रखने की व्यवस्था की गयी थी।

सम्राट डेरियस की समाधि पर तीन भाषाओं में खुदा हुआ (Trilingual inscription) शिलालेख पाया गया है। यह एक परम आश्चर्य की बात है कि धरातल से इतनी ऊँचाई पर किस प्रकार शिल्पियों ने ये समाधियाँ बनाईं या इन शिलालेखों को खोदा।

इन खंडहरों में प्राचीन अग्निवेदियों के खंडहर भी पाये जाते हैं जो

पत्थर काटकर बनाये गये थे। प्राचीन ईरानी अग्नि-पूजक थे और अवश्य ही महल निर्माण करते या समाधिस्थ होते समय अग्नि की पूजा की जाती होगी और तभी ये अग्नि-वेदिकाएँ बनायी गयी थीं।

सुसा में प्राप्त आर्य जारक्सस प्रथम व द्वितीय के महल

इन दोनों सम्राटों ने ईंट के महल बनवाये थे जिनकी अब केवल नींव ही दिखलायी पड़ती है। इन महलों को चमकीले टाइलों के द्वारा सुसज्जित किया गया था। इन महलों में, सम्राट् आर्य जारक्सस द्वितीय का, सुसा में बनाया हुआ महल अधिक सुन्दर है, जहाँ पर श्री डिउलफाय (Dieulfoy) ने दो अत्युत्तम चित्र, ईटों पर बने हुए, (Frieze) प्राप्त किये जिनकी तुलना, कला की दृष्टि से, विश्व में अनोखी है। इनमें से एक तो "Frieze of the Achers" नामी प्रसिद्ध चित्र हैं, जो ५ फुट ऊँचा है एवं जिसमें संभवतः सम्राट के अंगरक्षी "अमर-सैनिक" (Faithful immortals) उत्कीर्ण रेखाचित्र (relief) द्वारा दिखाये गये हैं। इन धनुषधारी सैनिकों (bowmen) की पोशाक, युद्ध से अधिक, दरबार के लिए उपयुक्त प्रतीत होती है। इनकी पोशाक चमकीली है, दाढ़ी और बाल घुँघराले हैं. और हाथों में सोने की मूँठ वाला बल्लम सुशोभित हैं। इन सैनिकों के चेहरे का रंग भिन्न-भिन्न प्रकार (यानी काला अथवा गोरा) का है, और ये सब एक पंक्ति में खड़े हैं।

दूसरा रेखा-चित्र "Frieze of Luris" के नाम से प्रसिद्ध है, जिसमें मुँह खोले हुए, शिकार के लिए उद्यत, सिंहों के रंगीन चित्र बनाये गये हैं। ये दोनों ही चित्र इस समय पेरिस-संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

सील मोहरों की खुदाई के काम (Glyptic art) में पारसियों ने अद्भुत् चमत्कार दिखाया। वस्तुतः यह कला, पारसियों की निजी कला है, और अब भी, फारस में सील-मोहरों का प्रयोग प्रचलित रहने से, इस कला का उत्कर्ष हो रहा है।

परन्तु इस कला (Glyptie art) के अलावा, वास्तुकला, उत्कीर्ण-रेखा-चित्रों का निर्माण एवं रंगीन टाइलों का प्रयोग या ईंटों पर रंगीन चित्र निर्माण-कला, तथा विशाल मूर्ति निर्माण-कला, इन सभी को पारसी कलाकारों ने विदेशियों से ग्रहण किया; जैसे छोटे एवं पतले प्रस्तर स्तंभ, असीरियन स्तंभ से, विशाल-प्रस्तर-स्तंभ एवं उत्कीर्ण रेखा-चित्र मिश्र से, स्तंभ-शीर्ष पर जानवरों की मूर्तियाँ नीनेव तथा बैबिलोन से, एवं रंगीन ईंटों का प्रयोग या इंटों पर रंगीन चित्रों का निर्माण, बैबिलोनिया वालों से ग्रहण किये गये हैं। सन्देह नहीं परन्तु उनकी नवीनता केवल इस बात में है कि इन सबों को

उन्होंने इतने सुन्दर तथा चमत्कारिक ढंग से मिलाकर अपना लिया कि वस्तुतः उनकी कला में कहीं असमानता नहीं दिखाई पड़ती। यह कहना अनुचित न होगा कि फारसी वास्तु-कला का गंभीर प्रभाव, परवर्ती यूनानी एवं भारतीय कला पर भी पड़ा, और इस सम्बन्ध में, सम्राट अशोक के सिंह-स्तंभ का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। प्राचीन पाटलिपुत्र में प्राप्त मौर्य-सम्राटों के राजप्रासाद (जिसे सम्राट अशोक ने ही बनवाया था)–निर्माण में निश्चय ही पारसी-कलाकारों का हाथ था, जैसा कि चीनी-यात्री फाहियान के वर्णन से प्रतीत होता है।

हुख्मनीषी सम्राटों के समय सोने की वस्तुओं को बनाने की कला भी अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गयी थी। इस समय की कुछ स्वर्ण-वस्तुओं का आविष्कार ओक्सास-नदी का किनारा टूट जाने से हुआ और अब वे ब्रिटिश म्यूजियम में संरक्षित है। इनमें एक, प्राचीन पारस रथी का नमूना (या model) है जो कला की दृष्टि से अत्युत्तम माना गया है। एक और अलंकार प्राप्त हुआ है, जिस पर नीलम (lapis lazuli) से मीने का काम किया गया है। तीसरा पदार्थ एक छोटा सा चाँदी का चक्र (Silver disc) है, जो संभवतः किसी ढाल के सामने का अग्रभाग है। इस पर सोने की हल्की चादरें मढ़ी गयी हैं और इसके बीच में ५ छिद्र हैं। चारों ओर किनारे तीन शिकारियों के चित्र हैं जो क्रमशः हिरण, आईबेक्स और खरगोश का शिकार करते हुए दिखाए गये हैं। चौथी वस्तु एक सोने का पात्र है, जिसकी मूँठ पर सिंह का मस्तक बना है। यह वस्तु हुख्मनीषी सुनारों की कलाकृति का एक परम सुन्दर उदाहरण है।

सोने और चाँदी की सिक्कों कीं निर्माण-कला का उल्लेख, डेरियस महान् के साथ किया गया है अतः उसकी पुनरुक्ति यहाँ निरर्थक है।

अध्याय | ६

सम्राट जारक्सस प्रथम एवं उनके उत्तराधिकारी : विशाल पारसी साम्राज्य के पतन के कारण

सम्राट डेरियस महान् की मृत्यु के बाद (४८५ ई० पू०) जारक्सस प्रथम, फारस की गद्दी पर बैठा। गद्दी पर बैठते ही उसने अपना ध्यान यूनान-विजय की ओर दिया। परन्तु इसके पहले कि, सम्राट जारक्सस के समय फारस और यूनान के बीच जो लड़ाइयाँ हुईं, उनके नतीजे और दोनों देशों पर उनके प्रभाव का वर्णन दिय जाय यूनान तथा यूनानियों के बारे में कुछ बताना आवश्यक है।

यूनान-देश अथवा हेलास

प्राचीन यूनान का दूसरा नाम है हेलास (Hellas)। इस देश का रुख पूरब की ओर है, और समुद्र बहुत दूर तक इसमें प्रवेश कर गया है। जलवायु भी यहाँ का समशीतोष्ण है। परिणामस्वरूप, ऐजियन-सागर के तट पर, प्राचीन काल से ही छोटे-छोटे नगर-राज्य बस गये थे। छोटे-छोटे द्वीपों में विभाजित होने के कारण यहाँ के लोग प्राचीन काल से ही कुशल नाविक हैं। अपितु यहाँ की वायु की दिशा भी सदैव जहाजरानी के लिए अनुकूल रहती है। फिर, एशिया महाद्वीप की किसी शक्ति के आक्रमण का भय इन्हें न था, परन्तु मिश्र इस देश के बहुत ही निकट स्थित होने के कारण, प्राचीन-यूनानियों को जल-युद्ध के लिए सदैव प्रस्तुत रहना पड़ता था। इन संकरी समुद्री रास्तों में बड़े-बड़े जलयान चलाना संभव न था, अतः यूनानियों के जल-यान छोटे-छोटे होते थे जो इन तंग समुद्रों में आसानी से घूम-फिर सकते थे। सम्राट जारक्सस के विरुद्ध जल-युद्ध में, यूनानियों ने इन बातों का किस प्रकार पूरा-पूरा लाभ उठाया, इसे हम आगे देखेंगे।

परन्तु इन सुविधाओं के होते हुए भी, 'हेलास' छोटे-छोटे नगर-राज्यों में विभक्त था, जो सदैव आपस में संघर्ष करते रहते थे। इस प्रकार उनमें

प्रतिस्पर्धा, हिंसा तथा द्वेष की भावना प्रबल हो गयी थी। फारस के विरुद्ध युद्धों में ऐथेन्स और स्पार्टा की इस प्रकार प्रतिस्पर्धामूलक आपसी झगड़े कभी-कभी यूनानियों को काफी नुकसान पहुँचाते रहे। प्रत्येक नगर राज्य की शासन-प्रणाली एक दूसरे से भिन्न थी। इस प्रकार राजनीतिक इकाइयों में विभक्त रहने के कारण उनमें राअनैतिक या राष्ट्रीय एकता का—सिकन्दर महान् के आगमन के पूर्व तक सर्वथा अभाव था।

यूनान पर आर्यों का आक्रमण

यूनान के प्राचीन निवासियों को 'पेलसगी' (Pelasgi) कहा जाता है। इनका बाल काला था और ये न तो सेमेटिक, और न तो आर्य जाति के थे। इनकी सभ्यता के चिह्न मिसीनी (Mycenee) एवं नोसस (Knossos) में पाये गये हैं। (इन्हें भूमध्यसागरीय जाति एवं सभ्यता भी कहा जाता है।)

प्रथम आर्य - दल (जो एकीयन्स–Acheeans कहलाते थे), इण्डो–यूरोपियन आर्यों की ही एक शाखा थी। इन्होंने लगभग २००० ई० पू० यूनान के प्रायद्वीप में उत्तर से प्रवेश किया और यहाँ के प्राचीन निवासियों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया। परन्तु जिस प्रकार भारत में आर्य और द्रविड़ों के संमिश्रण से वर्तमान हिन्दू-सभ्यता का जन्म हुआ, उसी प्रकार प्राचीन यूनानी सभ्यता, यहाँ के प्राचीन निवासी तथा आर्यों के मिलन से उत्पन्न हुई। अपितु आर्यों ने अपनी भाषा में 'पेलसगी' भाषा के कई शब्द भी ग्रहण किये।

एशिया-माईनर के यूनानी उपनिवेश

इण्डो–यूरोपियन आर्यों की दूसरी शाखा 'डोरियन' थी, जिन्होने लगभग १००० ई० पू०, उत्तर से आकर 'हेलास' एवं 'पेलोपोन्निसस' के वृहत भाग पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया और एशिया-माईनर के किनारे-किनारे कई उपनिवेश स्थापित किये। इन्हीं का नाम आगे चलकर 'आयोनियन' पड़ा और ये 'हेलास' के यूनानियों से भी कहीं अधिक शक्तिशाली हो गये। कवि होमर-वर्णित 'ईलियड' काव्य में, 'ट्राय का घेरा', हेलास तथा एशिया-माईनर के यूनानियों के पास्परिक संघर्ष का ही काव्यात्मक वर्णन है। सम्राट साईरस ने लीडिया-विजय के पश्चात् (ऊपर वर्णन आ चुका है) एशिया-माईनर के इन यूनानी उपनिवेशों को भी अपने कब्जे में कर लिया था क्योंकि उसे सर्वदा यह भय बना रहा कि कहीं ये यूनानी नगर-राज्य संघबद्ध होकर उस समय विद्रोह न कर दें जब वह पूर्वी देशों में विजय-अभियान में व्यस्त हो।

पराजित तथा अधिकृत होने के पश्चात् भी एशिया माईनर के ये यूनानी

उपनिवेश, यूनान के नगर राज्यों की सहायता से समय-समय पर विद्रोह करते रहे। अतः ५१२ ई० पू० में सम्राट डेरियस महान् ने, थ्रेस (Thrace) एवं मैसीडोनिया (Macedonia) नगर - राज्यों को जीतकर, फारस की सीमा को उत्तरी-यूनान तक विस्तृत कर दिया। परन्तु तब भी अन्दर-अन्दर आग धधकती रही।

एशिया माईनर के यूनानी नगर-राज्यों का विद्रोह और डेरियस के आक्रमण के कारण तथा परिणाम

लीडिया-सम्राट क्रोसीयस के पराजित होने पर लीडिया की राजधानी सार्डिस में, फारस के सम्राट की ओर से लीडिया के शासन के लिए पारसीक्षत्रप नियुक्त कर दिये गये थे। संभवतः सार्डिस के इन पारसी क्षत्रपों ने भी, 'हेलास' के यूनानियों की पारस्परिक द्वेष एवं प्रतिस्पर्धा से लाभ उठाकर, पारसी-साम्राज्य की विस्तार करने की योजना बनाई हो। और इस कारण, हेलास के यूनानी, फारस के विरुद्ध अस्त्र-धारण करने पर बाध्य हो गये हों।"

दूसरा कारण यह था कि सन् ४९८ ई० पू० में, दो यूनानी शासकों (Tyrants) ने, गुप्त रूप से विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया। इनके नाम क्रमशः ये थे—(हिस्तियस Histiaeus) एवं Aristogoras एरिस्टो-प्रथम शासक को डेरियस ने, राज- धानी सुसा में बुलाकर कैद कर लिया। परन्तु उसने, अपने दामाद एरिस्टोगोरस (जो Miletus का शासक था) के पास एक गुलाम भेजकर, विद्रोह का संदेश, (बड़ी ही चालाकी एवं सावधानी से) भेजवा दिया। एरीस्टोगोरस ने स्पार्टा वालों से मदद माँगी परन्तु व्यर्थ हुआ। परन्तु ऐथेंस वालों ने २० जहाज, तथा ईरीट्रिया वालों ने ५ जहाज देकर सहायता की। इसी क्षुद्र शक्ति से उत्साहित होकर यूनानी (Ioanian) ने एकाएक (४९८ ई० पू०) सार्डिस पर आक्रमण कर दिया। परन्तु सार्डिस के दुर्ग पर वे अधिकार न प्राप्त कर सके, और ईफीसस (Ephesus) के निकट फारसी सेना ने उन्हें बुरी तरह परास्त किया। शीघ्र ही ऐथेंसवाले भी उन्हें धोका देकर, भाग खड़े हुए। परन्तु आयोनियनों के इस विद्रोह ने, एशिया-माइनर के अन्यान्य यूनानी नगर-राज्यों को भी विद्रोह करने के लिए उत्साहित किया और वे फारसी-साम्राज्य से मुक्त होने की तैयारियाँ करने लगे।

एशिया-माइनर के आयोनियन (यूनानी) नगर-राज्यों का दुस्साहस देख कर डेरियस महान् ने उन्हें पूर्णतः दबाने का निश्चय किया। लेड (Lade-island) द्वीप (जो Miletus नगर के पृष्ठभाग में अवस्थित था) के जल युद्ध में (४९४ ई० पू०) यूनानियों के ३५३ जहाजों के बेड़े को पारसियो ने पूर्णतः परास्त कर दिया। शीघ्र ही पारसियों ने मिलेटस नगर

पुर पुनः अधिकार कर लिया और वहाँ के प्रायः सभी पुरुषों की हत्या करवा दी एवं स्त्री और बच्चों को, दजला-नदी के मुहाने पर अम्पे (Ampe) नामक स्थान पर स्थानान्तरित कर दिया। विद्रोह-दमन का ऐसा तरीका असुर-सम्राट, टिगलथ-पिलेसर प्रथम ने आविष्कार किया था।

इस विजय से उत्साहित होकर, डेरियस ने, 'हेलास' (यानी मुख्य यूनान) पर आक्रमण करने की योजना बनाई, क्योंकि उसे विश्वास हो गया कि यूनानियों में न तो एकता है और न वे संघबद्ध हैं।

उधर मुख्य यूनान में भी एशिया-माइनर के यूनानी - विद्रोह के कारण, तैयारियाँ शुरू हो गयीं। ऐथेंसवालों को एक मज़बूत जहाजी बेड़ा निर्माण करने का अवसर मिल गया और थ्रेस तथा मैसिडोनिया फिर से स्वतन्त्र हो गये।

डेरियस ने अपने भांजे मार्दुनियस (Mardonius) को थ्रेस पर अधिकार करने के लिये भेजा। मार्दुनियस ने इस कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न किया परन्तु वह एथेंस और इरीट्रिया को विजय नहीं कर सका।

४९० ई० पू०, पुनः डेरियस ने इन दोनों राज्यों को दबाने के लिए एक सेना भेजी जिनके सेनापति डेटिस तथा आर्टाफारनिस (Datis and Artapharnes) थे। इनका प्रधान उद्देश्य था, एथेन्स पर हिप्पियस (Hippious) का शासन पुनः स्थापित करना (क्योंकि हिप्पियस, फारस का समर्थक एवं एथेन्स का भूतपूर्व शासक था, जिसे एथेन्स वालों ने निकाल दिया था) तथा ईरीट्रिया वालों को दंड देना।

पारसी फौज, आईसेरीयन सागर (Icarian sea) होती हुई, नेक्सोस (Naxos) पहुँची और विजय के बाद लोगों को गुलाम बना लिया। फिर वह यूबोईया (Euboea) की ओर मुड़ी (रास्ते में डेलोस मन्दिर को इन्होंने छोड़ दिया) और ईरीट्रिया पहुँचकर वहाँ के निवासियों को कठिन दंड दिया गया। बहुत से निवासी पहाड़ियों की ओर भाग गये, और जो बन्दी बनाये गये उन्हें ईलम-प्रान्त को भेज दिया गया। एथेन्स वालों ने, वस्तुतः, ईरीट्रिया वालों को इस लड़ाई में कोई सहायता नहीं पहुँचायी।

मराथान का युद्ध—४९० ई० पू०—(Battle of Marathon—490 B.C.)

अब हिप्पियस की सलाह से फारसी फौज मराथान-खाड़ी की ओर रवाना हुई—(यह खाड़ी एथेन्स के उत्तर-पूर्व एटिका में स्थित है) वस्तुतः हिप्पियस की सलाह उचित थी, क्योंकि अब फारसी जहाजी-बेड़े को रुकने का सुरक्षित स्थान प्राप्त हो गया था जहाँ से एक्रोपोलिस (Acropolis) यानी एथेन्स नगर की चहारदीवारी बिल्कुल निकट थी।

एथेन्स वालों ने इस विशाल फारसी फौज का मुकाबला करने के लिए ९ या १० हजार की एक सेना भेजी। एथेन्स वालों को पूरी आशा थी कि स्पार्टा वाले उनकी सहायता के लिए शीघ्र ही युद्धस्थल पर पहुँचेंगे। परन्तु स्पार्टा वालों ने पूर्णिमा के पहले यात्रा नहीं की और एथेन्स वालों को अकेले ही फारसियों से लड़ना पड़ा।

कई दिन तक दोनों फौजें आमने-सामने पड़ी रहीं, क्योंकि एथेन्स वाले अपने से कई गुना फारसी फौज (४० या ५० हजार) का सामना करने से हिचक रहे थे। फिर मिल्टिआडिस (Miltiades) के कहने पर सेनापति पलिमार्क (Palemarch) ने ही प्रथम आक्रमण करने का निश्चय किया। यह महायुद्ध जो 'व्रन की घाटी' (Valley of Vrana) में लड़ा गया, इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है। इस घोर युद्ध में, यूनानियों ने दोनों ओर से आक्रमण करते हुए, विशाल पारसी-फौज को आगे-पीछे घेर लिया और उसके मध्य भाग को छिन्न-भिन्न कर डाला। करीब ६ हजार फारसी फौज इस लड़ाई में काम आई, और एथेन्स वालों में केवल २०० सिपाहियों के प्राण गये। फारसी फौज ने, घुड़सवारों समेत, भागकर जहाजों में शरण ली और फारसी जहाजी बेड़ा उन्हें लेकर तुरन्त चल पड़ा। कहना असंगत न होगा कि इस युद्धमें यूनानियों के पास घुड़सवार न थे।

इस युद्ध से यूनानियों के हौसले बढ़ गये। अब उनका दृढ़ विश्वास हो गया कि केवल मात्र संघबद्ध पैदल सेना (Hoplites) द्वारा वे उस विशाल फारसी फौज को पराजित कर सकते हैं जिसके नाम से उस समय की दुनिया काँपती थी। इसके विपरीत, डेरियस महान् ने इस पराजय को कोई विशेष महत्व नहीं दिया। दुर्भाग्यवश ३६ वर्ष राज्य करने के बाद, ४८५ ई० पू० में, उसकी मृत्यु हो गयी। और वह अपनी आशाओं को पूर्ण न कर सका।

सम्राट जारक्सस (४८५ ई० पू०–४६४ ई० पू०) एवं यूनानियों के साथ उसका संघर्ष

सम्राट जारक्सस, डेरियस महान् की पुत्री अटोसा का पुत्र था, जिसे डेरियस ने मरने के पहले अपना उत्तराधिकारी चुना था। सुगठित शरीर एवं सुन्दर चेहरे के कारण वह अपने समय का बहुत प्रसिद्ध सम्राट हो गया है। वह दुर्बल-चित्त, आलसी एवं चरित्रहीन युवक था। अतः ऐसे व्यक्ति के द्वारा विशाल पारसी-साम्राज्य की प्रतिष्ठा दृढ़ रखना असंभव था।

केवल सम्राट ही नहीं, तत्कालीन पारसी समाज में भी पतन के लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़ने लगे। व्यभिचार में बेहद वृद्धि हो गयी और जहाँ लोग दिन में एक बार भोजन करते थे, वहाँ लोग इतने भोजन-प्रिय हो गये कि दोपहर से

लेकर शाम तक बराबर भोजन ही करते रहतेथे। नाना प्रकार के व्यंजन और तरह-तरह के मांस आदि के द्वारा वे अपनी रसना तृप्त करते रहे। अब उनमें दुस्साहसिक अभियान करने का साहस और प्रवृत्ति नहीं रही।

सम्राट जारक्सस अब भी "महान् सम्राट" (The Great King) और पारसी-साम्राज्य का अधीश्वर था। केवल मराथान की पराजय से उसकी प्रतिष्ठा एवं मर्यादा को कोई विशेष हानि न हुई थी। अब भी उसकी विशाल सेना एवं "अमर सैनिकों" (Immortals) से एशियावासी और यूनानी घबड़ाते थे।

गद्दी पर बैठते ही उसने मिस्र के विद्रोह (४८४ ई० पू०) एवं बैबिलोन के विद्रोह (४८३ ई० पू०) को पूर्णतः दबा दिया। तत्पश्चात् उसने यूनान पर आक्रमण करने की तैयारी आरम्भ कर दी।

इस युद्ध में, फारसी-साम्राज्य के अन्तर्गत सभी जातियों ने भाग लिया। यह पूरी फौज, जिसके अग्रभाग में पारसी और मिडिस सेना थी, उस वर्ष की शरद ऋतु में, केफाडोसिया होती हुई, लीडिया पहुँची और जाड़ा वहीं बिताया। इस फौज की कुल संख्या, ऐतिहासिक हेरोडौटस के अनुसार, निम्नलिखित थी–

(१) पैदल	.. १७,००,०००	
(२) घुड़सवार तथा रथ	१,००,०००	(mounted troops)
(३) नाविक एवं मल्लाह	५,१०,०००	
कुल	२३,१०,०००	

(Adopted from History ef Persia, by P. Sykes p. 197).

हेरोडोटस ने, क्रमानुसार, सेना में सम्मिलित पैदल सैनिकों में निम्नलिखित जातियों का उल्लेख किया है :—

(१) पारसी और मिडिस = अस्त्र-शस्त्र = बर्छी, धनुष, तलवार
(२) किसियन और हिरसेनियन = ,, ,, ,,
(३) असीरियन = सिर पर काँसे के शिरस्त्राण (bronze helmet)
(४) बैक्ट्रियन, एरिअन (Arians), पार्थियन आदि = भाले और बल्लम
(५) शक = कुल्हाड़ी—(इनके सिर पर कोनदार टोपी थी)
(६) भारतीय = तीर-धनुष लिये सूती कोट पहने थे
(७) (एशियायी भूखंड के) ईथीओपिया के निवासी = इनके सिर पर घोड़े के सिर की भाँति बना हुआ शिरस्त्राण था।

(८) (अफ्रीकी भूखंड के) ईथीओपिया के निवासी = इनका शरीर रूँगा हुआ था। और इनके अस्त्र-शस्त्र थे लम्बे धनुष और पत्थर की नोक वाले तीर।

समस्त पैदल सैन्य, संख्यानुसार विभाजित थी, और हर विभाग का प्रधान सेनापति, एक फारसी सेनानायक था जो अपने विभागीय सैन्य-संचालन के लिए उत्तरदायी था।

अब आरोही सेना की ओर एक दृष्टि डाली जाय। इनमें फारसी, मिडिस तथा उत्तरी फारस के ८००० सैमारिटान जाति के सैनिक भी सम्मिलित थे जो कुछ फन्दे (lassos) से लड़ते थे। इसके अलावा इनमें किसियन और भारतीय (भारतीय जंगली गधों के रथ पर सवार होकर लड़ने के लिये आये थे), बैक्ट्रियन तथा कैस्पियन एवं लीबियन देशों के रथी भी थे। इनके अलावा अरबों की ऊँट-सेना (drome deries) भी इस आरोही-सेन्य की शोभा बढ़ाने के लिये सम्मिलित हुई थी।

नाविकों में कुल २०० व्यक्ति थे जो प्राय: फिनीशियन, मिस्री एवं यूनानी (जो फारस-साम्राज्य के अधीन थे) थे। जहाजों की संख्या १२०७ थी और हर जहाज का कप्तान एक पारसी या शक सेनापति था। आने जाने के लिए ३००० गाड़ियों का इन्तजाम किया गया था। सारांश में सम्राट जारक्सस ने अपने साम्राज्य की पूरी शक्ति यूनान जैसे छोटे देश को पददलित करने के लिए एकत्र की।

इस विशाल सेना का मुकाबला करने के लिए यूनान में हलचल मच गयी। इस बीच यूनानियों ने अपने जहाजी बेड़े को खूब शक्तिशाली एवं संगठित कर लिया था। परन्तु अपने नगर-राज्यों को संघबद्ध करने में उन्हें पर्याप्त सफलता न मिली।

फारसी सेना का यूनान-प्रवेश

सम्राट जारक्सस के सामने दूसरी समस्या थी, हेलेस्पाष्ट की खाड़ी को पार करना। सम्राट के निरीक्षण में, उसके इंजीनियरों ने, नाव के दो मजबूत पुलों का निर्माण किया। दूसरे दिन प्रातःकाल, पूरी फारसी फौज ने "अमर-सैनिकों" (Immortals) के नेतृत्व में, यूनान में प्रवेश किया। मार्ग में यूनानी फौज ने कोई बाधा न डाली और मैसीडोनिया तथा थेसाली पार कर, फारसी फौज आगे बढ़ती गई, और बिना किसी रोक-टोक के उत्तरी तथा मध्य यूनानी नगर राज्यों पर आसानी से अधिकार प्राप्त कर लिया।

छिट-फुट लड़ाइयों को छोड़कर, दोनों सेनाओं में जो महत्वपूर्ण लड़ाइयाँ हुईं उन्हीं का वर्णन यहाँ किया जायगा। प्रथम युद्ध तो 'थर्मापाली की घाटी'

(Pass of Thermopylae) में, ४८० ई० पू० में हुआ, जिसकी रक्षा के लिए सेनापति लिओनिदस, अपने ७००० स्पार्टन सैनिकों के साथ तैनात था। परन्तु इस स्थल-युद्ध में, सेनापति लिओनिडस और उसकी पूरी सेना वीरगति को प्राप्त हुई। इस प्रकार यह युद्ध समाप्त हुआ।

उधर समुद्री युद्ध में प्राकृतिक प्रतिकूलता के कारण फारस का जहाजी बेड़ा काफी परेशान हुआ। मैगनेशिया तट पर, समुद्री तूफान के कारण उनके, ४०० जहाज नष्ट हो गये। फारसी जहाजों के, बड़े और भारी होने के कारण, तंग समुद्री खाड़ियों में, घूमना-फिरना कठिन था। आंधी समाप्त होने पर, फारसी बेड़े ने यूबीया द्वीप की ओर २०० जहाज रवाना किये, जहाँ पर यूनानी जहाजी बेड़े से, स्पार्टा के जलसेनापति यूरीबिआडीस के नेतृत्व में, ३० फारसी जहाजों को कैद कर लिया। परन्तु यूनानी जलसेना को कोई निश्चित विजय इस जलयुद्ध में न प्राप्त हो सकी। इसके विपरीत युद्ध के अग्रिम चरण में फारसी जहाजी बेड़े ने, यूनानी जहाजी बेड़े को पूरी तरह घेर लिया और यूनानियों के कई जहाज नष्ट कर दिये। इसी समय थर्मापली घाटी का हतोत्साहपूर्ण संवाद यूनानियों को प्राप्त हुआ, फलतः वे रात को अपना पूरा जहाजी बेड़ा लेकर भाग खड़े हुए।

एथेन्स विजय

इसके बाद सम्राट जारक्सस की विजयी सेना, मध्य यूनान में घुस पड़ी और विकट-युद्ध के पश्चात् एथेन्स पर कब्जा कर लिया। एथेन्स के सारे मन्दिरों को जला दिया गया।

सलामीस की खाड़ी का युद्ध (Battle of Salamis 480 B. C.)

अब केवल एक उपाय था, जल-युद्ध में फारसियों को परास्त करना। कहाँ पर यह जल-युद्ध हो, इसे लेकर यूनानी सेनापतियों में बड़ा मतभेद हो गया। एथेन्स का सेनापति थेमीस्टोक्लीस (Themistocles) का कहना था कि सलामीश की संकरी खाड़ी में ही जल-युद्ध प्रारम्भ किया जाय क्योंकि उस संकरी खाड़ी में, फारसी जहाजी बेड़े के लिए घूमना फिरना आसान न होगा, अतः यूनानी जहाजी बेड़ा उसे आसानी से परास्त कर देगा। उस समय सलामीश में एथेन्स से भागे हुए, स्त्री-बच्चे आदि भी उपस्थित थे और उनकी जान बचाना, थेमीस्टोक्लीस के लिए परम कर्तव्य था। परन्तु पेलोपनेसी के सैनिक, कोरिन्थ के उपद्वीप (Isthmus of Corinth) के निकट जल-युद्ध के लिए जोर दे रहे थे।

थेमीस्टोक्लीस की सलाह ही अन्त में सभी यूनानी सेनापतियों ने स्वीकार

की और इस प्रकार सलामीस की खाड़ी में, फारसी और यूनानियों के बीच जल-युद्ध प्रारम्भ हुआ। प्रथम तो फारसी जहाजी बेड़े को इतना दबाया गया कि प्रातः होते-होते वह तट की ओर भाग खड़ा हुआ। परन्तु शीघ्र ही उसने महसूस किया कि यह उनके जीवन का अन्तिम खेल है। उन्होंने तुरंत लौटकर पुनः भयंकर जल-युद्ध प्रारम्भ कर दिया। अब फारसी फौज, उस तंग समुद्री खाड़ी में, घूमने-फिरने से अचल होकर यूनान के फुर्तीले जहाजी बेड़े का मुकाबला न कर सकी और उनके २०० जहाज इस युद्ध में काम आये। इसके विपरीत यूनानियों के ४० जहाज नष्ट हुए। फारसी जहाजी बेड़ा तुरन्त युद्धस्थल छोड़-कर भाग खड़ा हुआ और 'फलेरन' (Phaleron) की ओर चल पड़ा। यूनानियों ने उसका पीछा करना उचित न समझ सलामीस के समुद्र-तट पर सारी रात बितायी। सुबह एक भी फारसी जहाज दृष्टिगोचर न हुआ।

सम्राट जारक्सस का प्रत्यावर्तन

अब जारक्सस ने और युद्ध करना उचित न समझ कर पीछे लौट चलने का निश्चय किया और एटिका (Attica) होते हुए अपनी राजधानी की ओर लौटा। केवल सार्डिस में उन्होंने यूनानियों को दबाने के लिए, मार्डेन्नियस के नेतृत्व में ३०,००० फौज छोड़ दी। सौभाग्यवश, सूर्यग्रहण होने के कारण, स्पार्टा की फौज, कोरिन्थ के प्रायद्वीप में ही पड़ी रही और सम्राट जारक्सस को सही-सलामत एटिका के पहाड़ी क्षेत्रों से भागने का मौका मिल गया।

हेलेस्पाष्ट के पुल के पास पहुँच कर सम्राट ने देखा कि नाव का पुल टूट गया है और उससे भागना उचित नहीं है। अतः एक जहाज पर चढ़कर वह जल्दी-जल्दी समुद्र पार हुआ और भाग खड़ा हुआ।

प्लेटिआ का युद्ध (Battle of Platea 479 B. C.)

फारस-यूनान के इन युद्धों का अन्तिम युद्ध था प्लेटिआ का युद्ध जो ४७९ ई० पू० यूनानी, एवं फारसी सेनापति मार्डोनियस के चुनी हुई संगठित एवं सुशिक्षित सेना में हुआ। मार्डोनियस के साथ इस समय २,००,००० फारसी एवं ५०,००० यूनानी फौज थी, और 'हेलास' की फौज की संख्या केवल १,००,००० थी और उसमें घुड़सवार न थे।

प्लेटिआ के मैदान में दोनों फौजों में घमासान लड़ाई हुई जिसमें मार्डोनियस के अमर-सैनिक एवं घुड़सवारों ने, यूनानी फौज के तीनों भागों को तहस-नहस कर दिया। परन्तु स्पार्टा के वीर सैनिकों ने शीघ्र ही फारसी फौज पर अदम्य वीरता से आक्रमण करते हुए युद्ध का रूप बदल दिया। दुर्भाग्यवश इस युद्ध में वीर सेनापति मार्डोनियस मारा गया। उसके मरते ही फारसी फौज में

खलबली मच गयी। एथेन्स तथा स्पार्टा के सैनिक अदम्य साहस एवं वीरता के साथ आगे बढ़े, परन्तु मार्डोनियस की यूनानी फौज ने विकट रूप से उनका सामना किया। एथेन्स के वीर सैनिक, उनको चीरते हुए आगे बढ़ गये और स्पार्टा वालों से मिलकर फारसी-फौज में विराट् हत्याकांड शुरू कर दिया। फारसी सेना के केवल ३,००० व्यक्ति ही जान लेकर भाग सके। ऐतिहासिक हेरोडोटस का कहना है कि ४०,००० पारसी-सेना (जो आर्टा बजास नामक सेनापति के अधीन थी और जिसने इस युद्ध में भाग नहीं लिया क्योंकि उसमें और मार्डोनियस में आपसी मतभेद हो गया था) सही सलामत वापस लौट गयी।

प्लेटिया के युद्ध ने फारस की सैनिक-शक्ति की कमर तोड़ दी और उसकी प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का पहुँचाया। इसके विपरीत यूनानियों के हौसले बढ़ गये, उनमें गम्भीर आत्म-विश्वास पैदा हो गया कि और अधिक संघबद्ध होने पर वे विशाल से विशाल फारसी-फौज को भी रौंद सकते हैं। प्लेटिया के युद्ध के पश्चात् (सन् ४७९ ई० पू०) मिसैल के जल-युद्ध में (Battle of Mycale) यूनानियों ने फारसियों के अग्रिम जहाजी बेड़े को भी नष्ट-भ्रष्ट कर डाला और सम्पूर्ण यूनान को फारसियों की गुलामी से मुक्त कर लिया। अब एथेन्स वालों ने समुद्र पर अपना पूरा कब्जा कर लिया और अपने जहाजी बेड़े की शक्ति में और भी वृद्धि कर ली।

फारस तथा यूनान के युद्धों का फल

फारस तथा यूनान के बीच इन युद्धों का वर्णन एवं फारसी-फौज की पराजय की तीव्र समालोचना करते हुए, यूरोपीय ऐतिहासिकों ने कई कारण उपस्थित किये हैं, जो सर्वथा मान्य नहीं हैं। हाँ, एक बात अवश्य है कि जल-युद्ध में यूनानियों ने ही चमत्कार दिखाया और यह प्रमाणित कर दिया कि जहाजरानी और मल्लाहगिरी (Navigation) में वे पारसियों से कहीं श्रेष्ठ हैं।

सलामीस-जल-युद्ध की तुलना हम स्पेन-इंगलैण्ड के उस जलयुद्ध से कर सकते हैं जब स्पेन-सम्राट् फिलिप द्वितीय ने अपना विशाल आर्मेडा, इंगलैण्ड पर आक्रमण करने के लिए भेजा था। परन्तु समुद्री-तूफान के कारण उस विशाल आर्मेडा के कई जहाज नष्ट हो गये, और बाकी को अंग्रेजी जहाजी बेड़े ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। स्पेनीय जहाज भी, फारसी-जहाजों की भाँति, भारी भरकम आकार के थे, और तंग समुद्री रास्तों में, आसानी से घूम-फिर न सकते थे।

अंग्रेजी जहाज यूनानी जहाजों की तरह हल्के और फुर्तीले होने के कारण जल-युद्ध के लिए (विशेषकर तंग खाड़ियों में) अधिक उपयोगी थे। अतः जिस प्रकार फारसी जहाजी बेड़े को सलामीस की तंग खाड़ी केजल-युद्ध में पराजित

होना पडा, उसी प्रकार स्पेन का विशाल आर्मेडा भी इंगलिश चैनेल में अंग्रेजों से पराजित होकर, स्पेन को लौट गया।

फारसियों की पराजय के लिए दूसरा कारण यह बताया जाता है कि फारसी सेना में (जल तथा स्थल में) कई जातियों के सिपाही होने के कारण, उनमें राष्ट्रीय तथा जातीय एकता का सर्वथा अभाव था। इसके विपरीत यूनानियों में राष्ट्रीय एकता (national unity) न होने पर भी जातीय एकता (racial unity) थी। परन्तु यह बात सर्वथा मान्य नहीं है।

अक्सर युद्ध में सेनापतित्व के लिए, ऐथेन्स, स्पार्टा, थेसाली, कोरिन्थ आदि के सेनापतियों में झगड़े होते थे और स्पार्टा वाले, अपने कुसंस्कारों के कारण (भविष्यवाणी एवं सूर्य तथा चन्द्र-ग्रहण) कभी लड़ाई में शामिल होते और कभी पीछे हट जाते थे। अत: यह बात सिद्ध हो जाती है कि उनमें भी जातीय ऐक्य का सर्वथा अभाव था। अगर कुछ जातीय ऐक्य की भावना मौजूद थी, तो वह ऐथेन्स वालों में थी।

इन दो कारणों के अलावा जिन अन्य कारणों से फारसी फौज की हार हुई वे निम्नलिखित थे :—

(१) फारसी फ़ौज खुले मैदान में लड़ने में अभ्यस्त तो थी, परन्तु पहाड़ों तथा पहाड़ी रास्तों में लड़ने का अनुभव उसे न था। इसके विपरीत यूनानी पहाड़ी इलाकों के निवासी होने के कारण पहाड़ी रास्तों से भली-भाँति परिचित एवं ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी स्थानों में लड़ने के अनुभवी थे।

(२) साधारणत: यूनानियों के अस्त्र-शस्त्र फारसियों के अस्त्र-शस्त्रों से भारी होते थे, जिन्हें यूनानी बड़ी आसानी से इस्तेमाल करने के आदी थे। प्लेटिया के युद्ध में, भारी अस्त्र-शस्त्र लिये हुए स्पार्टा सैनिकों के तीव्र आक्रमण को, हल्के हथियार वाले अमर-सैनिक, कदापि न सह सके और उनका सेनापति मार्दोनियस इसी युद्ध में मारा गया।

(३) इन युद्धों के समय तक पारसी-साम्राज्य का विस्तार बहुत बढ़ चुका था। यद्यपि पारसियों के शासन-प्रबन्ध बड़े ही संगठित एवं सुव्यवस्थित थे, तथापि साम्राज्य के केन्द्र से मीलों दूर, बसे हुए 'हेलास' (यूनान) को भली-भाँति अपने अधीन रखना उनके लिए आसान न था। राजधानी से अधिक दिन तक अनुपस्थित रहने से सदैव विद्रोह की आशंका बनी रहती थी। तभी सम्राट् जारक्सस, सलामीस के युद्ध के पश्चात्, अपनी राजधानी को शीघ्र लौट गया। अगर जारक्सस, इन युद्धों के पश्चात् यूनान पर अधिकार भी कर लेता, तब भी उस पर स्थायी शासन कदापि स्थापित न कर पाता।

सम्राट् जारक्सस की चारित्रिक दुर्बलता फारसियों की पराजय का अन्यतम कारण है। अगर वह धीर, वीर एवं दृढ़-चित्त होता, तो राजधानी लौट-

कर, दुबारा, यूनान पर आक्रमण करने की योजना करता। परन्तु सलामीस की लड़ाई के बाद उसकी हिम्मत हार गयी, और डरपोक सियार की भाँति वह किसी तरह जान लेकर भाग खड़ा हुआ। उसके अन्दर वे गुण न थे जो उसके पूर्वज सम्राट् साईरस एवं सम्राट् डेरियस में थे।

युद्धों का परिणाम

(१) यह कहना असंगत न होगा कि इन युद्धों का विशाल साम्राज्य पर, उस समय के लिए, कोई विशेष प्रभाव न पड़ा। यूनान अब भी छोटे-छोटे नगर-राज्यों में विभक्त था, और संघबद्ध रूप से फारस का सामना करना उसके लिए अब भी असम्भव था।

(२) इन युद्धों से, खास यूनान, (हेलास) तथा यूनानी उपनिवेश (जो यूरोप तथा एशिया-माईनर में बसे हुए थे) फारसी-साम्राज्य की गुलामी से, पूर्ण-रूपेण मुक्त हो गये। सम्राट् साईरस के समय, एशिया-माईनर के सभी यूनानी उपनिवेश, फारसी-साम्राज्य के अन्तर्गत हो गये थे। सम्राट् डेरियस ने, अपनी राज्य-सीमा उत्तरी यूनान की सीमा तक विस्तृत कर दी थी। स्वयं सम्राट् जारक्सस ने, (अपने विपुल अभियान में) उत्तरी और मध्य यूनान को जीत लिया, एवं एटिका को रौंद डाला तथा दो बार ऐथेन्स को जलाकर भस्मीभूत कर दिया। परन्तु उनकी पराजय से सारा यूनान तथा यूनानियों को स्वाधीनता का वरदान प्राप्त हुआ।

(३) इन युद्धों का अवश्यंभावी परिणाम एक यह भी हुआ कि भविष्य में फारस ने (यानी परवर्त्ती फारसी सम्राटों ने) यूनान पर आक्रमण करने का ख्याल सदा के लिए छोड़ दिया और स्वयं आत्मरक्षा में लग गये। इसके विपरीत यूनान को, फारस पर आक्रमण करने के लिए पर्याप्त उत्साह प्राप्त हुआ। अब वे आत्म-रक्षीय (defensive) नीति का परित्याग कर, आक्रमण करने की नीति (offensive) को अपनाने लगे।

सम्राट् जारक्सस के उत्तराधिकारी एवं पारसी साम्राज्य का पतन

सम्राट् जारक्सस के आखिरी दिन बड़े ही कष्टों में बीते। यूनानी League of Delos की स्थापना कर संघबद्ध रूप में निरन्तर समुद्री युद्धों में फारसी जहाजी बेड़े को परास्त करते एवं तट पर आक्रमण करते रहे। सम्राट् स्वयं चरित्रहीन होने के कारण, दरबारी षड़यन्त्रों का शिकार हुआ और सन् ४६५ ई० पू० आर्टाबेनस नामक उसके एक दरबारी ने उसकी हत्या कर दी।

फारसी दरबार, षड्यन्त्र, हत्या तथा हिंजड़ों की शक्ति-वृद्धि एवं कुत्सित कार्यकर्मों से भरा हुआ कलंकमय घटनाओं का इतिहास मात्र है।

सम्राट जारक्सस की मृत्यु के बाद सम्राट डेरियस तृतीय पर्य्यन्त फारस के सिंहासन पर, क्रम से आठ सम्राट आरूढ़ हुए जिनमें केवल तीन सम्राट, आर्टा जारक्सस प्रथम (४६५ ई० पू०—४२५ ई० पू०) (जिन्हें Arta xerxes Longimanus भी कहा जाता है क्योंकि इनके हाथ लम्बे थे) आर्टा जारक्सस द्वितीय (४०४ ई० पू०—३५९ ई० पू०) जिन्हें Arta xerxes mnemon यानी चिन्ताशील आर्टा जारक्सस भी कहा जाता है और डेरियस तृतीय (३३६ ई० पू० ३३० ई० पू०) ही प्रसिद्ध हुए हैं।

सम्राट आर्टा जारक्सस प्रथम

इनके समय की उल्लेखनीय घटनाएँ हैं—(१) सन् ४६२ ई० पू० सम्राट के बड़े नाई विश्तस्प (जिसे यूनानी Higtaps कहते हैं) ने विद्रोह किया। परन्तु दो युद्धों में परास्त होकर भागा। फिर इसका पता नहीं चला।

(२) मिस्र का विद्रोह (४६० ई० पू०—४५४ ई० पू०) इस विद्रोह में यूनानियों ने अपने जहाजी बेड़े के द्वारा मिस्र के विद्रोहियों की भरपूर सहायता की, परन्तु वे असफल रहे। ६ हजार यूनानी कैद कर, सुसा ले जाये गये और सन्धि के प्रस्ताव तक बन्दी रक्खे गये। यूनानियों ने सन्धि-प्रस्ताव के लिये कैलियस (Callias) को भेजा (४४९ ई० पू०), जिसने सुसा पहुँचकर, सम्राट से सन्धि का प्रस्ताव किया। इस सन्धि के अनुसार सम्राट ने उन सभी यूनानी नगर राज्यों की स्वाधीनता स्वीकार की जो डेलो-संघ (League of Delos) के सदस्य थे।

इसके बाद कुछ काल तक फारस में अराजकता छाई रही। लीडिया का क्षत्रप टिस्साफार्नेस (Tissaphernes) यूनानी राज्यों के झगड़ों में एक कुशल राजनीतिज्ञ की भाँति बराबर सक्रिय भाग लेता रहा और अपनी निजी सेना में यूनानियों को काफी संख्या में भर्ती कर लिया। फिर, अपने विरोधी यूनानियों को दबाने के लिए उसने स्वर्ण-मुद्राओं का यथाशक्ति उपयोग किया एवं अधिकांश क्षेत्रों में घूस देकर ही अपना काम निकालता रहा। इस समय फारस के सिंहासन पर सम्राट डेरियस द्वितीय (Darius Nothus) राज्य कर रहा था। परन्तु वह इतना दुर्बल था कि उसे दरबारी षड़यन्त्रों से कभी फुरसत नहीं मिली। उसकी प्रधान सलाहकार थी उसकी स्त्री पैरीसैटीस (Parysatis) और तीन हिजड़े। राज-महिषी पैरिसैटीस अपनी क्रूरता के लिये इतिहास में विख्यात है। डेरियस द्वितीय आर्टा जारक्सस का पुत्र था जो अपने भाई सोगडियानीस (४२५ ई० पू०–४०४ ई० पू०) को मार कर गद्दी पर बैठा। पुनश्च, सोगडियानोस ने अपने भाई जारक्सस द्वितीय (४२५ ई० पू०) की हत्या कर गद्दी प्राप्त की थी।

डेरियस द्वितीय ने, षड़यंत्रों के कारण, अपने दामाद टेरीट्यूकमस (Teritucchmus) तथा उसके सम्पूर्ण परिवार को मरवा डाला।

सम्राट आर्टा जारक्सस द्वितीय

डेरियस द्वितीय के दो पुत्र थे, आर्सेस तथा साईरस (जिसे Cyrus the younger कहा जाता है)। आर्सेस, आर्टा जारक्सस द्वितीय के नाम से गद्दी पर बैठा। उसका राज्याभिषेक परसगडी में हुआ। कहा जाता है, साईरस ने वहीं उसकी हत्या करने की योजना की, परन्तु हत्याकारी (क्षत्रप टिस्साफरनेस के कारण) पकड़ा गया और सम्राट ने तुरन्त उसकी हत्या कर दी। वह साईरस को भी समाप्त करना चाहता था परन्तु राजमाता पैरीसेटीस के कारण उसने साईरस को क्षमा कर दिया और उसे एशिया-माईनर चले जाने की आज्ञा दे दी।

शीघ्र ही सम्राट को अपनी भूल प्रतीत हुई क्योंकि साईरस ने एक विशाल फौज का गठन कर विद्रोह की तैयारी कर दी। उसकी सेना में १३,००० यूनानी और १००,००० एशियायी सिपाही सम्मिलित हो गये। उसने अपना सेनापति, स्पार्टा निवासी क्लियर्कस (Clearchus) को नियुक्त किया।

सन् ४०१ ई० पू० में क्युनाक्सा (Battle of Cunaxa) के मैदान में उसने अपनी फौज के साथ, सम्राट की फौज पर भयंकर रूप से आक्रमण किया। उसकी यूनानी फौज ने, सम्राट की फौज तहस-नहस कर डाली। वह स्वयं सम्राट को मारने के लिये अग्रसर हुआ और सम्राट को आहत कर घोड़े पर से गिरा दिया। परन्तु इसी समय, उसकी एक आँख में भाला लगने के कारण वह घायल हो गया और मारा गया। अब विजय-लक्ष्मी सम्राट के हाथ लगी और साईरस की फौज भग खड़ी हुई।

कहा जाता है कि सेनापति क्लियर्कस के गलत नेतृत्व के कारण, साईरस की पराजय हुई। अगर वह विजयी हो जाता तो निश्चय ही अपने पूर्वज साईरस प्रथम, और डेरियस प्रथम की भाँति एक सफल तथा महान शासक होता। यूनानियों के घरेलू झगड़ों और मतभेदों से वह खूब परिचित था। अगर वह जीवित रहता तो कभी उन्हें संबद्ध न होने देता। यूनानी सेनापति और सिपाही रुपये के लालच में हर प्रकार से फारस की सेवा करने के लिए तैयार थे। निश्चय ही वह इसका पूरा-पूरा लाभ उठाता।

सम्राट आर्टा जारक्सस के समय क्षत्रपों की शक्ति काफी बढ़ गयी थी। क्षत्रप टिस्साफार्मेस और फर्नाबजाज के आपसी झगड़े काफी बढ़ गये और इन दोनों ने, रुपये के बल पर, यूनानी राष्ट्रों को, अपनी ओर खींचना शुरू किया। सौभाग्यवश इन दोनों ने, सम्राट के विरुद्ध विद्रोह करने की कोई योजना नहीं बनायी। इनके समय की मुख्य घटनाएँ निम्नलिखित हैं—

(१) क्षत्रप फर्नाबजाज ने, क्रीडस (Cridus) में स्पर्टा के जहाजी बेड़े को (३९४ ई० पू०) परास्त किया।

(२) स्पार्टा का दूत एन्टालकाईडास (Antolcides) सन्धि के प्रस्ताव लेकर सुसा में, सम्राट के निकट पहुँचा और दोनों में निम्नलिखित समझौते हुए—

(क) एशिया-माईनर तथा साईप्रस द्वीप एवं क्लेजोमिनी (Clazomene) फारस के सम्राट के अधीन रहेंगे।

(ख) यूनान के वे राष्ट्र जो फारस के अधीन नहीं हैं, अपने-अपने घरेलू मामलों में स्वतंत्र रहेंगे।

(ग) निम्नलिखित राज्य जैसे, लेमनस (Lemnos), इंब्रोस (Imbros) स्कीरोस (Skyros), एथेन्स के अधीन रहेंगे (एथेन्स इस समय फारस का मित्र बना हुआ था)।

यह सन्धि ३८७ ई० पू० हुई। इस सन्धि के कारण सम्राट की प्रतिष्ठा एवं ख्याति बहुत अधिक बढ़ गयी और वह यूनानी राष्ट्रों के घरेलू झगड़ों के बीच-बचाव का कार्य करने लगा। इस प्रकार कैलीयस द्वारा की गई सन्धि (४४९ ई० पू०) भंग हो गयी।

इसी समय के लगभग मिस्र वाले तथा जिलान प्रान्त (gilan) की कदुशियन (Cadusian) जाति ने विद्रोह किया, परन्तु वे दबा दिये गये।

सन् ३७२ ई० पू० यूनानियों ने, अपने घरेलू झगड़ों को मिटाने के लिए, पुनः एण्टालकाईडास को सम्राट के निकट सुसा में भेजा। इसी प्रकार सन् ३६७ ई० पू० कीबिरा नगर राज्य के निवासी एवं सन् ३६६ ई० पू० में एथेन्स वाले सम्राट के पास अपने-अपने दूत भेजते रहे।

सम्राट आर्टा जारक्सस के समय की अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं में, ये भी थीं—(१) सम्राट द्वारा मिथ्र देव (यानी सूर्यदेव) तथा अनैता देवी की उपासना का प्रचलन (इसका उल्लेख ऊपर किया गया है) (२) अपने शिलालेख में भी इन दो देवी-देवता का नामोल्लेख (३) एवं अनेक स्थानों पर इनकी मूर्ति स्थापन करना। इस प्रकार प्राचीन जरस्थुत्री धार्मिक विश्वासों में एक गंभीर परिवर्तन, सम्राट के द्वारा, किया गया।

सम्राट आर्टा जारक्सस की यों तो कई पत्नियाँ थीं जिनसे कई पुत्र उत्पन्न हुए थे, परन्तु उनके केवल तीन पुत्र डेरियस, एरीयस्पेस तथा ओकस (जो उनकी यूनानी पत्नी, स्टेटीरा Statira से उत्पन्न हुए थे) जीवित रहे। सम्राट की इस यूनानी पत्नी की, राजमाता वैरीसेटीस ने, विष देकर हत्या कर दी थी। ये तीनों पुत्र भी, गद्दी छीनने के लिये बराबर आपस में लड़ते रहे। भग्न-हृदय होकर ४६ वर्ष के राजोपरांत सन् ३५८ ई० पू० में सम्राट का देहान्त हो गया।

सम्राट के देहान्त के पश्चात् उनका सबसे छोटा लड़का ओकस (जिसने

पहले ही अपने दो भाइयों की हत्या करवा दी थी) आर्टा जारक्सस तृतीय (३५८ ई० पू० ३३८ ई० पू०) के नाम से फारस की गद्दी पर बैठा। इसके समय में फारस के अधीन कैस्पियन तट के प्रान्त एवं पंजाब स्वतंत्र हो गये। परन्तु अपने विश्वस्त हिजड़ा सेनापति बैगोयस (Bagoas) की सलाह से इसने आंतरिक शासन-प्रबन्ध में काफ़ी सुधार किया एवं सीडोन तथा मिस्र के विद्रोह को दबाया (३४२ ई० पू०)।

सम्राट डेरियस तृतीय

परन्तु इसके समय में दूर-दूर के क्षत्रप स्वेच्छाचारी हो गये एवं दरबारी-षड़यन्त्रों में क्रमशः वृद्धि हुई। अन्त में सन् ३३८ ई० पू० बैगोअस ने स्वयं, सम्राट आर्टा जारक्सस तृतीय की हत्या कर, उसके एक पुत्र आर्सेस (Aorses) को फारस की गद्दी पर बिठाया। परन्तु ३३६ ई० पू० उसकी भी हत्या, उसने कर दी, और अपने मित्र डेरियस कोडोमेंनस (Darius Codomannus) को, उसी वर्ष, फारस के सम्राट के पद पर अभिषिक्त किया। यही सम्राट डेरियस था, जो अपने पूर्वजों से कहीं अधिक वीर, एवं अधिक सुन्दर चरित्र का था। सिकन्दर ने, इसी को तीन युद्धों में परास्त कर सन् ३३० ई० पू० फारस को, अपने साम्राज्य में मिला लिया। परन्तु इन लड़ाइयों के वर्णन के पूर्व, सिकन्दर महान् तथा उसके देश मैसिडोनिया का संक्षिप्त वर्णन आवश्यक हैं।—

मैसीडोनिया

यूनान के उत्तर में एक पहाड़ी इलाका है जिसके निवासी 'आर्य-वंश' के होते हुए भी, यूनानियों के द्वारा 'असभ्य' कहे जाते थे। इस देश के निवासी सुडौल गठन के एवं परिश्रमी थे। साथ ही, विस्तृत उपजाऊ भूमि खेती के लिए उपलब्ध होने के कारण, वे अधिकतर कृषि तथा जानवर चराकर अपना पेट पालते थे। इस प्रकार इनमें एकता की वृद्धि भी क्रमशः हो गयी। वस्तुतः आगे चलकर मैसीडोनिया ही, सारे यूनान का, राजनैतिक, साहित्यिक, कलात्मक, आदि सभी क्षेत्रों में, नेता तथा पथ-प्रदर्शक हो गया।

सिकन्दर का पिता फिलिप (३५९-३३५ ई० पू०) इसी देश का शासक था, और शुरू से ही वह अपने देशवासियों को संगठित कर, एक विशाल-साम्राज्य का स्वप्न देख रहा था। सन् ३३७ ई० पू० में, अनेक बाधाओं के पश्चात् समस्त 'हेलास' ने, उसे अपना सर्वप्रधान सेनापति (Captain General) चुन लिया। अब उसके स्वप्न सफल होने की प्रचुर संभावना हो गयी। परन्तु सन् ३३६ ई० पू० में पसिनास नामक एक व्यक्ति ने उसकी हत्या कर दी। अतः उसकी अभिलाषाएँ अधूरी रह गयीं।

सिकन्दर महान्, इसी महान् बाप का बेटा था। इसकी माता का नाम ओलिम्पास थी, जिसे फिलिप ने त्याग दिया था। कहा जाता है कि ओलिम्पास ने ही फिलिप की हत्या कराई थी।

शुरू से ही सिकन्दर होनहार था। उसने किस प्रकार एक बदमाश घोड़े—बुकिकेलास (Bucepkalas) को काबू में किया था यह सर्वजन विदित है। उसकी महानता कई बातों में थी—उसी ने सर्वप्रथम यूनान के सभी राज्यों को एकत्र कर उनमें एक राष्ट्रीय आदर्श की भावना फूंक दी, और उन्हें विश्व-विजय-अभियान के लिए उत्साहित किया। वस्तुतः उसी के नेतृत्व में, यूनान का साम्राज्य, सुदूर भारतवर्ष के पंजाब प्रान्त तक विस्तृत हो सका। नहीं तो यूनान में उस समय ऐसे महान् देशप्रेमी तथा राष्ट्रप्रेमी नेता का सर्वथा अभाव था; और अधिकतर यूनानी नेता या सेनापति, पैसे के लालच में अपने देशवासियों के विरुद्ध, फारसी सम्राटों (या क्षत्रपों) के जूते चाटने के लिए सदैव प्रस्तुत रहते थे।

सिकन्दर महान् का विजय-अभियान तथा फारसी साम्राज्य का पतन

अपने पिता की मृत्यु के बाद सिकन्दर सन् ३३६ ई० पू० में, मैसीडोनिया की गद्दी पर बैठा। शीघ्र ही वह सम्पूर्ण यूनान का नेता मान लिया गया। गद्दी पर बैठते ही सन् ३३५ ई० पू० उसने थीबीसवासियों का विद्रोह, दृढ़ हस्त से, दबा दिया। इससे उसकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गयी।

विजय-अभियान की तिथि

३३४ ई० पू० में, सिकन्दर ने अपनी वाहिनी लेकर यात्रा की। इसमें अधिकतर सिपाही मैसीडोनिया के थे यद्यपि थेसाली ने कुछ घुड़सवार सैनिकों की तथा पेलोपनेसिया एवं अन्यान्य यूनानी जातियों ने भी सैनिक सहायता प्रदान की। यात्रा के समय इसके पास केवल ३०,००० पैदल तथा ५००० घुड़सवार थे। इससे अधिक विशाल बड़ी वाहिनी के खर्चे के लिए उसके पास पैसे न थे।

सिकन्दर ने आसानी से हेलेस्पास्ट की खाड़ी को पार कर एशिया की भूमि में पैर रक्खा। और यूनान के प्रधान देवता जिमस, देवी एथेने, और अपने पूर्वज हैराकुलीज के नाम पर बलि चढ़ाकर आगे बढ़ा।

सिकन्दर का प्रथम युद्ध—ग्रेनीकस की लड़ाई ३३४-ई० पू० (Battle of Granicus 334 B.C.)

ग्रेनीकस एक छोटी सी नदी है जो मार्मोरा सागर में गिरती है। पारसी

फौज में २०,००० ईरानी घुड़सवार तथा, २०,००० वेतनभोगी यूनानी पदातिक सैनिक थे। यूनानी-सैनिकों का नेता मेमनोन (Memnon) था। और बाकी फौज, सम्राट डेरियस के दामाद मिथ्रेडेट्स (Mithradates) के नेतृत्व में थी। पारसी फौज ने नदी के दाहिने किनारे पर अपना स्थान ग्रहण किया और केवल अपने २०,००० घुड़सवारों को ही पुल के अग्र-भाग में रक्खा।

सिकन्दर ने अपनी पदातिक सेना को दो भागों (Phalanx) में बाँटा और इन दोनों भागों के दोनों ओर घुड़सवार तैनात कर दिये। बाईं बाजू के घुड़सवारों का नेता पर्मेनिओ (Parmenio) था। दाहिनी बाजू पर उसने भारी अस्त्र-शस्त्र वाले घुड़सवारों को तैनात किया। इस प्रकार मोर्चाबन्दी करते हुए उसने पारसी फौज पर आक्रमण किया।

पारसी फौज ने प्रथम तो यूनानी घुड़सवारों को अपनी बर्छी (Javelin) फेंक-फेंककर बड़ा परेशान किया परन्तु शीघ्र ही सिकन्दर के भारी घुड़सवारों (heavy cavalry) ने अपने लम्बे भालों के द्वारा पारसियों पर आक्रमण किया। अब आमने-सामने लड़ाई शुरू हुई। सिकन्दर ने, पारसी सेनापति मिथ्रेडेट्स को मार गिराया। परन्तु पारसी फौज ने उसे घेर लिया। अब सिकन्दर की बाकी फौज ने भी नदी पार कर पारसी फौज को घेर लिया। सिकन्दर की फौज के भारी बल्लमों की मार के आगे, पारसियों की बर्छियाँ बिल्कुल बेकार सिद्ध हुईं। अन्त में सिकन्दर ने उनके मध्य-भाग को तोड़ दिया। फारसी घुड़सवार भाग खड़े हुए। अब केवल पारसियों की यूनानी-फौज बाकी रह गयी। सिकन्दर ने अपनी पदातिक सेना द्वारा इन्हें जल्दी ही रौंद डाला, और २,००० कैदियों के अलावा, सभी को वीरगति प्राप्त हुई।

सिकन्दर ने इस युद्ध के पश्चात् सन् ३३४ ई० पू० में सार्डिस पर भी अधिकार कर लिया। इस प्रकार लीडिया उसके हाथ में आ गया। लीडिया का क्षत्रप फारस की केन्द्रीय सरकार की दुर्बलता से लाभ उठाकर, स्वयं ही वहाँ का शासक, सेनापति तथा सेक्रेटरी-जनरल बन बैठा, जब कि इन तीनों पदों के लिए पहले, अलग-अलग अफसर नियुक्त थे। सिकन्दर ने पुन. क्षत्रप के संयुक्त अधिकार को तोड़कर, सैनिक तथा आर्थिक प्रबन्ध के लिए अलग-अलग अफसर नियुक्त कर दिये। और आगे भी शासन में, उसने इसी व्यवस्था को कायम रक्खा।

एशिया-माइनर में अभियान

अब सिकन्दर ने एशिया-माइनर में अभियान शुरू किया और वहाँ पर स्थित, यूनानी उपनिवेशों को अपने अधिकार में कर लिया। फिर हेलीकरेनस्सस

(Halicarnassus) पर आक्रमण किया। यह फारसी सेनापति मेमनोन (ऊपर उल्लेख आ चुका है) का केन्द्र था। मेमनोन ने शहर में आग लगा दी और स्वयं सैनिकों को लेकर अन्य दो दुर्गों में चला गया।

सिकन्दर इन दुर्गों को जीतने में अधिक समय व्यतीत न कर, अपनी सेना समेत आगे बढ़ गया और लीसिया तथा पौम्फीलिया के शहरों पर कब्जा कर लिया। शीघ्र ही पिसिडिया तथा फ्रीजिया के प्रान्त भी उसके अधीन हो गये। इसी समय सन् ३३३ ई० पू० में, फारसी-सेनापति, मेमनोन की मृत्यु हो गयी, और सिकन्दर के रास्ते से एक काँटा निकल गया।

ईसस का ऐतिहासिक युद्ध—३३३ ई० पू० (Battle of Issus)

ईसस (Issus) शहर, दो मील चौड़ी एक घाटी में बसा हुआ है जिसके उत्तर-पूर्व में पहाड़ एवं दक्षिण-पश्चिम में इस्कन्देरान की खाड़ी (Gulf of Iskanderen) है, जिसमें एक छोटी सी नदी बहती है। यहीं पर फारसी सम्राट डेरियस तृतीय, अपनी ६००,००० सेना समेत, सिकन्दर की प्रतीक्षा कर रहा था। डेरियस की इस सेना में ३०,००० वेतनभोगी यूनानी सैनिक थे। उसके सेनाव्यूह के बाँए भाग पर ६०,००० कार्डासिस जाति (Cardacs) की सेना थी, और दाहिनी ओर वेतनभोगी यूनानी सेना, तथा घुड़सवार। नीचे पहाड़ियों पर २०,००० की फौज और तैनात थी। बाकी फौज केवल सहायता के लिए तैनात की गयी और उसने युद्ध में कोई सक्रिय भाग न लिया। सम्राट ने इस सेना के मध्य में (परम्परा की रीति के अनुसार) अपना स्थान ग्रहण किया।

परन्तु पारसी सेना ने प्रथम आक्रमण की कोई सूचना न की। एवं सिकन्दर ने अपनी फौज समेत नदी की दाहिनी ओर, पहुँच कर पारसी - फौज पर आक्रमण कर दिया। पारसी-फौज तो प्रथम आक्रमण में ही भाग खड़ी हुई, परन्तु वेतनभोगी यूनानी सेना निश्चल खड़ी रही। सिकन्दर की पदातिक वाहिनी (Phalanx) में नदी पार करने के समय, कुछ गड़बड़ी मच गयी। अब भयंकर घमासान युद्ध शुरू हुआ। सम्राट डेरियस तृतीय, युद्ध के फलाफल की अपेक्षा किये बिना ही, भाग खड़ा हुआ। उसके साथ उसकी पारसी सेना भाग खड़ी हुई। सिकन्दर की सेना ने भागती हुई, पारसी-फौज का पीछा कर, अधिकांश की हत्या की। सम्राट डेरियस के तम्बू में उपस्थित, उसकी मां स्त्री और उसकी दोनों लड़कियाँ, एवं कई करोड़ सोने के सिक्के सिकन्दर के हाथ लगे।

इस युद्ध में सफल होकर सिकन्दर आगे बढ़ा और ३३२ ई० पू० में फीनिशिया के शहर टायर (Tyre) पर अधिकार स्थापित किया एवं ३३२-३३१ ई० पू० में मिस्र को भी अपने साम्राज्य में मिला लिया। परन्तु उसने मिस्र के

देवी-देवताओं की काफी इज्जत की और अपनी ओर से मिस्री-शासकों को शासन के लिये नियुक्त किया।

अब सिकन्दर ने फुरात नदी पर दो पुल बनवाकर उसे पार किया। फिर दजला नदी पार कर, प्राचीन असुरिया (वर्तमान नाम अथुरिया) में पहुँचा, जहाँ निनेव-शहर के ध्वंसावशेषों के पास, तथा अरवेला (Arbela) के उत्तर-पश्चिम में ७० मील दूर पर स्थित गुगीमेला (Gugimela) में, उसने एक विस्तृत मैदान में, सम्राट डैरियस तृतीय को, पुन: एक विशाल फौज समेत उपस्थित पाया।

डेरियस की वर्तमान सेना में, घुड़सवार, रथ (तलवार लगे हुए रथ भी थे) तथा पन्द्रह हाथी भी, अग्रभाग में थे। हाथी संभवत: भारतवर्ष से मँगाये गये थे। सेना के साथ इस बार भी वेतन-भोगी यूनानी सिपाही थे।

सिकन्दर ने चार दिन तक, सैनिकों के साथ विश्राम किया एवं आहतों की चिकित्सा के लिये, खेमे के अंदर व्यवस्था कर दी एवं अपने खेमे की सुरक्षा का पूरा-पूरा प्रबन्ध कर लिया। फिर सिकन्दर ने, विस्तृत मैदान में लड़ने की पूरी योजना बना डाली।

पारसी फौज और सिकन्दर की फौज में करीब ७ मील का फासला था। पारसी फौज का विभाजन इस प्रकार किया गया था कि सेना के मध्यभाग में, सम्राट डेरियस स्वयं था, जिसकी रक्षा के लिये "सम्राट के कुटुम्ब" एवं "अमर-सैनिकों" को नियुक्त किया गया। फिर वेतनभोगी यूनानी सिपाहियों के दो भाग कर सम्राट के दोनों बाजू पर तैनात किए गये। सामने, राजकीय घुड़सवार, हाथी एवं रथों को रक्खा गया। फिर दोनों ओर, घुड़सवार एवं पैदल सिपाहियों को तैनात किया गया। सारांश उस विस्तृत मैदान में पारसी-फौजों की अनगिनती संख्या चारों ओर फैली हुई दिखलाई पड़ने लगी।

सिकन्दर ने, अपनी सेना के पश्चात् भाग की रक्षा के लिये सेना की एक टुकड़ी पहले ही तैनात कर दी। फिर अपनी युद्ध-नीति के अनुसार फैलेन्क्स वाहिनी (Phalanx)[1] एवं उसकी दोनों ओर घुड़सवार तैनात कर दिये। फिर कुशल सैन्य-संचालन के द्वारा वह, फारसी-फौज कि बाँयीं ओर मुड़ा, और

---

१. इस प्रकार सैन्य व्यवस्था की उद्भावना सिकन्दर के पिता फिलिप ने की थी। इसमें १६ पंक्तियों में, पदातिक सेना, १६ फुट लम्बे बल्लम या पाईक लेकर चलती थी और युद्ध के मौके पर, आगे की पाँच पंक्तियाँ, अपने-अपने बल्लमों को समतल करते हुए, सेना के अग्रभाग की रक्षा करती थीं। शत्रुओं के बीच से चीरकर निकल जाने की इनमें अद्भुत क्षमता थी (Vide Sykes, History of Persia, P. 336 F. N. 1)

ऊबड़-खाबड़ जमीन में दोनों फौजें आगयीं। डेरियस ने जब देखा कि अब उस के रथ बेकार हो जाँयगे (अगर वह पहले ही आक्रमण करता तो यह स्थिति न उत्पन्न होती) तो उसने अपनी बाँईं ओर के घुड़सवारों को आक्रमण करने की आज्ञा दी। परन्तु सिकन्दर की फौज ने उनको तोड़ दिया। इसी समय, डेरियस के, तलवार लगे हुए रथों ने, सिकन्दर की सेना पर आक्रमण कर दिया, परन्तु सिकन्दर के पदातिक सैनिकों ने, उन पर अपनी बर्छियाँ फेंकनी शुरू कर दीं, घोड़ों के लगाम काट डाले एवं उनके चालकों को उतार कर बाहर फेंक दिया। आवश्यकतानुसार, सिकन्दर की पैदल सेना, इन रथों के आने के समय, दोनों ओर अलग हो जाती थी, और जब ये बीच से निकल जाते तो उनके आरोहियों पर, पीछे से आक्रमण करती।

इतने में डेरियस की सहायक सेना में कुछ स्थान खाली (Gap) हो गया और सिकन्दर ने अपने घुड़सवारों के साथ, इसी ओर आक्रमण किया। सम्राट, पुनः सिकन्दर को अपनी ओर आते देखकर, भय से, कायर की भाँति इस बार भी, रणक्षेत्र छोड़ कर भागा, जबकि, युद्ध के फलाफल अभी अनिश्चित थे।

उधर, सिकन्दर के सहायक सेनापति, पर्मेनिओ ने, पारसी फौज के दाहिने बाजू को तोड़ दिया। सिकन्दर उसकी सहायता के लिए आगे बढ़ा, और रास्ते में, भारतीय, पारसी एवं पार्थियन घुड़सवारों को, चीरकर निकल जाने की चेष्टा में, उसकी सेना के काफी सिपाहियों को जान गँवानी पड़ी।

अब सिकन्दर ने अर्बेला (इर्बील) तक डेरियस का पीछा किया परन्तु तब तक सम्राट भाग कर एकबटाना पहुंच गया था।

सिकन्दर ने शीघ्र ही सुसा एवं बेबिलोन पर अधिकार कर लिया एवं बाबुल के देवताओं की वही इज्जत की जो उसने मिस्र के देवताओं की, की थी। सुसा नगरी में ५०,००० स्वर्ण मुद्रा, सिकन्दर के हाथ लगे। उसने वहाँ से Harmodius तथा Aristogeiton की कांस्य-मूर्तियों का पुनरुद्धार कर ऐथेंस वापस भेजवा दिया।

फिर पार्सिपौलीस एवं पसरगड़ी शहरों पर उसने अधिकार स्थापित किया। पार्सिपौलीस में, उसे, १२०,००० रैलेण्ट प्राप्त हुए एवं उसने पार्सिपोलीस के राजप्रासाद को जलाकर भस्मीभूत कर दिया।

पुनः उसने डेरियस का पीछा करना शुरू किया और कैस्पीयन गेट (Caspian gates) तक पहुँचा। वहाँ उसे मालूम हुआ कि बैक्ट्रिया का क्षत्रप बेस्सस, अराकोशिया का क्षत्रप बर्सन्टेस, तथा घुड़सवारों एवं रथों के सेनापति, नबर्जनेस, इन तीनों ने मिलकर, सम्राट को कैद कर लिया है। सिकन्दर ने बड़ी शीघ्रता से इनका पीछा किया और ५० मील यात्रा के बाद, पारसियों के निकट पहुँच गया। बेस्सस ने जब देखा कि बचने का कोई रास्ता नहीं है तो, सम्राट

की हत्या कर, भाग खड़ा हुआ। सिकन्दर ने पहुँच कर देखा कि सम्राट की मृत देह, एक झरने के पास, गाड़ी में, जख्मों के साथ पड़ी हुई है और गाड़ीवान भाग गया है। सिकन्दर ने श्रद्धापूर्वक, सम्राट की मृत देह को पार्सिपोलिस भेजवाकर, धूमधाम के साथ, दफना दिया और शीघ्र ही उसके हत्यारों को पकड़कर तलवार के घाट उतार दिया। जिस स्थान पर सिकन्दर ने डेरियस को पा लिया था वह स्थान दमघान (Damaghan) के निकट है।

इस प्रकार हुख़मनीषी वंश के अन्तिम सम्राट का जीवन समाप्त हुआ। इसके साथ ही हुख़मनीषी वंश का अन्त एवं फारसी साम्राज्य का भी पतन हो गया।

इसके बाद सिकन्दर ने भारतवर्ष में पदार्पण किया और सिन्ध नदी पार कर झेलम नदी के किनारे पोरस को पराजित कर, पंजाब को भी अपने विशाल-साम्राज्य में मिला लिया। परन्तु उसकी सेना ने, यहां पर विद्रोह कर दिया और आगे बढ़ने से मुँह मोड़ लिया। तब सिकन्दर ने अपनी फौज के एक विशाल भाग को, निअर्कस के अधीन, सिन्धु-नदी के जल-रास्ते से फारस की खाड़ी भेजवा दिया, एवं खुद अन्य सेना-समेत, मक्रान के तट होते हुए, बैबिलोन पहुँचा। वहाँ पर अधिक शराब पीने के कारण, सन् ३२३ ई० पू०, केवल ३२ वर्ष की अवस्था में उसकी मृत्यु हो गयी।

सिकन्दर के आक्रमण के परिणाम

(१) विशाल फारसी-साम्राज्य का पतन, सिकन्दर के आक्रमण से उसी प्रकार हुआ था जैसे वाटरलू के युद्ध के पश्चात्, नैपोलियन का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया।

(२) यूनानी सभ्यता एवं संस्कृति की लहरें, समस्त एशिया में (केवल चीन को छोड़कर)—भारतवर्ष तक—टकराने लगीं जिसके प्रभाव से, इण्डो-बैक्ट्रीयन, इण्डो ग्रीक एवं गान्धार-कला (भारत में) का जन्म हुआ। अपितु भारतीय दर्शन एवं दार्शनिकों से सम्राट सिकन्दर स्वयं (एवं उनके साथी यूनानी) प्रभावित हुए, तथा भारतीय दर्शन का गम्भीर प्रभाव, यूनानी दर्शन पर भी पड़ा।

(३) इस विजय के परिणामस्वरूप, यूनानी तथा पारसियों में विवाह इत्यादि होने लगे जिससे परस्पर मेल-जोल अधिक बढ़ने लगा। सम्राट सिकन्दर ने स्वयं कुलीन वर्ग के पारसियों का सम्मान किया, एवं अपने शासन-प्रबन्ध तथा सेना में उन्हें उच्च पद दिये। उसके कई प्रांतीय शासक (satrap) ईरानी तथा मिडिस जाति के थे। साधारण सेना में भी उसने पारसियों को भर्ती किया और उनकी सेवा से यथेष्ट तृप्त हुआ।

(४) विजित पारसी-साम्राज्य में (भारतवर्ष तक) छोटे-छोटे यूनानी नगर-

राज्य स्थापित हो गये, जो आये दिन तक "हेलेनिक" संस्कृति के दीपक बनकर एशियावालों को, अपनी उज्ज्वल किरणों से मुग्ध करते रहे।

(५) भारत से यूनान तक आने-जाने के मार्ग खुल गये, जिससे व्यापार तथा विचारों के विनिमय में बड़ी सहायता मिली।

(६) सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात्, उसके सेनापतियों ने सम्पूर्ण राज्य को आपस में बाँट लिया। जैसे :—

(i)	अण्टीगोनस	भूमध्यसागर से बैक्ट्रिया पर्यन्त
(ii)	टालेमी प्रथम	मिस्र
(iii)	कैस्सण्डर	हेलास एवं मैसीडोनिया
(iv)	लिसिमेकस	थ्रेस एवं एशियामाइनर
(v)	सेल्यूकस नीकेटर	जाक्सार्टास (Jaxartes) नदी से पंजाब पर्यन्त

इनमें से, सेल्यूकस को, भारतीय मौर्य-सम्राट चन्द्रगुप्त से युद्ध करना पड़ा और सन्धि की शर्त के अनुसार, चन्द्रगुप्त मौर्य को अपनी लड़की देनी पड़ी एवं निम्न प्रांतों का अधिकार छोड़ना पड़ा (१) एरिया (२) ऐराकोशिया (३) गेड्रोशिया, (४) पैरोपनीसैठी—जो आधुनिक काबुल, हिरात, अफगानिस्तान तथा बलूचिस्तान एवं मक्रान प्रांतों के समान था।

सिकन्दर महान् के उत्तराधिकारी

कहना असंगत न होगा कि सिकन्दर न तो अपने विशाल-साम्राज्य में कोई सुव्यवस्थित शासन-प्रबन्ध स्थापित कर सका और न तो कोई अपना उत्तराधिकारी ही चुन सका।

सिकन्दर महान् की दो स्त्रियाँ थीं, एक तो सम्राट दारा की पुत्री स्टैटीरा और दूसरी रोक्साना। परन्तु स्टैटीरा को, धोखे से, रोक्साना ने बैबिलोन बुलवा लिया, और वहीं उसकी हत्या कर दी। इस प्रकार रोक्साना ने, अपनी भावी सन्तान के लिए (उस समय वह गर्भवती थी), सिकन्दर के उत्तराधिकारी होने का गौरव, सुरक्षित कर लिया।

परन्तु सिकन्दर के मृत्योपरान्त, उसके अफसरों और सेनापतियों ने, आपस में, भयकर झगड़े शुरू किए। इन्हीं में से, कैसेण्डर नामक एक व्यक्ति ने, रोक्साना के पुत्र (King Alexander) एवं राज-परिवार के अन्यान्य सदस्यों की हत्या कर दी ताकि सिकन्दर के सिंहासन का दावेदार कोई न रहे।

अध्याय | ७

पार्थिया-साम्राज्य तथा असीशीद राजवंश की उत्पत्ति

इस वंश की उत्पत्ति की तिथि २४९ ई० पू० से २४८ ई० पू० बतायी जाती है। इस वंश की नींव, असीशीस प्रथम नामक एक व्यक्ति ने डाली, जो तूरानी जाति का था एवं पार्थिया का निवासी नहीं था। यह तूरानी जाति पर्णी कहलाती थी एवं 'दाहि' (Dahae) नामक खानाबदोश जाति का ही एक भाग थी। इस जाति ने, अर्बेला के मैदान में, पारसी फौज के बाँए बाजू पर तैनात होकर सिकन्दर का सामना किया था। इस जाति का निवास, कैस्पियन सागर के पूर्व में, आधुनिक यामूत तुर्कोमान (Yamut Turkoman) में था।[1]

असीशीद वंश वाले अपने को हुख्मनीषी वंश की ही संतान बताते हैं। कहना असंगत न होगा कि सम्राट आर्टा जारक्सस द्वितीय का दूसरा नाम Arsaces अर्साशीस था और वह उसी समय पैदा हुआ था जब उसके पिता हिरसैनिया (तथा संभवतः पार्थिया) के क्षत्रप थे।[2]

असीशीस प्रथम ने अपने भाई के साथ, वर्तमान असाक (Asaak) प्रान्त पर अधिकार कर लिया, जो उस समय सेल्यूकस-राजवंश के किसी शासक के अधीन था। संभवतः असीशीस प्रथम २४७ ई० पू०, युद्ध में मारा गया। और उसका भाई तिरिदत्त (Tiridats) असीशीस द्वितीय (२४७-२१४ ई० पू०) के नाम से गद्दी पर बैठा।

वस्तुतः तिरिदत्त ही पार्थिया-साम्राज्य का प्रतिष्ठापक था। उसने सेल्यूकस कैलीनीकस (या सैल्यूकस द्वितीय) से हिरसैनिया (पार्थिया) का प्रांत छीन लिया। सेल्यूकस द्वितीय ने दुबारा आक्रमण किया, परन्तु उसे कोई सफलता न मिली।

---

१. पार्थिया के आदिम-निवासियों का उल्लेख सम्राट डेरियस प्रथम ने अपने बेहिस्तून के शिलालेख में किया है।

२. पार्थिया की उन्नति सेल्यूकस राजवंश की शक्ति के पतन होने पर हुई।

सेल्यूकस से छुटकारा पाकर तिरिदत्त ने अपनी राजधानी दारा शहर में स्थापित की जो अपवर्त्त जिले में स्थित है। उसने अपने राज्य के सभी शहरों को दुर्गों द्वारा सुरक्षित कर दिया।

उसके बाद उसका पुत्र असीशीस तृतीय के नाम से उसका उत्तराधिकारी हुआ। इसके समय इनका युद्ध सेल्युसिद वंश (Selucid dynesty) के सम्राट एण्टीओकस तृतीय से हुआ, और अंत में दोनों में संधि हो गयी और एक ने दूसरे की राज्य-सीमा को मान लिया।

इसके बाद इस वंश में सम्राट फ्रातिस प्रथम (Phraates I) हुआ (१८१ ई० पू०) जिसने देमावंद के नीचे रहनेवाली मार्दी-जाति को जीत कर, मिडिया रजियाना (Media Rhagina) प्रान्त में, कैस्पीयन गेट के पश्चिम, चरक्स (Charax) नगर की स्थापना की।

परन्तु इस वंश का सबसे शक्तिशाली सम्राट मिथ्रेडेट्स प्रथम (१७०-१३८ ई० पू०) हुआ जिसने अपने विजय-अभियानों के द्वारा, बैक्ट्रिया से लेकर फुरात नदी एवं कैस्पियन सागर से फारस की खाड़ी तक अपना राज्य विस्तृत कर लिया। बैक्ट्रिया में उस समय यूनानी सम्राट डेमेट्रियस राज्य कर रहा था, जिसने पंजाब तक अपना राज्य विस्तृत कर लिया था। परन्तु बैक्ट्रिया का यूनानी-राज्य अधिक दिन तक अपना गौरव कायम नहीं रख सका और शीघ्र ही उसकी शक्ति समाप्त हो गयी। पार्थिया-नरेश मिथ्रेडेट्स ने इसका पूरा-पूरा लाभ उठाया और उसके पश्चिमी प्रान्तों को अपने राज्य में मिला लिया।

मिथ्रदत्त की अन्तिम विजय थी इलीमैस (Elymais)। इसके पश्चात् १३८ ई० पू० उसकी मृत्यु हो गयी।

फ्रातिस द्वितीय (Phraates II) १३०-१२९ ई० पू०

फ्रातिस द्वितीय को सेल्यूसीदवंश के शासक एण्टिओकस साइडेटस (Antiochus Sidetes) से कई युद्ध करने पड़े। अन्तिम युद्ध में—जब पार्थिया सम्राट ने एकबटाना पर आक्रमण किया तो एण्टीओकस ने, युद्ध में घायल होकर, एक पहाड़ की चोटी से कूद कर आत्महत्या कर ली। पार्थिया-सम्राट ने सेल्यूसीस नगरी पर धावा बोलकर (जो दजला नदी के किनारे बसा हुआ था) उसको अपने कब्जे में कर लिया।

इस समय से सेल्यूसीद वंश की समाप्ति हो जाती है और जिस समय रोमीय-साम्राज्य का उदय होता है उस समय तक उसके नामो-निशान भी मिट गये थे।

परन्तु इस समय पार्थिया-सम्राट को एक नयी विपत्ति का सामना करना पड़ा। २०० ई० पू० में, मध्य-एशिया की यू-ची जाति, हूणों से पराजित होकर,

अन्य एक असभ्य एवं खानाबदोश जाति शकों पर टूट पड़ी और उनको उनके निवासस्थान से (१६३ ई० पू०) निकाल दिया। शकों ने अब सीरदरिया तथा बैक्ट्रिया पर आक्रमण किया और वहाँ के ग्रीको-बैक्ट्रीयन राज्य को नष्ट कर डाला।

पार्थिया-सम्राट फ्रातिस द्वितीय ने इनके आक्रमण के डर से सीरिया-विजय की कल्पना त्याग, अपनी राजधानी का रास्ता लिया। परन्तु शकों के विरुद्ध युद्ध करते हुए, उसकी मृत्यु हो गयी।

मिथ्रदत्त द्वितीय (१२४-८८ ई० पू०)

परन्तु परवर्ती सम्राट मिथ्रदत्त द्वितीय ने, पार्थिया-साम्राज्य को नाश होने से बचा लिया। उसने शकों को बुरी तरह परास्त कर साम्राज्य के बाहर कर दिया। मिथ्रदत्त ने भारतवर्ष के कुछ प्रान्तों पर भी अपना अधिकार कर लिया और बैबिलोन के शासक हिमेरस (Himerus) का विद्रोह पूर्णतः दबा दिया।

पार्थिया तथा रोम के संघर्ष एवं परिणाम

अब पार्थिया को एक नवीन शक्ति, रोमीय-साम्राज्य का सामना करना पड़ा, जिसने अधिकांश यूनानी रियासतों को अपने अधिकार में कर, पूर्वी देशों पर भी अपनी दृष्टि डाली। परन्तु इसके पहले कि पार्थिया तथा रोमीय साम्राज्य के पारस्परिक संघर्ष एवं युद्धों का वर्णन किया जाय आर्मेनिया–प्रान्त के बारे में कुछ बताना आवश्यक है क्योंकि आर्मेनिया, दोनों के युद्धों का बराबर शिकार बना रहा, जिससे वहाँ के निवासियों को असह्य क्लेश सहने पड़े।

आर्मेनिया में असुरिया-सम्राटों के आक्रमण के समय, नैरी, उरार्त्तु एवं मन्नाई नामक जातियाँ थीं। ७वीं ई० पू० के लगभग, आर्य-जातियों की एक शाखा ने संभवतः पश्चिम से इस देश में प्रवेश किया और यहाँ की प्राचीन जातियों को जीतकर यहाँ बस गये। इनकी राजधानी 'वन' (Van) थी। ऐतिहासिक हेरोडोटस ने इनकी सेना का वर्णन किया है जब वे सम्राट जारक्सस के साथ यूनान पर आक्रमण करने गये थे। बेहिस्तून शिलालेख में आर्मेनिया को पारसी साम्राज्य के अधीन एक रियासत बताया गया है। परन्तु तब तक इसका ऐतिहासिक महत्व कुछ भी नहीं था।

पार्थिया-सम्राट मिथ्रदत्त प्रथम ने आर्मेनिया प्रान्त को सेल्यूसीद-वंश के सम्राट डेमेट्रियस से मुक्त कर, उस प्रान्त का शासक अपने वंश के एक राजकुमार को कर दिया था। मिथ्रदत्त द्वितीय के समय वहाँ के शासक अर्त्तावस्दीस (Artavasdes) और उसके पुत्र तिग्रेनिस (Tigranis) ने अपनी शक्ति काफी बढ़ा ली थी और ईसस की खाड़ी से कैस्पियन-सागर के तट पर्यन्त

उनका राज्य-विस्तार हो गया था। ऐतिहासिक स्ट्रेबो का कहना है कि, राजकुमार तिग्रेनीस को, पार्थिया-सम्राट मिथ्रदत्त द्वितीय ने कुछ काल के लिए अपने यहाँ जमानत (mortage) के तौर पर रक्खा था। परन्तु इसका कोई विशद विवरण नहीं प्राप्त होता है। जो कुछ भी हो पार्थिया के इतिहास में, आर्मेनिया का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है। क्योंकि आर्मेनिया के कारण ही पार्थिया तथा रोम में कई युद्ध हुए।

पार्थिया एवं रोम का प्रथम सम्पर्क एवं परवर्त्ती संघर्ष

इसी समय एशिया के रंगमंच पर एक और सम्राट का अभ्युत्थान होता है जो इतिहास में Mithradates VI of Pontus के नाम से प्रसिद्ध है। यह व्यक्ति प्रारम्भ में कालासागर के दक्षिणी तट पर, एक छोटी सी रियासत (जिसका नाम पोण्टस था) का शासक था और धीरे-धीरे चारों ओर के प्रान्तों को जीतकर (जिसमें बास्फोरस का राज्य भी सम्मिलित था) अपना साम्राज्य बढ़ा लिया। अपितु आर्मेनिया-शासक तिग्रेनीस की लड़की क्लिओपेट्रा से विवाह कर एशिया में उसने अपनी शक्ति-वृद्धि भी कर ली। प्रारम्भ में वह नवीन पश्चिमी राज्य रोम का मित्र एवं सहायक भी था। मौका देखकर उसने पैफ्लेगोनिया (Paphlagonia) तथा कैपेडोसिया (Coppodia) की रियासतों पर, जो रोम के अधीन थीं, दखल कर लिया। अब रौमीय सिनेट ने चुप रहना उचित न समझा और सिलीशिया (Cilicia) के शासक लूसियस सूल्ला (Lucuis Sulla) को कैपेडोसिया में हस्तक्षेप करने के लिए भेजा। मिथ्रदत्त ने रोमीय फौज का सामना करना उचित न समझा और रोमीय फौज सारे देश को रौंदती हुई, फरात नदी के किनारे पहुँच गयी।

अब पार्थिया सम्राट मिथ्रदत्त द्वितीय ने, रोम से सन्धि करना ही उचित समझा। वह आर्मेनिया की बढ़ती हुई शक्ति से घबड़ा गया था क्योंकि तिग्रेनीस ने पार्थिया से कुछ प्रान्त भी छीन लिए थे। अतः पार्थिया-सम्राट ने अपने दूत ओरोबजाज (Orobazus) को सन्धि प्रस्ताव के साथ रोमीय शासक सूल्ला के पास भेजा (९२ ई० पू०) परन्तु ओरोबजाज अपने कार्य में सफल न हुआ और लौटने पर उसे प्राणदंड दिया गया। इस प्रकार पार्थिया और रोम का मित्रतापूर्वक प्रथम सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास असफल हो गया।

पार्थिया की शक्ति का अवसान

८९ ई० पू० से ६९ ई० पू० तक पार्थिया का शक्ति-अवसान-युग माना जा सकता है। आर्मीनिया-शासक तिग्रेनीस ने, मेसोपोटामिया के उत्तरी भाग,

मीडियाँ के कुछ प्रान्त, और पश्चिम में सेल्यूसीद राज्य के बचे हुए भागों को जीतकर अपनी शक्ति बढ़ा ली थी। तत्कालीन पार्थी-सम्राट, चुपचाप उसकी शक्ति वृद्धि देखते रहे, कुछ करने की हिम्मत न पड़ी।

अब मिथ्रदत्त षष्ठ (पन्यस) के हौसले बढ़े और उसने पेरगमस (Pergamus) प्रान्त (जो उस समय रोम के अधीन था) पर अधिकार जमाते हुए रोम की अधीन यूनानी रियासतों पर भी आक्रमण कर दिया। यूनान के कैरोनिया (Chaeronea) स्थान पर रोमीय शासक सूल्ला और मिथ्रदत्त षष्ठ की सेना में घमासान लड़ाई हुई, जिसमें मिथ्रदत्त की पराजय हुई। उसे, सूल्ला को, २००० मुद्रा (talent) और २० युद्ध पीत देने पड़े। इस प्रकार इतिहास-प्रसिद्ध 'प्रथम मिथ्रदत्त का युद्ध' (First Mithradatic war) रोम के पक्ष में समाप्त हुआ।

द्वितीय बार के युद्ध में भी, मिथ्रदत्त पराजित होकर भाग गया और आर्मेनिया में शरण ली। तिग्रेनीस ने उसे शरण दी और रोमीय शासक के हाथ उसे सौंपने से इन्कार कर दिया (७३ ई० पू०)। सन् ६९ ई० पू० में, रोमीय सेना ने आर्मेनिया में प्रवेश करते हुए, तिग्रेनीस की सेना को परास्त किया और वह पूर्व की ओर भाग गया। परन्तु लूसिडीस सूल्ला के सैनिकों ने आगे बढ़ने से मुंह मोड़ लिया अतः उसे वापस लौटना पड़ा। पुनः ६७ ई० पू० में वह पोण्टस (Pontis) पहुँचा (जहाँ मिथ्रदत्त के पुनः अवतीर्ण होने की खबर उसे प्राप्त हुई थी) परन्तु उसकी सेना के विद्रोह करने पर उसे अपना उद्देश्य पूरा करने का मौका नहीं मिला।

अब रोमीय सिनेट ने, मिथ्रदत्त षष्ठ को दंड देने के लिए सुविख्यात सेनापति पाम्पे (Pompey) को नियुक्त किया (६७-६३ ई० पू०) पाम्पे ने, ६६ ई० पू० के वसन्त में मिथ्रदत्त के विरुद्ध अभियान किया और लूसिडिस सूल्ला के साथ संयुक्त मोर्चे में, मिथ्रदत्त को पराजित करते हुए, उसे पूर्व को भगा दिया। मिथ्रदत्त ने प्रथम तो आर्मेनिया में शरण लेने की चेष्टा की परंतु तिग्रेनीस ने इस बार उससे मुँह मोड़ लिया।

अब पाम्पे ने, तिग्रेनीस की राजधानी पर चढ़ाई की और उससे ६००० मुद्रा (talent), एवं सैनिकों के लिए पुरस्कार, ग्रहण किया। संधि के प्रस्तावानुसार तिग्रेनीस को अपने विजित प्रान्त भी रोम को वापस करने पड़े जिनमें साइलिसिया, फीनिशिया तथा सीरिया के प्रान्त भी सम्मिलित थे।

इस प्रकार तिग्रेनीस को दबाते हुए, वह कुर-घाटी (Kur-Valley) पहुँचा और वहाँ अल्बेनिया निवासियों से युद्ध करते हुए फसीस की घाटी की ओर बढ़ा जहाँ उसके जहाजी बेड़े उसकी अपेक्षा कर रहे थे। पाम्पे को ख्याल था कि संभवतः इस यात्रा में, कहीं न कहीं मिथ्रदत्त षष्ठ से उसकी अवश्य भेंट

हागी। परन्तु उसकी अभिलाषा पूरी न हुई और कुर की घाटी लौटकर उसे उसने अपने अधिकार में कर लिया।

पाम्पे ने पार्थिया सम्राट फ्रातिस तृतीय से भी सन्धि कर ली और दोनों में त हुआ कि फ्रातिस तृतीय, तिग्रेनीस (आर्मेनिया) के विरुद्ध पाम्पे को सहायता पहुँचायेंगे और पाम्पे उसके बदले कार्डूनी तथा अदियाबेनी (Cordune and Adiabene) के प्रान्त, उनको वापस कर देंगे, जिन्हें तिग्रेनीस ने, पार्थिया से छीन लिया था। सौभाग्यवश उस समय फ्रातिस के दरबार में तिग्रेनीस के सबसे बड़े लड़के ने, भागकर शरण ली थी। फ्रातिस तृतीय ने आर्मेनिया पर आक्रमण कर, राजधानी आर्टाक्जाटा (Artaxata) पर अधिकार कर लिया और तिग्रेनीस के पुत्र को वहाँ का शासक बना दिया। तिग्रेनीस भागकर पहाड़ों में जा छिपा और पार्थिया सम्राट के लौटते ही, पुनः उसने अपनी राजधानी पर अधिकार जमा लिया। फ्रातिस तृतीय ने पुनः कार्टूनी पर अधिकार जमाना चाहा, परन्तु रोमीय शासक (पाम्पे द्वारा नियुक्त) अफानीयस ने उसे वहाँ से भगा दिया और उस प्रान्त को पुनः आर्मेनिया को सौंप दिया। पाम्पे पुनः रंगस्थल पर आ गया और आर्मेनिया तथा पार्थिया के बीच समझौते के लिए (arbitrators) नियुक्त कर दिए। परन्तु उसने पार्थिया सम्राट की इज्जत न की अपितु फ्रातिस तृतीय ने फुरात नदी को, दोनों साम्राज्यों के सीमा-रेखा मानने के लिए उससे प्रार्थना की। परन्तु पाम्पे ने उसका यह अनुरोध भी स्वीकार न किया। इन कारणों से पार्थिया तथा रोम के आपस के वैमनस्य और भी बढ़ गये।

मिथ्रदत्त षष्ठ का बड़ा शोचनीय अन्त हुआ। कोई उपाय न देखकर उगने आत्महत्या कर ली। उसके मरने पर रोमीय सेना ने बड़ी खुशियाँ मनाईं, क्योंकि रोम साम्राज्य के एक बड़े दुश्मन की समाप्ति इस प्रकार हो गयी।

पार्थिया तथा रोम का प्रथम संघर्ष

पार्थिया सम्राट फ्रातिस तृतीय का निधन उसके दो पुत्रों ने मिलकर, पाम्पे के लौटने के, दो वर्ष के अन्दर ही कर दिया। तब प्रथम पुत्र, मिथ्रदत्त, गद्दी पर बैठा परन्तु उसकी क्रूरता के कारण लोगों ने उसे गद्दी पर से उतार कर उसके छोटे भाई ओरोदीस (Orodes) को पार्थिया सम्राट के पद पर अभिषिक्त किया। मिथ्रदत्त ने विद्रोह किया, परन्तु शीघ्र ही ओरोदीस के द्वारा मारा गया।

५५ ई० पू० में मार्कास लिसिनियास क्रेसस, (Marcus Liciniuis Crassus) सीरिया का रोमीय शासक (Pro-Consul) नियुक्त हुआ। सैन्य-बल से अधिक उसे धन-बल पर विश्वास था, और इसी के द्वारा वह

उन्नति के शिखर पर पहुँचा था। आर्मेनिया का राजा इस समय अर्तावस्दीस (द्वितीय) था जिसने, क्रेसस को, पार्थिया के विरुद्ध, पूरी-पूरी सहायता करने का वचन दिया। दोनों में तै हुआ कि मोर्चे का रास्ता आर्मेनिया के अन्दर से ही हो क्योंकि वहाँ की पहाड़ियों में, पार्थिया के घुड़सवार बिल्कुल बेकार सिद्ध होंगे और रोम की पदातिक सेना के लिए कोई कठिनाई न होगी। परन्तु क्रेसस ने मेसोपोटेमिया के मैदान से ही गुजरना अधिक पसन्द किया क्योंकि उस स्थान से वह परिचित भी था, और वहाँ उसकी फौजी छावनियाँ भी थीं।

पार्थिया सम्राट ओरोदीस ने युद्ध के पहले, क्रेसस को (धन-द्वारा) निरस्त करने के लिए, राजदूत भेजा। परन्तु क्रेसस को अपने ऊपर गर्व था। उसने पार्थिया राजदूत से कहा कि इसका उत्तर 'सैलूसिया' में (फरात नदी के तट पर, सेल्यूकस द्वारा बसाया हुआ शहर) मिलेगा। पार्थिया राजदूत यह उत्तर देते हुए कि, **'आपके सेलूसिया देखने के पहले ही मेरी हथेली पर, बाल उग आयेंगे'**

("Hair will grow on the palm of my hand before you will see Selucia" Sykes, History of Presia, Vol. I, P. 347)
वापस लौट गया।

अब क्रेसस ने युद्ध-यात्रा की। उसकी सेना में, ४२,००० सिपाही थे। उसने फरात नदी के बाएँ किनारे किनारे होकर, ठीक उस जगह पहुँचना चाहा, जहाँ दोनों नदियाँ मिलती हैं, और जो सेलूसिया नगरी के उल्टी तरफ हैं। परन्तु जिस प्रान्त (ओस्रहोनी osrohoene) से वह गुजर रहा था वहाँ के अरब शेख (शासक) ने उसको सूचना दी कि पार्थिया सम्राट ओरोदीस पूरब की ओर भाग गया है। लालच में आकर क्रेसस ने उल्टे पाँव लौटना शुरू किया और मेसोपोटेमिया के पूरब के स्टेपिस मैदान (steppes) की ओर चल पड़ा।

पार्थिया सम्राट, ओरोदीस ने, रोमीय सेना का मुकाबला करने के पहले, आर्मेनिया पर चढ़ाई की ताकि वहाँ का सम्राट आर्ता वासदिस, किसी प्रकार रोमीय सेना की सहायता न कर सके। परिणामस्वरूप दोनों में सन्धि हो गयी, और दोनों वैवाहिक सूत्र में बँध गये।

ओरोदीस की सेना में पैदल और घुड़सवार दोनों प्रकार की सेनाएँ थीं। पार्थिया के घुड़सवार रोमीय घुड़सवारों से अधिक शिक्षित एवं रणकुशल थे। इन घुड़सवारों के भी दो भाग थे (१) हल्के (light Cavalry) (२) भारी (heavy Cavalry)। हल्के घुड़सवारों के पास तीर धनुष थे, और ये तीरों की वर्षा कर शत्रु सेना को चारों ओर से परेशान कर देते थे। ऊँटों पर तीरों का बोझा लदा होता था जो इस सेना के साथ बराबर चलते थे। (३) भारी घुड़सवारों के घोड़े और सवार दोनों के शरीर पर भारी-भारी

वर्म (armour, mail Coat) होता, जिससे वे काफी सुरक्षित होते थे। उनका अस्त्र, एक लम्बा एवं भारी भाला होता था जिसे वे लड़ते समय पंक्तियों में आकर, दुश्मन पर बड़ी जोर से फेंकते थे, और फिर भाग जाते थे। इस प्रकार कभी सामने आकर, और फिर पीछे भागकर, लड़ना, उनका कायदा था जिससे दुश्मन को, थोड़े समय में वे पूर्णतः परास्त कर देते थे।

रोमीय सेना के भी दो भाग थे (१) पदातिक जिनके अस्त्र थे, भाले और तलवार। ये पहले दुश्मन पर भाले फेंकते थे, फिर तलवार हाथों में लेकर उन पर टूट पड़ते थे (२) घुड़सवार। ये काफी शिक्षित थे और इनके पास अच्छे-अच्छे युद्ध घोड़े (war-horse) भी थे।

परन्तु रोमीय पदातिक सेना, उतनी दूर तक भाले नहीं फेंक सकती थी, जितनी दूर तक पार्थिया के हल्के घुड़सवारों के तीर, जो घोड़ों पर दौड़ते हुए ही शत्रुओं पर तीर फेंकते थे। रोमीय घुड़सवार भी, पार्थिया के घुड़सवारों का मुकाबला उस प्रकार नहीं कर सके जितनी उनसे आशा की जाती थी।

पार्थिया तथा रोम का प्रथम-युद्ध कैरी का युद्ध—५३ ई० पू० (Battle of Carrhae).

क्रेसस अपनी फौज के साथ जब कैरी की ओर बढ़ रहा था, उस समय अकस्मात् पार्थिया की सेना उसके सामने प्रकट हुई। पार्थिया-सेनापति-सुरेना (Surena) बड़ा ही बुद्धिमान, चालाक एवं रणनिपुण था। क्रेसस की तरह उसमें पैसे का लालच न था। वह रणक्षेत्र में, शत्रु को पराजित करने में ही अपना पूरा ध्यान लगाता था। उसने, रोमीय कंसाल क्रेसास को इस बात का पता नहीं लगने दिया कि उसकी सेना में कितने सिपाही हैं या वे कितने रण-कुशल हैं या उनके पास कौन-कौन से और कितने अस्त्र-अस्त्र हैं। (उसने बड़ी चालाकी से अपने अस्त्र-शस्त्रों को चमड़े से ढँकवा दिया था ताकि दुश्मन को आसानी से इसका पता न लगे)

रोमीय-सेना चतुष्कोण (Square) आकार में व्यूह बनाकर आगे बढ़ी। पार्थिया की सेना ने, प्रथम मोर्चे में ही भागने का अभिनय किया, और फिर धीरे-धीरे आकर, चारों ओर से रोमीय फौज को घेर लिया। फिर वे, शत्रु पर भयंकर तीरों की बौछार करने लगे। (यही उनके युद्ध करने का विशेष चातुर्य था) रोम के पैदल-सिपाहियों ने आक्रमण करने की चेष्टा की, परन्तु भागते हुए हल्के घुड़सवारों का, वे कुछ न बिगाड़ सके।

क्रेसस ने अपने पुत्र प्लौबियस को आक्रमण करने की आज्ञा दी। इसके पास गौल (Gaul) जाति के घुड़सवार थे। प्लैबियस ने १३०० घुड़सवार और ५०० पैदल और तीरन्दाज फौज को लेकर, पर्थिया की सेना पर आक्रमण

कर दिया। परन्तु पार्थिया-फौज भाग खड़ी हुई, और फिर धूल उड़ाती हुई, भारी घुड़सवारों के साथ, रोमीय सेना पर पुनः आक्रमण किया। गौल-जाति के घुड़सवारों के काफी बहादुरी दिखाने के बावजूद भी, पार्थिया की फौज ने, उन्हें काट डाला।

इस युद्ध में उनका सेनापति प्लौबियस भी, मारा गया। पार्थिया वालों ने उसका सिर काटकर भाले पर लगवाकर चारों ओर घुमवाया। अपने पुत्र की मृत्यु से क्रेसस हतोत्साह हो गया। इतने में शाम हो गयी और दोनों सेनायें अपने-अपने खेमें में लौट गयीं।

दूसरे दिन प्रातःकाल रोमीय-सेना युद्धक्षेत्र परित्याग करते हुए, चल दी। सुरेना ने, अब धोखे से काम लेना चाहा। उसने क्रेसस को सन्धि का प्रस्ताव भेजा। इच्छा न होते हुए भी, सेना के विद्रोह करने पर, क्रेसस ने, सुरेना का प्रस्ताव स्वीकार किया और सन्धि के प्रस्तावों पर हस्ताक्षर करने चल पड़ा। परन्तु सन्धि-स्थल पर पहुँचकर, सुरेना ने छल से उसकी हत्या कर दी।

अब रोम की सेना भाग खड़ी हुई। इस युद्ध यात्रा में, उनकी करीब आधी सेना मारी गयी—दस हजार, फरात नदी के पार भाग गये, और करीब उतनी ही संख्या, कैद कर ली गयी, जो पश्चात् मरजियाना (आधुनिक मर्व) में बस गये और वहाँ के स्थानीय निवासियों से ब्याह शादी कर, उन्हीं में घुल-मिल गये।

पार्थिया सेनापति सुरेना का अन्त

सुरेना को अपनी बहादुरी का पुरस्कार प्राप्त हुआ। सम्राट ओरोदीस ने उसकी बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत होकर, उसे प्राणदंड दे दिया। इस प्रकार एक वीर सैनिक एवं सेनापति की जीवन-लीला समाप्त हुई।

पार्थिया ने इस युद्ध के पश्चात् सीरिया पर भी अधिकार जमाने की चेष्टा की, परन्तु रोमीय-सेनापति कैसोयस की बुद्धिमत्ता से सफल न हुआ। फिर भी इस युद्ध के कारण, पार्थिया की शक्ति और मर्यादा काफी बढ़ गयी और रोम की प्रतिष्ठा में भारी कमी आ गयी।

परन्तु रोम ने पुनः ३८ ई० पू० में, एशिया में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित कर ली। रोमन सेनापति मार्क एण्टोनी के नेतृत्व में, रोमीय सेना ने फिर से सीरिया पर अधिकार कर लिया और सम्राट ओरोदीस का पुत्र तथा पार्थिया-सेनापति पैकोरस इस युद्ध में मारा गया।

सन् ३७ ई० पू० में सम्राट ओरोदीस को उसके बड़े लड़के, फ्रातिस चतुर्थ ने मार डाला और स्वयं गद्दी पर बैठा। उसने अपने नाम के सिक्के चलवाये जिन पर उसके शासन-काल की तिथि भी खुदी हुई थी। यह पहला सम्राट था जिसने अपने सिक्के पर तारीख डलवाई।

इस प्रकार सम्राट ओरोदीस की समाप्ति हुई। कहना असंगत न होगा कि उसके समय में 'टेसीफोन' (Ctesiphon) पार्थिया की राजधानी बनायी गयी थी।

सन् ३६ ई० पू० में मार्क एण्टोनी, पुनः ६०,००० की एक विशाल फौज लेकर पार्थिया को दबाने चला। इस बार उसे आर्मेनिया के सम्राट से भी सैनिक सहायता प्राप्त हुई।

पार्थिया की सेना ने, इस बार भी वही चमत्कार दिखाया जो उन्होंने कैरी के युद्ध में दिखाया था। परन्तु अब की रोमीय सेना ने, उनके तीरों का जवाब, सीसे के गोले (leaden bullets) फेंक कर दिया जो गुलाल (slings) के द्वारा काफी दूर तक फेंके जा सकते थे। साथ ही गैलीय घुड़-सवारों का आक्रमण भी पार्थिया की सेना पर हुआ। तब भी रोमीय सेना पराजित हुई। एण्टोनी ताब्रिज (Tabriz) की ओर, पहाड़ों के रास्ते भाग खड़ा हुआ और पीछे-पीछे धावा करते हुए पार्थिया की फौज के हाथ उसके काफी सिपाहियों को प्राँण गँवाने पड़े। ८,००० सेना, भूख और प्यास तथा सर्दी से तड़प-तड़प कर मर गयी। और ८,००० के प्राण, ताब्रिज के निकट, पार्थिया-फौज के साथ लड़कर खत्म हो गये। बाकी फौज लेकर एण्टोनी भाग निकला।

मार्क एण्टोनी को इस हार से बड़ी लज्जा और ग्लानि हुई। उसने सारा दोष आर्मेनिया-सम्राट अर्तावसदिस पर रक्खा एवं सन् ३४-३३ ई० पू०, आर्मेनिया पर आक्रमण कर उसे कैद कर लिया। फिर उसका कुछ भाग, मीडिया के सम्राट को हस्तान्तरित करते हुए, अपनी प्रिय-पत्नी क्लिओपैट्रा के पास, मिस्र लौट गया।

एण्टोनी के लौटते ही फ्रातिस चतुर्थ ने पुनः मिडिया पर आक्रमण किया और वहाँ पर स्थित रोमीय फौज को पूर्णतः परास्त कर दिया। आर्मेनिया पुनः स्वतंत्र हो गया। परन्तु इस बार एण्टोनी ने चूँ तक न की और पार्थिया को छेड़ना उचित न समझा।

अन्त में (सन् २० ई० पू०) में पार्थिया तथा रोम में सन्धि हो गयी जब कि रोमीय-सम्राट अगस्टसस ने पार्थिया-सम्राट फ्रातिस के पुत्र को वापस कर दिया, और फ्रातिस ने, युद्ध में जीते हुए रोमीय झंडों को (Standard) वापस कर दिया। इस प्रकार पार्थिया तथा रोम का द्वितीय संघर्ष समाप्त हुआ।

इसके बाद पार्थिया तथा रोम दोनों का इतिहास परेशानियों से भरा हुआ है। परन्तु आर्मेनिया के लिए दोनों परस्पर बराबर लड़ते रहे। अन्त में रोमीय सम्राट नीरो (६३-५५ ई० पू०) तथा उसके समकालीन पार्थिया सम्राट वोलोजसीस प्रथम (Vologases I) में यह निश्चय हुआ कि आर्मेनिया

का शासक, पार्थिया-सम्राट का भाई तिरिदत्त ही माना जाय, परन्तु 'मुकुट' यी 'ताज' ग्रहण करने के लिए उसे, रोमीय दरबार में जाना पड़ेगा जहाँ रोमीय-सम्राट नीरो स्वयं उसे 'ताज' पहनावेंगे (यानी सम्राट के पद पर उसे अभिषिक्त करेंगे)। पार्थिया-सम्राट ने यह मान लिया, और उसका भाई तिरिदत्त रोम से आर्मेनिया का सम्राट बनकर लौटा।

इसके बाद पार्थिया का इतिहास अन्धकारमय है। सन् ७५ ई० में, अलानी नामक एक खानाबदोश जाति ने पार्थिया पर आक्रमण किया और लूट-मार कर अपने देश में चली गयी।

पार्थिया-सम्राट बोलोजेसस प्रथम की मृत्यु ७७ ई० में हुई और इसके बाद पार्थिया राज्य कई भागों में बँट गया।

पार्थिया तथा रोम का अन्तिम संघर्ष

पार्थिया तथा रोम का अन्तिम संघर्ष, २१७ ई० में, नीसीबीस (Nisibis) के मैदान में हुआ। उस समय पार्थिया का सम्राट आर्तावेनस (Artabanus) था। इस बार रोमीय सेना की वही हालत हुई, जो कैरो के मैदान में उनकी हुई थी। पार्थिया के वर्मधारी सैनिक, इस समय, ऊँटों पर सवार थे, और उन्हीं के ऊपर से, शत्रुओं पर बराबर भाले फेंकने लगे। दो दिन तक युद्ध चलता रहा, और अन्त में रोमीय सेनापति, मैक्रीनस (Macrinus) को काफी धन देकर, पार्थिया-सम्राट से सन्धि करनी पड़ी। रोम वालों ने सर्वदा के लिए, पार्थिया से संघर्ष करना समाप्त कर दिया और जो कुछ प्रान्त उनके अधिकार में आ गये थे, उन्हीं से वे सन्तुष्ट रहे।

पार्थिया का पतन

सन् २२६ ई. में, पार्थिया सम्राट अर्त्तावेनस (या अर्दवान) के विरुद्ध, उसके अधीनस्थ, फारस के शासक, आर्टा जारक्सस (जिन्हें अर्देशीर भी कहा जाता है) ने विद्रोह किया और होर्मुज (Hormuz) के मैदान में, पार्थिया-सम्राट की सेना को बुरी तरह परास्त किया। इस ऐतिहासिक युद्ध के बाद ही पार्थिया का गौरव-रवि अस्तमित और पार्थिया-साम्राज्य का अवसान हो जाता है।

पार्थिया एवं फारस का चीन से प्रथम सम्पर्क

पार्थिया-सम्राट मिथ्रदत्त द्वितीय (१२४-८८ ई० पू०) के समय में, पार्थिया तथा चीन का प्रथम सम्पर्क स्थापित हुआ। हान-सम्राटों के राजदूत, पश्चिम के सभी देशों में भेजे गये (केवल रोम को छोड़कर), और उनमें से एक, पार्थिया

भी पहुँचा। उसने अपने वर्णन में 'पार्थिया' को 'आनशी' कह कर उल्लेख किया है। उसका कहना है कि, "यहाँ (पार्थिया) पर, चावल, गेहूँ तथा अंगूर पैदा होता है। हरएक शहर दीवारों से घिरा हुआ, सुरक्षित है। और यह एक बहुत बड़ा देश है।" इन राजदूतों ने, सम्राट की प्रतिमूर्ति (effigy) अंकित चाँदी के सिक्कों का भी उल्लेख किया है। उनका यह भी कहना है कि "ये लोग चमड़े पर चिह्न बनाते हैं, यानी लिखते हैं'—आदि आदि।

लौटते समय, ये राजदूत, पार्थिया से उपहारस्वरूप, "बड़े पक्षी के अण्डे हान-सम्राट के लिए ले गये।" ये बड़े पक्षी संभवत: शुतुर्मुर्ग थे (जिनके अंडे बहुत बड़े होते हैं) और उस समय 'लूत' यानी रेगिस्तान में पाये जाते थे।

ऐतिहासिक पटकीर के मतानुसार, फारस तथा चीन के उक्त सम्पर्क की तिथि १२० ई० पू० से ८८ ई० पू० के बीच में है।

फारस एवं चीन का द्वितीय सम्पर्क काल

२५ ई० से २०० ई० माना जाता है। प्राय: एक शताब्दी के पश्चात्, पुन: चीनी राजदूत पश्चिमी देशों को भेजे गये। चीनी-सेनापति पान-चाओ ने ९७ ई० में, अपने विश्वस्त सहायक, कानयींग (Kan Ying) को पार्थिया तथा रोम भेजा। कान-यींग महाशय, हेकाटामपीलस (Hecatompylus) तथा हमादान होते हुए, बैबिलोनिया पहुँचे। फारस की खाड़ी होते हुये, भारतीय महासागर एवं सम्भवत: लाल सागर तथा अकाबा की खाड़ी होते हुये, पेत्रा तथा सीरिया पहुंचने का भी उद्योग किया। परन्तु समय अधिक लगने के भय से उन्हें यात्रा को स्थगित रखना पड़ा।

कान-यींग के परवर्ती राजदूतों ने रोम से व्यापारिक सम्पर्क स्थापित करने की चेष्टा की। परन्तु उन्हें पार्थिया वालों के कारण सफलता न प्राप्त हुई। उनका कहना था कि, "तासिन (Ta-Tsin) यानी रोम के सम्राट, सर्वदा, हान राजवंश के साथ सम्पर्क स्थापित करने के इच्छुक थे परन्तु आनशी (पार्थिया) स्वयं, हान-समय के रेशमी-वस्त्रों का व्यापार चीन से करना चाहते थे। इस प्रकार तासिन के सम्राट को बाधा प्राप्त होती रही, और वे, चीन से, १६६ ई० के पूर्व (यानी सम्राट हवान के शासन काल) तक सम्पर्क स्थापित न कर सके। परन्तु सन् १६६ ई० में, तासिन-सम्राट आनतुन (An-Tun सम्भवत: सम्राट Antonious) ने, जिहनान यानी हिन्द-चीन को हाथी-दाँत, गैंडे के सींग तथा कछुए के खोल (आदि) बहुमूल्य उपहार के साथ, भेजा।

ऐतिहासिक पार्कर का कहना है कि वस्तुत: ये रोम के राजदूत नहीं, परन्तु कुछ रोमीय सौदागर थे जो उक्त उपहारों को लेकर, चीन पहुँचे थे।

जो कुछ भी हो, यह मानना पड़ेगा कि, पार्थिया की केन्द्रीय स्थिति बड़ी ही महत्वपूर्ण थी एवं पूर्व तथा पश्चिम को मिलाने वाली थी। सम्भवत: सुदूर पूर्वीय देशों तक पहुँचने की इच्छा से ही, रोम ने, पार्थिया से इतने युद्ध किये थे।

पार्थिया-साम्राज्य का संगठन , प्रान्तीय शासन-प्रबन्ध एवं सम्राट का स्थान

प्रान्तीय शासन-प्रबन्ध:—समस्त साम्राज्य ११ प्रान्तों में बँटा हुआ था। ये प्रान्त, नाममात्र, पार्थिया-सम्राटों के अधीन थे और उन्हें कर प्रदान करते थे। आंतरिक शासन-प्रबन्ध में, प्रान्तीय शासक तथा जनता स्वतन्त्र थी।

साधारणत:, विजित प्रान्तों के शासन-प्रबन्ध निम्न ढंग से किये जाते थे:—

(१) कुछ विजित प्रान्तों को, उन्हीं के भूतपूर्व सम्राट या राजा के अधीन रक्खा जाता था, जो पार्थिया-सम्राट के अधीनस्थ-राजा (Vassal King) के रूप में कार्य करते थे, जैसे मिडिया अत्रोपतिनि (Media Atropetene) इलीमैस (Elymais), पार्सिस (Persis) तथा अदियाबीनी (Adiabene)।

(२) वे प्रान्त जो क्षत्रप या वितक्ष (Vitaxa) के अधीन थे, जैसे बैबिलोन।

(३) यूनानी नगर-राज्य—जिनकी संख्या काफी थी और जो साम्राज्य भर में फैले हुए थे। अपने स्थानीय तथा आंतरिक शासन-प्रबन्ध (Municipal Government) में बिल्कुल स्वतंत्र थे। इस प्रकार उन्हें और भी कई सुविधाएँ प्राप्त थीं। इस प्रकार के नगर-राज्यों में 'सेल्यूसीस' नगर-राज्य (City State of Seleucis) प्रधान था, जिसकी जनसंख्या करीब १ करोड़ थी और वह एक विस्तृत उपजाऊ भूखंड पर शासन करता था।

(४) यहूदियों के भी अपने-अपने नगर-राज्य थे, जो यूनानी नगर-राज्यों के तरह ही आंतरिक शासन-प्रबन्ध में स्वतन्त्र थे।

इस प्रकार के प्रांतीय शासन-प्रबन्ध की व्यवस्था देखकर कहना पड़ेगा कि पार्थिया के सम्राटों में, हुख्मनीषी वंश के सम्राटों की तरह, साम्राज्य शासन की क्षमता न थी और न तो प्रांतीय शासन-प्रबन्धों में ही ये उनके जैसे कुशल थे। यूनानी नगर-राज्यों को इस प्रकार आंतरिक शासन प्रबन्ध में स्वाधीनता देना, उनकी दुर्बलता का लक्षण है, क्योंकि रोमीय आक्रमण के समय ये नगर-राज्य अक्सर पार्थिया-सम्राट के विरुद्ध भी, रोम को सहायता पहुँचाते थे।

सम्राट का स्थान—राज्य में सम्राट का स्थान बहुत ही ऊँचा था। सम्राट के शरीर को कोई भी आघात पहुँचाने की चेष्टा करना एक भयंकर अपराध समझा जाता था। इस प्रतिष्ठा से लाभ यह हुआ कि कोई भी व्यक्ति, जिसके शरीर में असोशीद वंश का रक्त न हो, मक्कारो से, गद्दी का हकदार न हो सकता था।

शासन-व्यवस्था में सम्राट की सहायता के लिए दो काउन्सिलें थीं—प्रथम तो राज-परिवार के वयस्क सदस्यों की संसद् (Assembly of the adult members of the Royal family) और दूसरी संसद राज्य के धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रधानों की (Spiritual and temporal heads) जिन्हें 'मागी' या 'सोफी' कहा जाता था।

सात कुलीन परिवार (सम्राट के परिवार को लेकर) दरबार में उसी प्रकार प्रतिष्ठित थे, जैसे हुख्मनीषी सम्राट दारा प्रथम के दरबार में। परन्तु सम्राट केवल असीशीद परिवार से ही चुना जा सकता था तथा उसके चुनाव को तभी मान्यता प्राप्त होती थी, जबकि दोनों संसदें उस चुनाव को सहर्ष स्वीकार करती थीं।

चुनाव के पश्चात् सम्राट को मुकुट (Crown) पहनाने का अधिकार, सेनापति या सुरेना को ही होता था, जिसका पद वंशानुगत (hereditary) था।

धार्मिक तथा आध्यात्मिक प्रधान (मागी या सोफी) ही सारे राज्य में सबसे अधिक शिक्षित होते थे। राज्य की सबसे उपजाऊ भूमि उनके अधिकार में थी। उनको विशेष सुविधाएँ प्राप्त थीं और उनका अधिकार काफ़ी विस्तृत था।

साधारण जनता को, सम्राट तक पहुँचने का अधिकार न था। सम्राट की सोने की मूर्ति हरएक शहर में स्थापित थी और लोग उसी को पूजते थे। सम्राट ही केवल 'टायरा' या 'मुकुट' पहन सकता तथा सोने के सिंहासन पर बैठ सकता था। यह अधिकार परम्परा के अनुसार हुख्मनीषी सम्राटों से उन्हें प्राप्त हुआ था।

सेना—सम्राट की अपनी निजी सेना थी (Royal guard)। इसके अलावा युद्ध के समय हरएक प्रान्तीय शासक को, अपनी-अपनी सेना समेत सम्राट की सेवा में उपस्थित होना पड़ता था। पार्थिया की सेना में घुड़सवार (हल्के और भारी) अधिक थे और इसके अभिनव आक्रमण की पद्धति से रोमीय सेना भी काँपती थी (कैरी के युद्ध में पार्थिया की सेना ने, किस प्रकार रोमीय सेना को परास्त किया था, इसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है) परन्तु घेरा डालने के तरीके इन्हें नहीं मालूम थे और न घेरा डालने के उपयोगी यंत्र ही इनके पास थे। मार्क एण्टोनी को परास्त करने के पश्चात् जब एक घेरा-यंत्र (Siege-train) इन्हें प्राप्त भी हुआ तो उसे उन्होंने नष्ट कर डाला।

जहाजरानी तथा मल्लाहगिरी से भी वे उदासीन थे यद्यपि कैस्पियन सागर इनके साम्राज्य के सन्निकट ही था।

पदातिक-सेना भी इनके यहाँ उचित ढंग से सुव्यवस्थित न थी और न तो ये पैदल सेना को अधिक उपयोगी समझते थे। इनकी सेना में जो कुछ बल था, वह था घुड़सवारों का क्योंकि ये लोग स्वभावतः अश्व-प्रेमी थे।

राज दरबार—पार्थिया का राजदरबार जाड़े के दिनों में मैसोपोटेमिया तथा गर्मी के दिनों में मिडिया एवं पार्थिया में होता था। दजला नदी के बाएँ तट पर सेल्यूसीया नगरी के उल्टी तरफ (१) टेसीफोन (Ctesiphon) शहर इनकी शीत-ऋतु की राजधानी थी। (२) मिडिया प्रान्त की राजधानी थी एकबटाना—एवं (३) पार्थिया की प्राचीन राजधानी थी हेकाटोमपीलीस (Hecatomplyus)। संभवत: इनकी चतुर्थ राजधानी—रजिस (Rhages) भी थी जो कि मिडिया मग्ना तथा पार्थिया (हिरसैनिया) को मिलानेवाली सीधी सड़क पर बसी हुई थी। यहाँ पर पार्थिया सम्राटों ने अभिनव राजप्रासाद निर्माण किया था जिसका वर्णन ऐतिहासिक फीलोस्ट्रेटस ने किया है (आगे इसका वर्णन कला कौशल के अन्तर्गत किया गया है।)

सम्राट, उसके दरबारी एवं सेनापति बड़े ठाट-बाट से, विलासी जीवन व्यतीत करते थे। प्रसाधन द्रव्यों का व्यवहार उनमें खूब प्रचलित था। पार्थिया सम्राट अपने को 'राजाओं का राजा' (King of Kings) कहता था।

पार्थिया का समाज एवं सामाजिक अवस्था

स्त्रियों का स्थान—सम्राट स्वयं कई स्त्रियों से विवाह करता था परन्तु उनमें से केवल एक ही राजमहिषी (Chief-queen) होती थी। सम्राट की रखेलों में कई यूनानी स्त्रियाँ भी थीं। स्त्रियों को हरम में, पर्दे के अन्दर रहना पड़ता था। पार्थिया-सम्राटों की यह एक प्रधान विशेषता थी कि वे स्त्रियों एवं हिजड़ों को कभी भी उतना प्राधान्य न देते थे जैसे हुख्मनीषी सम्राट। इसका परिणाम यह हुआ कि उनका दरबार कभी भी रखैल स्त्री एवं हिजड़ों का षड्यन्त्र-स्थल न बन सका।

पोशाक एवं अस्त्र-शस्त्र—पार्थिया वालों की पोशाक मिडियावासियों की पोशाक जैसी थी और वे आधुनिक पठानों जैसा पैजामा (सलवार) पहनते थे। सिर पर चारों ओर एक रिबन (Ribbon) बाँधते थे या मुकुट पहनते थे। इनके बाल घुँघराले थे और ये दाढ़ी भी रखते थे, हालांकि यूनानियों के सम्पर्क में आकर इन्होंने दाढ़ी-मूछें मुड़वाना भी शुरू किया था। युद्ध के समय शरीर पर वर्म (armour) और सिर पर चमकीले लोहे के शिरस्त्राण (helmet) पहनते थे। युद्ध में नियुक्त घोड़ों के साज-बाज भी बड़े ठाट-बाट के होते थे।

इनका अस्त्र-शस्त्र साधारणत: तीर-धनुष, तलवार एवं छुरा होता था। ये बड़े अच्छे तीरन्दाज (archer) होते थे और घोड़ों की सवारी करते हुए भी बहुत दूर तक तीरों का ठीक निशाना लगाते थे। भारी घुड़सवारों का प्रधान अस्त्र, एक मजबूत एवं भारी भाला होता था। इनका निशाना भी बड़ा अचूक होता था।

ऐतिहासिक गार्डनर अशीसीद प्रथम के सिक्के पर दी हुई राजकीय पोशाक का वर्णन इस प्रकार करता है, "सम्राट के सिर पर एक कोणदार (Conical) शिरस्त्राण है, (जो असीरिया के शिरस्त्राण से मिलता जुलता है) जिसमें कान तथा गर्दन की रक्षा के लिए छज्जे (Flaps) लगे हुए हैं। इसके चारों ओर यूनानियों के जड़ाऊ diadem जैसा अलंकार दिखलायी पड़ता है। इनके कानों में बालियाँ (earrings) तथा गले में अलंकार हैं। इनके शरीर पर का वर्म जंजीरदार प्रतीत होता है, जो उनके हाथों को कब्जे तक, और पैरों को घुटने तक ढाँपता है। इसके ऊपर एक लबादा (military cloak) या सैगूम भी पहना गया है। पैरों के जूते, फीतों से बँधे हुए हैं।" (See History of Persia Vol I, P. 368) परवर्ती सम्राट इस जंजीरदार वर्म के स्थान पर, नीचे एक हल्की पोशाक और ऊपर लबादा जैसी एक पोशाक पहनने लगे।

कायदे-कानून तथा नियम:—इनके नियम तथा कानून बड़े कठोर थे और अपराध से कहीं अधिक दंड की मात्रा कभी-कभी हो जाती थी। फारसी तथा यूनानियों के सांस्कृतिक प्रभाव से अवश्य ही इनके नियम तथा कानूनों में कुछ सुधार हो गये। पार्थिया-सम्राटों के सिर पर (diadem) फूलमाला, तथा उपाधियों का प्रयोग (जैसे "King of Kings" उपाधि, यूनानी सम्राटों के Bassileous Bassilion के समान ही हैं), आदि निश्चित यूनानी सांस्कृतिक प्रभाव का परिणाम है।

इनका व्यक्तिगत चरित्र बहुत ऊँचा होता था। ये, अपने कैदियों के साथ, अच्छा बर्ताव करते एवं युद्ध में की गयी सन्धियों के प्रस्तावों को पूरी तरह निभाते थे। इसी प्रकार, किसी व्यक्ति के साथ की गयी प्रतिज्ञा को भी वे पूर्णरूप से पालन करते थे।

आमोद-प्रमोद के साधन:—युद्ध तथा शिकार, इनके जीवन के मुख्य उद्यम थे। नाना प्रकार के जानवर तथा चिड़ियों के शिकार करने में इन्हें बड़ा आनन्द आता था क्योंकि इनका मांस ही, उनका प्रधान खाद्य था। वे हरएक प्रकार के माँस एवं शाक-सब्जियाँ भी खाते थे। इनकी रोटी, बहुत ही नरम, तथा स्वादिष्ठ होती थी, जिसे रोम वाले भी बहुत पसन्द करते थे। पीने के लिए वे खजूर की बनी हुई शराब का प्रयोग करते थे।

इनके आमोद-प्रमोद के अन्य साधन थे, संगीत तथा नृत्य (Music and dance) इनके प्रधान वाद्ययन्त्र थे—बाँसुरी, पाईप तथा ढोलक (drum) महाभोज या दावतों की समाप्ति अक्सर नृत्यों से होती थी। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन के सूक्ष्म रसों से वे सर्वथा वञ्चित नहीं थे।

साहित्य:—पार्थिया वालों का अपना कोई निजी साहित्य न था और न

तो उन्होंने किसी प्रकार के साहित्य या साहित्यकार को जन्म दिया। ऐतिहासिक प्लूटार्क का कहना है कि पार्थिया वाले यूनानी नाटकों के अभिनय बड़े चाव से देखते थे। इससे यह प्रतीत होता है कि निश्चय ही यूनानी भाषा (स्कूलों में) पढ़ाई जाती थी और इसी भाषा के द्वारा पत्रों का आदान प्रदान भी होता था। अतः यूनानी साहित्य का काफी प्रभाव इनके जीवन पर पड़ा था, इसमें संदेह नहीं।

धर्म एवं धार्मिक विश्वास तथा देवता

पार्थिया वालों के धर्म एवं धार्मिक-विश्वासों के तीन उद्गम थे। (१) पूर्वजों की पूजा। इसके अन्तर्गत उन्होंने पार्थिया साम्राज्य की नींव डालने वाले सम्राट आशीसीस प्रथम की पूजा करना प्रारम्भ किया। (२) जरस्थुत्र का धर्म—जिसके कारण इनका विश्वास था कि ओर्मुज्द (अहुर मज्द) यानी सत्य सिद्धान्त तथा द्रुग (यानी मिथ्या सिद्धान्त) का संघर्ष चिरन्तन है। (३) सूर्य-पूजा प्रति दिन पूर्व में उदीयमान सूर्य की पूजा, (उसके प्राचीन नाम मिथ्र से) वे करते थे। वैदिक आर्यों में भी सूर्य पूजा प्रचलित थी और वे सूर्य को मित्र कहते थे। पार्थियावालों का विश्वास था कि सूर्य का सम्बन्ध चाँद से है। मिथ्र पूजा का प्रचलन आगे चलकर सारे रोमीय साम्राज्य में फैल गया और ईसाई धर्म के आगमन के पूर्व सभी रोमीय सम्राट (विशेषतः सम्राट जूलियन) मिथ्र के परम भक्त थे एवं उसकी पूजा एवं प्रतिष्ठा के लिए स्थान-स्थान पर मन्दिर स्थापित किए थे। मिथ्र-धर्म के उक्त विकास एवं प्रचार के कारण आगे दिये जा रहे हैं।

पार्थिया के साधारण लोग अधिकतर अपने पूर्वजों की पूजा से ही सन्तुष्ट थे तथा तंत्र-मंत्र में विश्वास करते थे।

यह हम देख चुके हैं कि तत्कालीन पार्थिया के समाज में पुरोहितों (मागी या सोफी) का किस प्रकार अखंड प्रभाव था। ये पार्थिया-सम्राट के परामर्श देने वाली काउन्सिल के द्वितीय संसद् (House of Lords) के सदस्य थे, एवं नाना प्रकार के अधिकार एवं सुविधाएँ इन्हें प्राप्त थीं। इनकी प्रधान शिक्षाएँ थीं—आग की पवित्रता की रक्षा करना एवं मृतकों को खुला छोड़ देना। ये दोनों ही प्राचीन जरस्थुत्री-धर्म के सिद्धान्त थे।

पार्थिया के सम्राट सभी धर्मों के प्रति उदार थे। और सबको समान रूप से सम्मान प्रदर्शित करते थे। अतः उनके राज्य में, यूनानी तथा यहूदियों के धर्म एवं आगे चलकर ईसाई-धर्म, आदि का पर्याप्त विकास एवं प्रचार हुआ।

सम्राट वोलोजेसस प्रथम ने, राष्ट्रीय धर्म, (जरस्थुत्री धर्म) की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने के लिए, अवेस्ता के बाकी बचे हुए अंशों को एकत्रित कर, संकलित किया। उनके परवर्त्ती-सम्राटों ने भी, जरस्थुत्री-धर्म को ही अधिक

प्रोत्साहन दिया, परन्तु अन्य धर्मावलम्बियों को उन्होंने किसी प्रकार के दंड या कष्ट देने की योजना नहीं बनायी।

परवर्त्ती-सम्राटों के सिक्कों पर यूनानी देवता जैसे, पल्लस, आर्टेमीस, तथा जीयस आदि की मूर्तियाँ बराबर अंकित होती रहीं। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यूनानी-धर्म को अवश्य ही राज-संरक्षण प्राप्त था। परन्तु किसी धर्म की प्रधानता स्वीकार करते हुए भी, उन्होंने अन्य धर्मों को किसी प्रकार हानि नहीं पहुँचायी। अत: पार्थिया-राज्य को हम धर्म-निरपेक्ष राज्य (secular state) कह सकते हैं, जहाँ धर्म-पालन में, सभी को व्यक्तिगत स्वतंत्रता (individual freedom in religion) प्राप्त थी।

कला-कौशल एवं वास्तु-कला का विकास

बैबिलोन, हत्रा, एवं मैसोपोटेमिया के नीफार तथा शेरकत आदि स्थानों में पार्थिया-सम्राटों के विशाल राजप्रासादों तथा महलों के खंडहर पाये गये हैं। अत: फर्ग्यूसन साहब का यह कहना कि, सिकन्दर महान् की विजय से लेकर सासानी-वंश के उदय पर्यन्त, पूर्वी-देशों में वास्तु कला एवं अन्य कलाओं का विकास नहीं हुआ, सर्वथा गलत है। ऐतिहासिक फीलोस्ट्रेटस ने, पार्थिया-सम्राटों के द्वारा निर्मित, बैबिलोन के राजप्रासाद का निम्नलिखित वर्णन दिया है—

"इस राजप्रासाद की छत पीतल की बनी है, जिससे चमकीली रोशनी झलकती रहती है। स्त्री तथा पुरुषों के लिये अलग-अलग कमरे बने हुए हैं। द्वार प्रकोष्ठों (porticoes) पर, चाँदी, सोना या सोने के काम किए हुए, कालीनें मढ़ी हुई हैं, एवं दीवालों से मिलती हुई चित्रों की भाँति प्रतीत होती हैं। कालीनों पर, यूनानी देवी-देवताओं के चित्र बने हुए हैं। एथेन्स पर अधिकार एवं थर्मापोली की लड़ाई, तथा एथेन्स की नहर आदि, चित्रों द्वारा, इन कालीनों पर बनायी गयीं हैं जिन्हें आसानी से देखा जा सकता है। पुरुषों के लिए बने हुए एक कमरे की छत बिल्कुल आकाश जैसी बनी है, जिसमें, आसमानी रंग के नीलम (Sapphires) लगे हुए हैं।" (संभवत: ये नीलम पत्थर, तारों के द्योतक थे)।

आगे इसी का वर्णन देता हुआ फीलोस्ट्रेटस कहता है—"इस स्वर्गीय आकाश में, जिन देवताओं की पूजा की जाती है, उनकी मूर्तियाँ लगी हुई हैं जो तारों जैसा चमकते हैं। इसी कमरे में बैठकर, सम्राट, अपना निर्णय (Judgement) प्रदान करता है। इसकी छत में चार जादू के चक्र (magic wheels) लगे हुए हैं, जो सम्राट को, सर्वदा अविचार (injustice) करने से सावधान करते रहते हैं। इन चित्रों को "देवताओं की जिह्वा" (tongues of the god) कहा जाता है और ये राजप्रासाद के 'मांगी' यानी पुरोहित के द्वारा अपने स्थान पर लगाये गये हैं।"

इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से, पुरोहितों का प्रभाव, सम्राट के न्याय-विधान पर, अवश्य ही पड़ता होगा।

पार्थिया-सम्राटों का दूसरा राजप्रासाद, हात्रा (Hatra) नगर में बना हुआ था, जो दजला तथा फरात नदी के बीच स्थित था। अमीयानस मार्सीलीनस ने ३६३ ई० में, इसे देखने के पश्चात् इसका वर्णन, निम्न प्रकार से किया है:—

"सारा शहर, तीन मील परिधि वाली, एक वृहत् दीवार से घिरा हुआ है, जिसमें स्थान-स्थान पर दृढ़ता तथा मजबूती के लिए बुर्ज (towers) बने हुए हैं। इसके बीच में राजप्रासाद के खंडहर मौजूद हैं। बाहर की दीवार एक चौड़े परिखे के द्वारा सुरक्षित है। राजप्रासाद के प्रधान भवन में सात बड़े-बड़े हाल हैं, जिनका आकार ९० × ४० फुट या ३० × २० फुट है। सभी हाल प्रकोष्ठ के द्वारा बनाये गये थे। इनकी ऊँचाई कई प्रकार की थी। इनका पूर्वी हिस्सा खुला हुआ था जहाँ से प्रकाश आता था।" (Quoted from, P. Sykes, History of Persia, Vol I, p. 371—Tr. by the author.)

श्री साइक्स ने एक विद्वान (Miss Gertrude Bell) की उक्ति (remark) भी, इस राजप्रासाद के बारे में, अपनी पुस्तक में उद्धृत की है। इस महिला का कहना है कि, "इन हालों में कहीं भी स्तंभ (छोटा या बड़ा) नजर नहीं आता।" सिर्फ मेहराब के द्वारा ही इन बड़े-बड़े हालों का निर्माण हुआ है। इस प्रकार विशाल मेहराब (arch) के द्वारा, भवन-निर्माण-कला का प्रभाव सासनी एवं परवर्त्ती मुस्लिम वास्तु कलाकारों (architects) पर भी पड़ा, जिनका पूरा-पूरा उपयोग उन्होंने किया। मस्जिदों के निर्माण में, उन्होंने इसी मेहराब-प्रयोग के चमत्कार को दिखाया है।

इस राजप्रासाद के सामने का भाग ३०० फुट लम्बा था और इन हालों के प्रवेश द्वारों के मेहराबों के ऊपर, पत्थर की मूर्तियाँ (स्त्री और पुरुष दोनों की) बनी हुई थीं। इन मूर्तियों में, यूनानी मूर्ति-कला की छाप स्पष्ट झलकती है।

बेहिस्तून की पहाड़ी के ऊपर भी पार्थिया की मूर्तिकला के कुछ अवशेष पाये गये हैं। इन मूर्तियों के ऊपर प्राप्त, यूनानी भाषा में लिखे हुए शिलालेख से पता चलता है कि उक्त पैनेल, गोटार्जेस (Gotarzes) नामक व्यक्ति के द्वारा निर्मित हुआ था। इस पैनेल के भी दो भाग हैं, बायीं ओर की पैनेल पर कुछ मूर्तियाँ बनी हैं जिसमें अब केवल तीन ही दिखाई पड़ती हैं। दायीं ओर की पैनेल अधिक सुरक्षित है, जिसमें गोटार्जेस अपने शत्रु मेहरडेट्स को पराजित करता हुआ दिखाया गया है। मेहरडेट्स तथा उसके गिरते हुए घोड़े को, एक तीसरा घुड़सवार, संभालता हुआ दिखाई पड़ रहा है। एक और मूर्ति में जिसे साइक्स ने 'पंखयुक्त विजय' कहा है, गोटार्जेस को मुकुट पहनाया गया है।

मुद्रा :—पार्थिया-सम्राटों ने, सोने के सिक्के चालू नहीं किये। इनकी

मुद्रायें दिरहम कहलाती थीं । सम्राट आर्शासीस, के सिक्कों पर, पहली तरफ उसे, यूनानी देवता अपोलो को मस्तक-छटा पर बैठा हुआ, और दूसरी ओर, सिंहासन पर बैठा हुआ दिखाया गया है । प्रायः सभी सम्राटों के सिक्कों पर यूनानी भाषा में, उनकी पदवियां खुदी हुई हैं, परन्तु सम्राट बोलोजेसस पञ्चम, अर्टाबानस पञ्चम तथा अर्त्तावासदीस के सिक्कों पर, यूनानी तथा पहलवी, दोनों भाषाएँ पाई जाती हैं । सम्राट आर्टासीस ने केवल "राजा" की पदवी, अपने सिक्कों पर खुदवायी। परन्तु सम्राट फ्रातिस प्रथम ने "महान् सम्राट" तथा मिथ्रदत्त प्रथम ने, "सम्राटों के सम्राट", आदि महान् पदवियाँ ग्रहण कीं । इन सिक्कों के एक तरफ, सम्राट की मूर्ति दिखलायी पड़ती है ।

श्री गार्डनर का कहना है कि, पार्थिया के सिक्कों को दो भागों में बाँटा जा सकता है, एक तो वह विभाग जिसमें चाँदी के दिरहम और कुछ ताँबे के सिक्के हैं। दूसरे विभाग में, चाँदी के दिरहाम और ओबोल (obol) तथा ताँबे के सिक्के हैं । इसमें प्रथम विभाग के सिक्के, यूनानी नगरों में बनते थे और दूसरे उन स्थानों पर जो पार्थिया के फौजी सदर शहर (Garrison Towns) थे।

ईरानी संस्कृति का यूरोप पर प्रभाव एवं मिथ्री-धर्म का प्रचार :—

हुख्मनीषी-वंश के सम्राट आर्टाजारक्सस द्वितीय के समय से मित्र (मिथ्र या सूर्य) की पूजा ईरान में कैसे प्रचलित हुई इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। मिथ्र या मित्र अर्थात् सूर्य की महिमा, अवेस्ता एवं वेद, दोनों में गायी गयी है । वेद में, इन्द्र, मित्र तथा वरुण, तीन शक्तिशाली देवताओं के सम्बन्ध में अधिकांश ऋचाएँ पाई जाती हैं । अवेस्ता में, मित्र या मिथ्र की स्थिति, सत्य तथा आलोक के प्रतीक, अहुर-मज्द तथा मिथ्या एवं अन्धकार के प्रतीक अहिरमन, के बीच में मानी गयी हैं। मिथ्र प्रकाश के देवता (God of light) माने गये हैं—और चूँकि प्रकाश से गर्मी प्राप्त होती है एवं इसी गर्मी के कारण धन-धान्य में वृद्धि होती है अतः मिथ्र-देव, धीरे-धीरे धन-धान्य (fertility and prosperity) के भी देवता माने जाने लगे । सम्राट आर्टा जारक्सस के संरक्षण में, उन्हें विजय के देवता (अतः सम्राटों के प्रधान देवता) के रूप में पूजा जाने लगा । हर महीने का ७वाँ तथा १६वाँ दिवस मिथ्र-देव की पूजा के लिए पवित्र-दिवस था। पार्थिया के सम्राटों ने भी मिथ्र-देव को ही अपना-अपना उपास्य-देव माना जैसा कि उनके कई सम्राटों के नाम (मिथ्रदत्त) से प्रतीत होता है।

फारस की राज्य-वृद्धि के साथ-साथ, मिथ्र-पूजा में भी वृद्धि हुई । बैबिलोनिया में इनकी तुलना, शमश देवता यानी सूर्य-देव से की गयी । सिकन्दर महान् की मृत्यु के पश्चात्, कैथेडेसिया, आर्मेनिया, पीण्टस् तथा क्रोमागिनी आदि राज्यों में, जिन राजवंशों की स्थापना हुई, वे सभी अपने को हुख्मनीषी

सम्राटों के वंशधर कहने लगे, एवं ईरानी देवताओं को पूजने लगे। इन्हीं के साथ, मिथ्र-देव की पूजा भी, इन राज्यों में जोर-शोर से प्रचलित हो गयी।

काफी दिनों तक, एशिया के बाहर, इनकी पूजा का प्रचलन न हो सका। यूनानियों ने कभी इस ओर ध्यान नहीं दिया, यद्यपि यूनानी भास्कर्य (Sculpture) ने ही प्रथम मिथ्र की उभरी हुई मूर्तियाँ (bas relief) बनायीं, जिनकी तुलना उन्होंने, अपनी हेलोओसदेव यानी सूर्य-देव से की।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि, प्रसिद्ध रोमीय सेनापति पाम्पे के द्वारा, जो सिलीसिया के समुद्री डाकू, कैद होकर, रोम लाये गये थे, उन्हीं के द्वारा, मिथ्री-धर्म का प्रचार, प्रथम रोम में हुआ। पहले तो केवल निम्न-श्रेणी के लोग ही मिथ्र की पूजा करते थे। ईसा की प्रथम सदी के अन्त में, रोमीय सैनिक, सौदागर एवं व्यापारी, तथा गुलामों में इस धर्म का बहुत प्रचार हो गया। द्वितीय सदी (2nd. C. B.P.) से रोमीय सम्राटों ने, मिथ्र को अपना उपास्य-देव मान लिया और फिर तो इसका प्रचार सारे रोमीय साम्राज्य में, जर्मनी तथा इंगलैण्ड, पर्यन्त हो गया। यत्र-तत्र, मिथ्र-देव के मन्दिर बनने लगे, जिन्हें रोम वाले, 'मिथ्रिया' (Mithraea) कहते थे।

परन्तु ईसाई-धर्म के अभ्युत्थान के साथ-साथ इस धर्म को बड़ा धक्का लगा। सम्राट कान्स्टेन्टाइन ने इस धर्म के मानने वालों को समूल नाश करने की भरसक चेष्टा की। पुनः यद्यपि, थोड़े ही समय के लिए, सम्राट जूलियन के प्रोत्साहन से, यह धर्म फिर एक बार जगमगा उठा, तथापि सम्राट थियोडोर महान् (३९४ ई०) ने, अपने समय में, यूरोप में, इस धर्म का समूल-नाश कर दिया, और यूरोप से, यह धर्म, सदैव के लिए समाप्त हो गया।

किंवदन्ती के अनुसार, मिथ्र का जन्म, आश्चर्यजनक ढंग से, किसी चट्टान (अथवा पहाड़ी) से हुआ और पैदा होते ही उसने सब जीवों पर अधिकार प्राप्त करना प्रारंभ किया। उसने ओर्मुज्द-देव के 'पवित्र बैल' को संघर्ष में परास्त कर, बलिदान कर दिया। इस मृत बैल से, 'विश्व का जीवन' उत्पन्न हुआ। शिला-चित्रों में मिथ्र को, इस पवित्र बैल को मारते हुए दिखाया गया है। उसी चित्र में, एक कुत्ता, उसे नीचे घसीटने के लिए दौड़ रहा है, और साँप (विश्व का प्रतीक) उस बैल का खून पी रहा है—अर्थात् उस बैल के पवित्र खून से, उपजाऊ बन रहा है।

इस धर्म में दीक्षा प्राप्त करने वालों को कठोर रीति-रिवाज का पालन, आत्म-संयम, एवं अति शुद्ध नैतिक जीवन बिताना पड़ता था। सच्चरित्र तथा सद् व्यक्तियों के लिए, मृत्यु के पश्चात्, सदैव के लिए, सुख और आराम का जीवन प्राप्त होता था। जरस्थुत्री धर्म की भाँति, इस धर्म का भी विश्वास था, सत्य, साहस, एवं शुद्धता (शुद्ध नैतिक आचरण) आदि के द्वारा ही, बुराई के साथ, शाश्वत-संघर्ष में, मानव विजयी हो सकता है।

इन विचारों तथा विश्वासों के कारण, मिथ्र-धर्म बहुत शीघ्र, रोम तथा यूरोप के अन्य भागों में इतना जनप्रिय हो सका। अपितु, ठंड प्रदेश होने के कारण, प्रकाश एवं गर्मी देने वाले मित्र-देव की पूजा, यूरोप वालों को और भी जँच गयी। इस धर्म का प्रभाव, ईसाई-धर्म पर भी पड़ा। ईसाइयों में रविवार के दिन छुट्टी मनाने की प्रथा, मिथ्र-देव का जन्म-दिवस-रविवार—(रवि अर्थात् सूर्य) मनाने से ही ग्रहण की गयी। मकर संक्रान्ति (जब सूर्य दक्षिण से उत्तर की ओर जाना शुरू करता है) दिवस का पालन भी मिथ्री धर्म के मानने वाले करते थे। जिससे २५ दिसम्बर (मकर-संक्रान्ति काल) को, ईसाइयों ने भी, बड़ा दिन (X'Mas day) मानना शुरू किया।

इस प्रकार अपने नवीन दार्शनिक सिद्धान्त, मृत्यु के पश्चात् सुखी जीवन, कठोर आत्म-संयम, तथा शुद्ध नैतिक जीवन, मिथ्र के मन्दिरों में, दो मशालों के साथ मिथ्र की त्रिमूर्ति, मन्दिर में पवित्र जल, तथा मन्दिर में सर्वदा जलती हुई पवित्र अग्नि, मिथ्र की पूजा के ढंग, आदि रोम तथा यूरोप वालों को बड़ा हृदयग्राही प्रतीत हुआ। और यही मिथ्री-धर्म के बहुत प्रचार का कारण था।

अध्याय | ८

सासानी-राजवंश (२२६-६२६ ई०)

पिछले अध्याय में बताया जा चुका है कि अन्तिम पार्थिया सम्राट अर्टाबिनस (अर्दवान) के विरुद्ध उसके अधीन फारस के शासक आर्टाजारक्सस या अर्दशीर ने विद्रोह किया और होर्मूज़ के युद्धक्षेत्र में, २२६ ई० को, पार्थिया-सम्राट को पूर्णतः परास्त करते हुए, स्वतंत्र शासक बन बैठा। यही अर्दशीर, ईरान में, सासानी राजवंश का संस्थापक माना जाता है। इस वंश के अधीन, ईरान को फिर से वह गौरव प्राप्त हुआ, जो उसे हुख्मनीषी सम्राटों के अधीन प्राप्त हुआ था।

अर्दशीर ने, होर्मूज़ के युद्ध के प्रारम्भ में ही, करमान-प्रान्त को अपने अधीन कर लिया था। इसी पर पार्थिया-सम्राट ने क्रुद्ध होकर उस पर आक्रमण किया। परन्तु द्वितीय दिन के युद्ध में अर्दशीर विजयी हुआ और सम्राट अर्दवान युद्धक्षेत्र में मारा गया।

सासानी कुल की दैवी उत्पत्ति के सिद्धान्त

इसके पूर्व कि अर्दशीर के पूर्वी अभियान एवं रोम के साथ संघर्ष का वर्णन किया जाय, यह बता देना उचित है कि सासानी-कुल की उत्पत्ति कैसे हुई और इस कुल ने 'दैवी अधिकार' (Divine Right of Kings) की स्थापना ईरान में किस प्रकार की।

ईरान के वीर-काल में रुस्तम और ईस्फन्दीर दो महान् वीर हो गये हैं। इन दोनों की लड़ाई में रुस्तम द्वारा ईस्फन्दीर मारा गया। ईस्फन्दीर का एक लड़का, बहमन था, जिसे सम्राट आर्टाजारक्सस लंगीमैनस (Artaxarxes Longimanus) भी कहा जाता है।

महान् कवि फिरदौसी के महाकाव्य 'शाहनामा' के अनुसार, बहमन ने अपनी बहन, हुमाई से विवाह किया, जिससे उसका लड़का दारा पैदा हुआ। बहमन का भाई सासान इस पुत्र के जन्म से, निराश होकर कुर्दिस्तान की पहाड़ियों की ओर चला गया और चरवाहे का जीवन बिताने लगा।

इस समय (फिरदौसी के अनुसार) ईरान, २४० राज्यों में विभक्त था, जिसका प्रधान अर्दवान था। उसके अधीन, पापक, फर्स (पारस) राज्य में शासन कर रहा था। सासान इसी का चरवाहा था। एक दिन पापक ने स्वप्न में देखा कि सासान के मस्तक पर सूरज चमक रहा है जिससे सारे विश्व में प्रकाश फैल गया है। दूसरे दिन स्वप्न में उसने देखा कि सासान एक सफेद हाथी पर बैठा हुआ, लोगों का आशीर्वाद तथा खिराज ग्रहण कर रहा है। तीसरे दिन स्वप्न में उसने देखा कि सासान के घर में 'पवित्र अग्नि' जल रही है और विश्व को आलोकित कर रही है। इन स्वप्नों से प्रभावित होकर, पापक ने, सासान को बुलवाकर उसे राजकीय पोशाक से सुशोभित किया एवं अपनी लड़की की शादी उससे कर दी। इन्हीं की संतान अर्दशीर था।

एक और किंवदन्ती के अनुसार, जब अर्दशीर वयस्क (Mature) हुआ तो, सम्राट अर्दवान की एक प्रेमिका को लेकर, दरबार से भाग गया। सम्राट अर्दवान ने पीछा किया, परन्तु यह जानकर कि, दोनों हवा की तेजी से भागे जा रहे हैं और एक 'मेढ़ा' (ram) उनके पीछे-पीछे भागा जा रहा है, उन्होंने उसे 'दैवी प्रेरणा' समझा और पीछा करना छोड़ दिया।

यद्यपि इन किंवदन्तियों की ऐतिहासिक सत्यता में संदेह है तथापि इनके अनुसार, सासानी राजकुल ने अपने 'दैवी-अधिकार' को स्थिर कर दिया, और प्रजाओं ने भी सहर्ष इसे स्वीकार किया।

जो कुछ भी हो, अर्दशीर इस प्रकार प्राचीन हुख्मनीषी-वंश से अपना सम्बन्ध स्थापित करते हुए, अब विजय-अभियान को निकल पड़ा। और चूँकि, ईरान के लोग अब भी हुख्मनीषी वंश को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे, अतः उन्होंने सहर्ष अर्दशीर (जो हुख्मनीषी कुल का ही था) को स्वीकार किया तथा सहायता प्रदान की।

अर्दशीर सासान का पूर्वी अभियान

मुस्लिम ऐतिहासिक, अबु जाफर तबारी के अनुसार, अर्दशीर ने खुरासान, मर्व, बल्ख तथा रकीब इत्यादि देशों के सीमावर्ती प्रांतों को जीतने के पश्चात्, कुशान, तुरान तथा मक्रान के नरेशों के भेजे हुए राजदूतों से भेंट की। ऐतिहासिक फरिश्ता के अनुसार, अर्दशीर ने भारतवर्ष पर भी आक्रमण किया, परन्तु सरहिन्द पहुँचने पर, वहाँ के शासक जूना ने उसे सोना-चाँदी, बहुमूल्य हीरे, जवाहरात, हाथी आदि देकर उससे फारस लौटने का आग्रह किया। संभवतः इसी घटना की स्मृति में, उसने कुशान मुद्राओं की उल्टी तरफ, अग्नि-वेदी का अंकन किया, क्योंकि इस प्रकार का एक पीतल का कुशानी सिक्का पाया गया है, जिसकी उल्टी तरफ एक वैसी ही अग्नि-वेदी बनी है, जैसी कि उसके सिक्कों

पर पायी जाती है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि उसने पंजाब से खिराज (tribute) वसूल किया था।

अर्दशीर एवं रोम

अर्दशीर के समय से, ईरान और रोम का संघर्ष पुनः प्रारम्भ हो गया और इस वंश के शासन-काल तक चलता रहा।

अर्दशीर ने, २२८ ई० में फरात नदी पार करते हुए, रोमीय शक्ति का सामना करने का निश्चय किया। उस समय रोमीय सम्राट सीवीरस अलेक्जण्डर (Severus Alexander) था। उसने अर्दशीर को समझाते हुए पत्र भेजा। परन्तु अर्दशीर ने इस पत्र का उत्तर, ४०० सुन्दर शरीर के पारसियों को, (जो सोने की वेश-भूषा एवं अस्त्रों से सुसज्जित थे) रोमीय दरबार में, अपने 'विशेष-संवाद' के साथ भेजा, जिसे पाकर रोमीय सम्राट इतना क्रुद्ध हुआ कि उसने तुरंत, उन ४०० राजदूतों को कैद कर लिया और उन्हें युद्ध-बन्दी के रूप में, राजधानी में रुकवा लिया। अब उसने, अर्दशीर पर आक्रमण करने की योजना की।

सन् २३१ में, रोमीय सेना, सीरिया की राजधानी अन्तिओक (Antioch) में एकत्र हुई। रोमीय सेना, तीन भागों में विभक्त होकर, उत्तर की ओर से मिडिया अत्रोपातिनी (Media Atropatene) तथा दक्षिण की ओर से सूसियाना (Susiana) पर आक्रमण करने के लिए चल पड़ी। तीसरी वाहिनी, सम्राट के नेतृत्व में, फारस के मध्य भाग पर आक्रमण करने के लिए अग्रसर हुई। उत्तर की सेना को प्रारंभिक सफलता प्राप्त हुई परन्तु लौटते समय उसे गहरा नुकसान उठाना पड़ा। दक्षिण की रोमीय-वाहिनी को, अर्दशीर ने पूर्ण परास्त करते हुए भगा दिया। इस वाहिनी की पराजय एवं उत्तरी वाहिनी के नुकसान की खबर सुनकर रोमीय सम्राट ने, पूरी फौज को पीछे हटने का आदेश दिया। सन् २३२ ई० में, दोनों में सन्धि हो गयी और रोमीय फौज, ईरान विजय की दुराशा त्यागकर, अपने देश को लौट गयी।

इसके पश्चात्, अर्दशीर ने, आर्मेनिया पर भी आक्रमण किया। आर्मेनिया के सम्राट खुसरो (Chosroes) ने, पिछली लड़ाइयों में, रोमीय सम्राट की सहायता की थी। वह बड़ा चतुर था और उसने सुरक्षा का इतना सुन्दर बन्दोबस्त किया कि, अर्दशीर की घुड़सवार सेना उसका कुछ न बिगाड़ सकी। अंत में, अर्दशीर ने अपने एक दर्बारी के द्वारा, धोखे से उसे मरवा डाला। तब अर्दशीर ने आर्मेनिया पर आक्रमण किया परन्तु खुसरो का लड़का बच कर भाग निकला। जो कुछ भी हो, आर्मेनिया के अधिकार से, अर्दशीर की शक्ति दृढ़ता से, फारस (विशेषतः एशिया में) में जम गयी।

जरस्थुत्री-धर्म की पुनर्स्थापना

पार्थिया सम्राटों के शासन-काल में, जरस्थुत्री-धर्म का प्राय: अवसान हो गया था क्योंकि इन सम्राटों ने, चाँद तथा सूरज एवं अन्यान्य देवी-देवताओं को पूजना प्रारम्भ किया था। फलत: जरस्थुत्री-धर्म को बड़ा धक्का लगा, मागी-पुरोहितों की इज्जत कम हो गयी एवं अग्निवेदी (fire-altars) नष्ट-भ्रष्ट हो गये। अर्दशीर ने पुन: इस प्राचीन धर्म की स्थापना की, अग्निवेदियों का संस्कार तथा नवीन वेदियों का निर्माण करवाया, एवं मागी पुरोहितों को, भूमि तथा दान देकर, उनको समाज में पुन: प्रतिष्ठापित किया। इनके लाभ के लिए उसने एक प्रकार का कर (tax or tithe) भी लोगों पर लगाया। इस प्रकार फारस वाले फिर से जरस्थुत्री धर्म के अनुयायी हो गये। सम्राट अर्दशीर ने, मागी-पुरोहितों का एक अधिवेशन बुलवाया जिसमें सात पुरोहित (जो सबसे अधिक पवित्र माने गये) चुने गये। इन सातों ने मिलकर अपना प्रतिनिधि चुना जो 'अर्द-विरफ' या 'मोबेंद' कहलाया। यह निर्वाचित पुरोहित स्नान आदि करने के पश्चात्, एक प्रकार की नशीली वस्तु पीकर सो गया, और सात दिन तक सोता रहा। सम्राट और उसके सात दरबारी उसकी देखरेख करते रहे। जगने पर उसने सम्राट तथा दरबारियों को 'ओर्मुज्द' (अहुरमज्द) की वाणी सुनाई, जो एक लेखक लिखता गया। पश्चात् इन वाणियों को, (authoritative) पुरोहित तथा जनता द्वारा 'महान् सत्य तथा अधिकारपूर्ण' माना गया।

इस प्रकार इन पुरोहितों को अपना सहायक बनाकर, सम्राट् ने जनता पर अपना एकच्छत्र अधिकार स्थापित किया। 'एक धर्म, एक राष्ट्र, एक सम्राट्', की नीति सफल हुई।

परन्तु इन पुरोहितों ने दूसरे धर्म के साथ अनुदारता का व्यवहार किया। धार्मिक अन्ध-विश्वास से प्रेरित होकर इन्होंने ईसाई धर्म को फारस से निकालने की भरसक चेष्टा की।

सम्राट् अर्दशीर की शासन-व्यवस्था एवं चरित्र

सम्राट् अर्दशीर ने, हुख्मनीषी सम्राट् दारा प्रथम की भांति केन्द्रीय सरकार को शक्तिशाली बनाया एवं एक स्थायी राजकीय सेना निर्माण की और उसके संचालन तथा शिक्षा के लिए अफसर नियुक्त किए। उसका विश्वास था कि **"सेना के बिना शक्ति-स्थापना नहीं हो सकती, धन के बिना सेना नहीं हो सकती, खेती के बिना धन-प्राप्ति नहीं हो सकती, और बिना न्याय के खेती नहीं हो सकती"**—

("There can be no power without an army, no army without money, no money without agriculture, and no agri-

culture without justice." Vide History of Persia, Vol. I by P. Sykes, p 397. Tr. by the author himself)

अतः इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि सम्राट् अर्दशीर धर्म-प्रिय, न्याय-प्रिय, उदार तथा दूरदर्शी-सम्राट् था और वह सर्वदा प्रजा की भलाई में लगा रहता था। मृत्यु के समय वह अपने पुत्र शापूर (Shapur) को यह उपदेश देता गया, **"अग्नि-वेदी (अर्थात् धर्म) तथा सिंहासन को एक समझना ताकि वे सदैव एक दूसरे को सहारा देते रहें। जो सम्राट् अधार्मिक है, वह अन्यायी तानाशाह है।"**

("Consider the altar and the thrown inseparable; they must always sustain one another. A sovereign without religion is a tyrant." Vide P. Sykes History of Persia, Vol. I, p. 398—Tr. by the author himself)

दूसरा उपदेश और भी सुन्दर है, **"तुम्हारा शासन-प्रबन्ध इतना सुन्दर तथा न्यायपूर्ण हो कि, तुम्हारी प्रजा, जिनकी रक्षा हेतु भगवान ने हमें भेजा है, सदैव तुम्हें और हमें स्मरण करते हुए, आशीर्वाद देती रहें"**—

("May your administration be such as to bring the blessings of those whom God has confided to our parental care upon both your memory and mine."—Vide P. Syke's History of Persia—Vol I, p. 398—Tr. by the author himself).

शापुर प्रथम (२४० ई०–२७१ ई०)

सम्राट् अर्दशीर की मृत्यु (२४० ई०) के उपरान्त उसका लड़का शापूर प्रथम ईरान के सिंहासन पर बैठा। उसके समय भी रोम के साथ ईरान का संघर्ष बराबर जारी रहा और इन्हीं एक लड़ाई में (२६० ई०) उसने रोमीय सम्राट् वेलेरियन को बन्दी बना लिया। इसीलिए उसे Shapur I, Captor of Valerian भी कहा जाता है। रोमीय सम्राट् को कैदी के रूप में, शेष जीवन, ईरानी-सम्राट् शापूर प्रथम के दरबार में बिताना पड़ा।

इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना का प्रभाव निश्चय ही सारे यूरोप पर पड़ा होगा और इसमें सन्देह नहीं कि इस घटना से, सासानी कुल की गौरव और शक्ति-वृद्धि एक ही साथ हो गयी। इस ऐतिहासिक घटना का उभरा चित्र (bas relief), नक्शे-रुस्तम में पाया गया है, जिसमें सम्राट् शापूर प्रथम, घोड़े पर सवार है और सम्राट् वेलेरियन नतजानु हो, उसके घोड़े के सामने उपस्थित है।

इसके पश्चात् सम्राट् शापूर ने शीघ्र ही एशिया-माईनर पर अपना पूर्ण अधिकार जमा लिया परन्तु विजितस्थानों पर अपना शासन-प्रबन्ध न स्थापित कर सका। अतः केपोडोसिया तथा सीरिया त्याग कर वह वापस चला आया।

सम्राट् शापूर प्रथम के समय की दूसरी उल्लेखनीय घटना है, पामीरा के शासक ओडेनथस (Odenthus of Palmyra) तथा उसकी पत्नी जेनोबिया से सासानी-सम्राट् का युद्ध। रेगिस्तान के बीच में बसे होने के कारण ओडेनथस की सेना ने ईरानी सेना को काफी परेशान किया। २६३ ई० में उसने फरात नदी पार करते हुए, मैसोपोटेमिया पर भी आक्रमण किया, शापूर प्रथम को युद्ध में पराजित किया और टेसीफोन (ctesiphon) को भी घेर लिया। इस प्रकार सीरिया तथा मेसोपोटेमिया पर उसने अधिकार स्थापित कर लिया। अगर हत्यारे के द्वारा उसके जीवन का अन्त न होता तो वह शापूर प्रथम के लिए अवश्य ही एक समस्या बन जाता और फारस तथा रोम के बीच एक स्वतन्त्र राष्ट्र स्थापित कर लेता।

उसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी विधवा पत्नी जेनोबिया ने शासन-भार सम्भाला और मिस्र को अपने राज्य में मिला लिया। परन्तु रोमीय सम्राट् औरेलियन से अनबन होने के कारण, उसे युद्ध करना पड़ा, जिसमें वह पराजित हुई और सोने के जंजीर में बाँधकर रोम भेज दी गयी। इस प्रकार पामीरा राज्य का अन्त हुआ और फारस तथा रोम की सीमाएँ फिर एक दूसरे से टकराने लगीं।

शापूर के सार्वजनिक काम

सम्राट शापूर ने केवल अपनी विजय-कृतियों से ही सम्मान लाभ नहीं किया, अपितु उसने कई सार्वजनिक कार्य भी किये। कारुन नदी की बाढ़ रोकने के लिये, उसने शुस्तर (Shuster) में बाँध बनाया, और नदी के रुख को, एक कृत्रिम नहर के द्वारा बदल दिया। यह नहर अब भी, आबेगर्गर के नाम से, मौजूद है। उपरोक्त बाँध, ग्रेनाईट पत्थर का बना हुआ है, और पानी के बहाव को नियंत्रित करने के लिये, इसमें छोटे-छोटे फाटक (Sluice gates) लगे हैं। इस बाँध के निर्माण में उसने सम्भवतः रोमीय बन्दी सैनिकों को लगवाया था क्योंकि इस बाँध का नाम अब भी, 'बाँधे कैसर' (कैसर, रोमीय सम्राटों की उपाधि है) है।

सम्राट शापूर ने दो शहरों का निर्माण करवाया जिनके नाम, बिशापुर तथा निशापुर हैं। बिशापुर, बुशायर तथा शीराज के बीच स्थित था और निशापुर, खोरासान प्रान्त का प्रधान शहर था।

धर्म-याजक मानी का आगमन

सम्राट शापूर प्रथम के समय की अन्य उल्लेखनीय घटनाओं में, नवीन धर्मयाजक मानी का उत्थान है। ऐतिहासिक अलबेरुनी के अनुसार, इस व्यक्ति

का जन्म, २१५ या २१६ ई० में हुआ था, और जन्म से यह एक पैर का लँगड़ा था। शापूर प्रथम के राज्याभिषेक के समय इसने, सम्राट को अपना धार्मिक सिद्धान्त सुनाया, जिससे सम्राट काफी प्रभावित हुआ और अपने दरबार में उसे स्थान दिया।

कुछ दिन तक सासानी दरबार में, मानी का बहुत आदर रहा। फिर वह सम्राट की नजरों से गिर गया और उसे राज्य से निकाला गया। तब उसने विश्व-भ्रमण प्रारम्भ किया, और भारतवर्ष, तिब्बत तथा चीन में भी चक्कर लगाये।

सम्राट शापूर प्रथम की मृत्यु (२७२ ई०) होने के उपरान्त, मानी पुनः फारस लौट आया। सम्राट शापूर के उत्तराधिकारी, सम्राट होर्मुज्द (Hormisdes) ने उसका बड़ा स्वागत किया, और अपने दरबार में उसे श्रद्धापूर्वक स्थान दिया। अब मानी, स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी धार्मिक शिक्षाओं का प्रचार करने लगा, विशेषतया उसने मैसोपोटेमिया के ईसाइयों के अन्दर खूब प्रचार किया। शीघ्र ही उसने 'मानी-सम्प्रदाय' की स्थापना की, और बड़ी शीघ्रता से उसका प्रचार बढ़ गया।

परन्तु दुर्भाग्यवश, सम्राट होर्मुज्द केवल एक वर्ष ही जीवित रहा। उसके परवर्त्ती सम्राट बहराम प्रथम ने, उससे बिगड़ कर, उसे पकड़वाया और (ऐतिहासिक अलबेरुनी के अनुसार) उसे मार कर चमड़े उधरवा डाले, और उसमें घास भर कर, गुन्दीसापुर शहर के फाटक पर, टँगवा दिया। यह फाटक अब भी (उस घटना के पश्चात्) 'मानी का फाटक' नाम से विख्यात है।

मानी तथा जरस्थुत्र के धर्म में महान् अन्तर था। जरस्थुत्री धर्म, भौतिक एवं सांसारिक विचारों एवं भावनाओं से भरा हुआ था। यह धर्म, लोगों को उपवास करने से मना करता था और अपने अनुयायी को "खूब फूलो और फलो" (be friutful and multiply) की शिक्षा देता था। साधारण रूप में शुद्ध तथा नैतिक जीवन बिताते हुए, जरस्थुत्री धर्म, गृहस्थाश्रम (family life) पालने का उपदेश देता था।

परन्तु मानी का यह विचार था कि, "यह जगत मायावी है, एवं बुराई से भरा हुआ है। अतः विवाह करना एवं वंशवृद्धि करना, दोनों ही बुरे कर्म हैं।" कहना असंगत न होगा कि मानी के ये विचार, भारत के शंकराचार्य के समान ही हैं, जिन्होंने 'ब्रह्म को सत्य, एवं जगत को मिथ्या' कहा है (ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या) मानी के विचारों में, 'प्रकाश तथा अन्धकार के मिश्रण से ही इस संसार का जन्म हुआ है, और प्रकाश तथा अन्धकार का यह मिश्रण ही बुराई से भरा हुआ है। इन बुराई तथा शैतानी-शक्तियों के क्रिया-कलाप के कारण विश्व का सामूहिक पतन होगा, प्रकाश का पुनर्जागरण होगा और अन्धकार से, सदैव के लिए उसका सम्बन्ध छूट जायेगा।'

मानी की मृत्यु के उपरान्त भी, उसका धर्म तथा सिद्धान्त का प्रचार शताब्दियों तक बढ़ता गया और मध्य-एशिया तथा तिब्बत पर्यन्त इसका विस्तार हो गया। इसका केन्द्र, प्रथम बैबिलोन और फिर समरकन्द था। और इन केन्द्रों का परिचालन एक 'पोप' के द्वारा होता था। मानी-सम्प्रदाय वालों का यह विश्वास था कि, ईसाई-धर्म के प्रचारक हजरत ईसामसीह का कोई भौतिक शरीर न था।

यूरोप में, खास कर दक्षिणी फ्रांस में, इस धर्म का खूब प्रचार रहा। १२०९ ई० में, साईमनडि मानको ने, इस धर्म के अनुयायिओं के विरुद्ध जिहाद की घोषणा की। ईसाई-धर्म-प्रचारक सेण्ट आगस्टाईन, ईसाई-धर्म-ग्रहण करने के पूर्व, इसी धर्म का अनुयायी था।

सम्राट शापुर प्रथम की मृत्योपरान्त, खोरासान का शासक होर्मुज्द प्रथम (ऊपर उल्लेख आ चुका है) केवल एक १ वर्ष के लिए सम्राट रहा। २७२ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी और उसका भाई बहराम प्रथम उसी वर्ष गद्दी पर बैठा और २७५ ई० तक राज्य करता रहा। इसके समय रोमीय-सम्राट, ओरेलियन (Aurelian) ने फारस आक्रमण करने की योजना बनायी। परन्तु जब वह बैजन्तीयम (Byzantium) पहुँचा, तो धोखे से मार डाला गया। इस प्रकार भगवान की कृपा से, फारस, रोम के आक्रमण से बच गया—नहीं तो बहराम इतना शक्तिशाली सम्राट न था कि रोमीय-सम्राट के आक्रमण को रोक पाता। क्योंकि जब पामीरा-राज्य की रानी जेनोबिया ने, रोमीय सम्राट औरेलियन, के विरुद्ध, उससे सहायता माँगी थी, तो वह उस बेचारी को, भली-भाँति सैनिक सहायता भी न कर पाया था।

उसके पुत्र बहराम द्वितीय ने २७५ ई० से २८२ ई० तक राज्य किया। यह और भी निकम्मा निकला। उसके समसामयिक रोमीय सम्राट कैरुस ने उस पर आक्रमण किया, एवं मैसोपोटेमिया तथा टेसीफोन पर कब्जा कर लिया। परन्तु दुर्भाग्यवश, एक भयंकर आँधी के कारण, उसका खेमा उखड़ गया, और उसी में उसकी मृत्यु हो गई। इस बार भी दैवी विपत्ति के कारण, फारस रोम के आक्रमण से बच गया।

परन्तु आर्मेनिया फारस के हाथ से निकल गया और वहाँ के भूतपूर्व सम्राट खुसरो का पुत्र तिरिदत्त सन् २८६ में, फारस की सेना को वहाँ से बिताड़ित कर स्वाधीन शासक बन बैठा।

इसके बाद फारस का इतिहास अराजकता से भरा हुआ है। अन्त में सम्राट शापूर प्रथम का पुत्र नरसीस (Narses) २९६ ई० में, फारस का अधिपति बना। उसके समय रोम-साम्राज्य दो भागों में बँट गया। पूर्वी भाग के सम्राट डाओक्लेशियन ने, अपने अधीनस्थ शासक गैलेरियस को, सीरिया

पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। कारण यह था कि सम्राट नरसीस ने, आर्मेनिया प्रान्त छीनकर, मैसोपोटेमिया पर आक्रमण किया था जो उस समय रोम के अधीन था। कैरी के ऐतिहासिक युद्धक्षेत्र में (जहाँ सन् ५३ ई० पू० में, पार्थिया सम्राट ओरोदिस ने रोमीय सेनापति क्रेसास को बुरी तरह पराजित किया था) नरसीस ने रोमीय सेनापति गैलेरियस तथा आर्मेनिया शासक तिरिदत्त को पराजित किया और वे दोनों फरात नदी में कूद पड़े और तैरकर भाग निकले।

परन्तु सन् २९७ ई० में, गैलेरियस ने पुनः फारस-सम्राट् पर आक्रमण किया और आर्मेनिया में उसकी सेना को पूर्णतः परास्त कर दिया। अब दोनों में संधि हो गयी और सन्धि की शर्तें इस प्रकार रक्खी गयीं :—

(१) रोम तथा फारस की सीमा, दजला नदी के स्थान पर फरात नदी मानी जाय।

(२) फरात नदी के पार के पाँच प्रान्तों को रोम-साम्राज्य में मिला लिया जाय।

(३) मीडिया में स्थित, जेन्था का दुर्ग (Fort of Jentha) आर्मेनिया राज्य में सम्मिलित किया जाय।

(४) आईबेरिया का प्रान्त रोम के संरक्षण में हो।

(५) केवल निसीबीस शहर ही एक मात्र वह व्यापारिक स्थान माना जाय, जहाँ रोम तथा फारस के व्यापारी आपस में व्यापारिक लेन-देन के लिए मिल सकें।

परन्तु सम्राट् नरसीस के अनुरोध से यह पाँचवीं शर्त बाद में हटा दी गई।

इस प्रकार असफल होकर सम्राट् नरसीस ने सन् ३०१ ई० में, फारस की गद्दी त्याग दी।

नरसीस के बाद होर्मुज्द द्वितीय ने ३०१ से ३०९ ई० तक राज्य किया। फिर उसका बेटा, शापूर द्वितीय के नाम से गद्दी पर बैठा। कहा जाता है कि जन्म से पहले ही उसे गद्दी के लिए चुना गया था जब कि मोबेद (प्रधान पुरोहित) ने यह घोषणा की कि पैदा होने वाली सन्तान 'नर' है' (male son).

शापूर महान् (३०३—३७९ ई०)

जो जन्म से पहले ही सम्राट् बन चुका था, उसके लिए 'महान्' होना कोई आश्चर्य की बात न थी। अत. सम्राट् शापूर केवल 'महान्' ही न था, सासानी सम्राटों में सबसे अधिक वर्ष तक (७० साल तक) उसने राज्य किया और अपने समसामयिक १० रोमीय सम्राटों से बराबर मोर्चा लेता रहा।

जब वह नाबालिग ही था तभी उसे, अरब वालों से युद्ध करना पड़ा (३०९–३३७ ई०)। बहरीन तथा मैसोपोटेमिया के रहने वाले अरबों ने, एकार्यक फारस पर आक्रमण कर दिया और टेसीफोन (ctesiphon) पर अधिकार स्थापित कर लिया। शापूर ने १६ वर्ष की अवस्था में, शासन-भार संभालने के पश्चात् ही अरबों पर आक्रमण कर उन्हें परास्त किया, और उनके कन्धे छेदवाकर उन्हें रस्सी से बँधवा दिया। इस भयंकर बदले के कारण उसका नाम 'जुलक्तफ़' यानी 'कन्धों का मालिक' (Lord of the Shoulders) पड़ा।

रोम के साथ प्रथम युद्ध (३३७—३५० ई०)

रोमीय सम्राट् कान्स्टैन्टाईन ने फारस के ईसाइयों का संरक्षक बनकर, उसी बहाने फारस पर आक्रमण की तैयारी की। परन्तु अभियान-यात्रा के पूर्व ही, ३३७ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

इधर आर्मेनिया-शासक तिरिदत्त की भी मृत्यु ३१४ ई० में हो गयी और सम्राट शापूर को प्रति-अभियान (counter-campaign) करने का सुअवसर प्राप्त हो गया। उसने शीघ्र ही पुनः उन प्रान्तों को अपने साम्राज्य में मिला लिया जिन्हें उसके भूतपूर्व सम्राट नरसीस ने रोम को प्रदान किया था।

परन्तु 'शापूर महान्' को, रोमीय दुर्गों को विजय करने में सफलता न प्राप्त हुई। तीन बार उसने 'निसीबीस' के दुर्ग पर चढ़ाई की, और तीनों बार असफल रहा। इस समय सम्राट कान्स्टेण्टियस, रोम का सम्राट था। सन् ३४८ ई० में, सींगारा के युद्ध में (Battle of Singara) में शापूर ने उसको परास्त कर दिया। इतने में रोम के घरेलू युद्धों के कारण रोमीय-सम्राट को यूरोप वापस लौटना पड़ा, और इधर तूरानी जाति के आक्रमण के कारण, सम्राट शापूर भी अपनी राजधानी को जल्दी लौट पड़ा। इस प्रकार प्रथम रोमीय युद्ध समाप्त हुआ।

सम्राट् शापूर महान् द्वारा ईसाइयों का दमन

ईसाइयों के धार्मिक सिद्धान्त एवं शिक्षाएँ जरस्थुत्री धर्म के विरोधी होने के कारण सम्राट् शापूर ने उनको दमन करने का निश्चय किया। ईसाइयों को यह आज्ञा दी गयी कि, चूँकि वे युद्ध में फारस-सम्राट् की सहायता नहीं करते हैं अतः वे दुगुना कर प्रदान करें। प्रधान बिशप या पादरी मार-शीमुन (Mar-Shimun) को कहा गया कि वह उक्त कर को वसूल करें। उसने यह कह कर मनाही कर दी कि पादरी का काम 'टैक्स वसूलना नहीं है'। इस अपराध के कारण, ३३९ ई० को गुड फ्राइडे के दिन उक्त प्रधान बिशप, ५ उसके और अन्य साथी प्रधान पादरियों एवं १०० ईसाई-पुरोहितों की ईलम की

प्राचीन राजधानी सुसा में हत्या कर दी गयी। इस प्रकार ईसाइयों पर निर्यातन ४० वर्ष तक बराबर चलता रहा और सम्राट् शापूर के शासन-काल का अन्त होने पर ही इस निर्यातन का अन्त हुआ।

इसके पश्चात् सन् ३५० ई० से ३५७ ई० तक, सम्राट् शापूर पूर्व में हूण, जीलानी तथा यूसेनी आदि अर्ध-सभ्य एवं बर्बर जातियों के दमन में व्यस्त रहा और उन्हें पूर्णत: दबा दिया।

इसी समय ३५१ ई० में आर्मेनिया पुन: रोम की छत्रछाया में चला गया।

फारस तथा रोम का द्वितीय युद्ध (३५९—३६१ ई०)

इस द्वितीय युद्ध के प्रारम्भिक चरण में, सम्राट् शापूर ने सीरिया पर आक्रमण कर, अमीदा पर अधिकार स्थापित कर लिया (३५९ ई०) एवं १ वर्ष के अन्दर ही सिंगारा (Singara) तथा बेज़ाब्दे (Bezabde) को भी अपने कब्ज़े में कर लिया। सम्राट् कांस्टेन्टीयस ने बेज़ाब्दे को पुन: अपने अधिकार में करने की चेष्टा की, परन्तु ३६१ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी।

उसका परवर्त्ती रोमीय सम्राट् जूलियन अधिक वीर एवं साहसी था एवं उसने अपने भूतपूर्व सम्राट् के अधूरे कार्य को पूरा करने का इरादा कर लिया। फारस पर आक्रमण करते हुए दजला नदी के रास्ते वह टेसीफोन के उत्तर में पहुँचा और वहाँ उपस्थित फारसी सेना को परास्त किया। परन्तु वह टेसीफोन के दुर्ग को अपने अधिकार में न कर सका। सम्राट् शापूर अपनी प्रधान सेना सहित कभी सम्राट् जूलियन के सामने नहीं हुआ। फलत: परेशान होकर सम्राट् जूलियन ने अपनी सेना को १६ जून को पीछे हटने का आदेश दिया। परन्तु दुर्भाग्यवश समारा (Samarra) की लड़ाई में (३६३ ई०) वह मारा गया। उस समय उसकी उम्र ३१ साल की थी।

सम्राट् जूलियन की मृत्यु के पश्चात् उसके अधीन सहनायक जोवियान को सम्राट् चुना गया। उसने कुछ काल तक युद्ध जारी रक्खा परन्तु वह और शापूर दोनों युद्धों से परेशान हो गये थे। अत: दोनों ने ३० वर्ष के लिए सन्धि का प्रस्ताव किया और दोनों में ये शर्तें निश्चित हुईं :—

(१) सम्राट् नरसीस द्वारा रोम को दिये गये ५ प्रान्त, फारस को वापस लौटा दिए जायँ।

(२) पूर्वी मेसोपोटेमिया के तीन रोमीय दुर्ग (जिसमें नीसीबीस तथा सिंगारा भी थे) फारस के अधीन कर दिये जायें।

(३) आर्मेनिया को रोमीय शासन के क्षेत्र से मुक्त कर दिया जाय।

इस सन्धि के पूरा होने के बाद शापूर ने आर्मेनिया तथा आईबेरिया (जार्जिया) पर आक्रमण कर दोनों को अपने साम्राज्य में मिला लिया।

सन् ३७६ ई० में, रोम तथा फारस में सन्धि हो गयी और दोनों में स्थिर हुआ कि आर्मेनिया तथा आईबेरिया प्रान्तों को स्वयं शासन करने का अधिकार प्रदान किया जाय।

शापूर-महान् का अन्त—३७९ ई०

सन् ३७९ ई० में महान् सम्राट शापूर की मृत्यु हो गयी। उसने अपने जीवन में, फारस की शक्ति को अपनी सीमा तक पहुँचा दिया और रोमीय सम्राटों से बराबर लोहा लेता रहा, जिस कारण, रोम को, फारस-साम्राज्य के किसी अंश में, अपना अधिकार स्थापित करने का मौका नहीं प्राप्त हुआ। सम्राट शापूर ने दक्षिण के अरब तथा पूर्व के हूणों को भी दबा दिया, जिससे ये दोनों बर्बर जातियाँ, फारस-साम्राज्य को कोई हानि न पहुँचा सकीं।

यह बात अवश्य ठीक है, कि सारा जीवन युद्ध में व्यस्त रहने के कारण, वह कोई सार्वजनिक कार्य न कर सका और न तो कोई कृति अपने पीछे छोड़ सका। उसने, सम्राट शापूर प्रथम द्वारा निर्मित, निशापुर शहर को दुबारा बसाया एवं अन्य और कई शहर बसाये। परन्तु उसके समय का न तो कोई शिलालेख और न तो कोई मूर्ति ही प्राप्त होती है।

सम्राट शापूर के उत्तराधिकारी, अर्देशीर द्वितीय (३७९-३८३ ई०) तथा शापूर तृतीय (३८३-३८८ ई०) बहुत ही निर्बल शासक थे, और अपने शासन-काल में कुछ महत्वपूर्ण कार्य न कर सके। सम्राट अर्देशीर ने, प्रजाओं के सब प्रकार के कर (tax) माफ कर दिये जिससे उसका नाम पड़ा, "उपकारी सम्राट" (The Beneficient) सम्राट शापूर तृतीय ने, रोम से संधि कर ली और याद जाति के अरबों के विरुद्ध सेना भेजी। उसकी प्रस्तर मूर्ति, कर्मन्शा (Kermenshah) के निकट ताकि बूस्तन नामक स्थान पर (Tak-i Bustan) पायी गयी है। रोम के साथ संधि के कारण, आर्मेनिया का प्रान्त फारस तथा रोम के बीच, बँट गया।

सम्राट शापूर तृतीय के बाद, क्रमशः बहराम चतुर्थ (३८८-३९९ ई०) एवं याज्दगीर्द (३९९-४२० ई०) सम्राट हुए। बहराम चतुर्थ के समय आर्मेनिया के फारसी प्रांत के शासक खुसरो ने विद्रोह किया, परन्तु वह मारा गया और उसका भाई (बहराम-शापूर) आर्मेनिया का शासक बना। थोड़े दिन पश्चात् सैनिक विद्रोह के कारण, सम्राट बहराम चतुर्थ मारा गया और उसका लड़का—याज्दगीर्द उर्फ शैतान गद्दी पर बैठा।

सम्राट याज्दगीर्द ने अपने राज्य में ईसाइयों को स्वतंत्रतापूर्वक, अपना धर्म प्रचार करने एवं गिर्जाघर बनाने की आज्ञा दी। इससे उसकी ईसाई प्रजा बहुत ही आनन्दित हुई। संभवतः सम्राट स्वयं ईसाई-धर्म ग्रहण करना चाहता

था। और उसने मागियों को दबाना भी शुरू किया। परन्तु कुछ काल के उपरांत, उसे अपनी भूल मालूम हुई और उसने पुन: जरस्थुत्रीधर्म को स्वीकार कर लिया। अब उसने ईसाइयों को भयंकर रूप से दबाना प्रारम्भ किया और ४ वर्ष तक उनका निधन करता रहा। सौभाग्यवश घरेलू लड़ाइयों के कारण, रोम ने, इसका बदला चुकाने की कोशिश न की।

सम्राट याज्दगीर्द के पश्चात् उसका लड़का बहराम पंचम (जो बहराम गौर भी कहा जाता है) गद्दी पर बैठा। उसने ईसाइयों का निधन (Persecution) जारी रक्खा। रोम के विरुद्ध लड़ाई में उसकी पराजय हुई और दोनों में संधि। ईसाइयों को रोमीय-राज्य में शरण लेने की आज्ञा मिल गयी। विपरीत रोमीय-साम्राज्य में, ज़रस्थुत्री धर्मावलम्बियों को भी निर्यातन तथा निधन से मुक्त कर दिया गया। इसी समय, ईसाई-सम्प्रदाय दो भागों में बँट गया—पूर्वी सम्प्रदाय या Eastern Church तथा पश्चिमी सम्प्रदाय या Western Churh (४२४ ई०)।

इस समय की अन्य उल्लेखनीय घटनाएँ निम्नलिखित हैं :

(१) आर्मेनिया का वह प्रांत जो फारस के अधीन रहा, एक क्षत्रपी में परिवर्तित हो गया (४२८ ई०) इस प्रकार उसकी स्वाधीनता सदैव के लिए समाप्त हो गयी।

(२) सम्राट बहराम, बड़ी बुद्धिमत्ता एवं चालाकी से एलबुर्ज पहाड़ियों की ओर अपनी सेना समेत जाकर, धोखे से सफेद हूणों के ऊपर टूट पड़ा और उसके 'खान' (प्रधान) को मार डाला तथा उसकी स्त्री एवं असंख्य चीजों को लूटकर अपने अधीन कर लिया। इस प्रकार उसने हूणों की कमर तोड़ दी।

सम्राट बहराम पंचम, जंगली गधों के शिकार के लिए प्रसिद्ध हो गया। इसीलिए उसे 'बहराम गुर' (गौर) कहते हैं क्योंकि 'गुर' शब्द का अर्थ है, जंगली गधा।

अपने समय में इस सम्राट ने, भारतवर्ष के नरेशों से भी अच्छा सम्बन्ध स्थापित किया और कहा जाता है कि उसने १२,००० लूरी या जिप्सी, फारस से भारत को इसलिए भेजा कि अपने संगीत तथा नृत्यादि से, भारत के लोगों का मनोरंजन करें। इससे यह भी साबित होता है कि उस समय भारत और फारस के बीच अच्छा सम्बन्ध स्थापित था और आने-जाने के साधन भी उत्तम थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कई सदियों के बाद, फारस को एक न्याय-प्रिय, शक्तिशाली एवं वीर सम्राट का संरक्षण प्राप्त हुआ, जिसने कृषि, विज्ञान तथा साहित्य को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। सम्राट बहराम 'गौर' शिकारों का शौकीन होने के बावजूद भी उसने कभी अपने राज्य-कार्य की अवहेलना नहीं की। सन् ४४० ई० में इस महान् तथा प्रिय सम्राट की मृत्यु हो गयी।

सम्राट यज्दगिर्द तृतीय (४४० ई०-४५७ ई०)

सम्राट यज्दगिर्द तृतीय, सम्राट बहराम का पुत्र था। इसने रोम तथा हूणों के विरुद्ध कई लड़ाइयाँ कीं, परन्तु सफल न हो सका। इसने जबर्दस्ती, आर्मेनिया में जरस्थुत्री-धर्म को स्थापित किया और वहाँ के ईसाइयों को इस प्रकार दबाया कि वे, आर्मेनिया छोड़कर भाग खड़े हुए। उसने मैसोपोटेमिया के ईसाइयों को भी दबाया और वहाँ के कई हजार ईसाइयों को मरवा डाला।

सन् ४५७ ई० में इस असफल सम्राट की मृत्यु हो गयी। फिर उसके दो लड़कों, होर्मुज्द और फीरोज, में सिंहासन के लिए लड़ाई हुई, और अन्त में फीरोज (बड़ा लड़का) ही सफल हुआ।

अपने शासन-काल में, सम्राट फीरोज को सफेद हूणों से युद्ध करना पड़ा, और उसी युद्ध में वह मारा भी गया (४८३ ई०)।

इसकी मृत्यु के पश्चात्, इसका भाई, वोलोजेसस (Vologases) या 'बल' सम्राट हुआ। इसने हूणों के खान, खुश-नेवाज को कर देना स्वीकार कर लिया। वोलोजेसस ने आर्मेनिया के ईसाइयों को पुन: धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की, जिसके फलस्वरूप वहाँ के शासक, वाहन (Vahan) ने, सम्राट को, घरेलू-युद्ध में, अपने घुड़सवारों के द्वारा पूर्ण सहायता की।

फारस के ईसाइयों में मतभेद

सम्राट फीरोज के समय, ईसाइयों में, 'भगवान का रूप क्या है' (Nature of God) विषय पर पुन: मतभेद प्रारम्भ हो गया और फारस के ईसाइयों ने भी इसमें भाग लेना प्रारम्भ किया। नस्तूरी सम्प्रदाय के प्रधान नस्तूरी (Nestorins, Patriarch of Constantinople) ने, यह सिद्धांत उपस्थित किया कि, 'माता मेरी, हजरत ईसामसीह की माता थी न कि भगवान की और हजरत ईसा के दो रूप, (ईश्वरीय तथा मानवीय) हैं।'

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए, फारस-निवासी, बार-सोमा (Bar-Soma) ने, फारसी सम्प्रदाय के ईसाइयों में इस मत का खूब प्रचार किया। सम्राट फीरोज ने भी यह ख्याल किया कि इस धार्मिक मतभेद के कारण, फारस के ईसाई, यूरोप (विशेषकर रोम) के ईसाइयों से अलग हो जायेंगे और फारस के सम्राटों के अधिकारों को पूर्णत: स्वीकार करेंगे। अत: उन्होंने, बार-सोमा का, पूर्ण समर्थन किया, और उसे उसका मत प्रचार करने की पूरी स्वतंत्रता प्रदान की। वह निसिबिस का आर्कबिशप पहले ही बन चुका था। उसने साधारण पादरियों को (Clergy) विवाह करने की अनुमति प्रदान की (जो कि जरस्थुत्री-धर्म के प्रभाव के कारण ही हो सका) नस्तूरी सम्प्रदाय के

साधारण पादरी (Clergy) आज भी इस प्रथा को मानते हैं, परन्तु उनके बिशप विवाह नहीं करते। इस 'चर्च' को 'असीरियन चर्च' भी कहा जाता है।

बारसोमा ने एक उल्लेखनीय कार्य और किया। सन् ४८९ ई० में जब रोमीय सम्राट ज़ेनो ने, ऐडेसा स्थित नस्तूरी सम्प्रदाय के कालेज को तोड़ दिया, तो, उसने फौरन निसीबीस में उस कालेज की पुनर्स्थापना की। इस कालेज के ईसाइयों ने, अरबों को नाना प्रकार के ज्ञान-विज्ञान की शिक्षाएँ दीं और इन शिक्षित अरबों का, मध्ययुगीय यूरोपीय संस्कृति पर काफी प्रभाव पड़ा। इस प्रकार, अप्रत्यक्ष रूप से, नस्तूरी सम्प्रदाय की शिक्षा एवं संस्कृति ने, यूरोपीय संस्कृति को प्रभावित किया, इसमें सन्देह नहीं।

सम्राट फीरोज का पुत्र, कोबाद या कवद, सन् ४८७ ई० में, फारस की गद्दी पर बैठा। हूणों के खान, खुश-नेवाज ने उसे सम्राट बनने में काफी सैनिक सहायता पहुँचाई। कहा जाता है कि सम्राट वोलोजेसस ने हूणों को कर देना बन्द कर दिया था, इसीलिए, खुश-नेवाज (Khus-Newaz) ने कवद को सम्राट होने में सहायता की। वोलोजेसस की मृत्यु सन् ४८७ ई० में हो गयी और कवद को सभी ने सम्राट स्वीकार किया।

सम्राट कवाद अधिक दिन तक शासन न कर सका। उसने, अपने समय में, खजार जाति को मार भगाया, जिन्होंने, काकेशस पार करते हुए कुर की घाटी में धावा बोल दिया था। इन खजारों (Khazars) का निवास वोल्गा तथा डान नदी के बीच के प्रदेश में था।

हजरत मजदक

सम्राट कोबद के समय में मजदक नाम के एक जरस्थुत्रीय पुरोहित ने, अपने साम्यवादी मत का प्रचार प्रारंभ किया था। उसका कहना था कि सभी मनुष्य, जन्म से समान हैं, और उन्हें यह अधिकार है कि वे जीवन भर, इस समानता को कायम रक्खें।

मज़दक की इन शिक्षाओं ने जनता को काफी प्रभावित किया और शीघ्र ही उसके कई हजार अनुयायी हो गये, जिसमें सम्राट भी शामिल थे। इन लोगों ने अपने धर्म के प्रचार को इस निर्दयतापूर्वक करना प्रारंभ किया कि आर्मेनिया के ईसाइयों ने विद्रोह कर दिया। और राज्य के प्रधान मोबेड, अमीर तथा सेना ने मिलकर, सम्राट के विरुद्ध, एक गंभीर षड्यन्त्र रचा तथा कोबद को गद्दी से उतार कर उसके भाई जमास्प (Zamasp) को फारस का सम्राट बनाया। परन्तु जमास्प ने अपने भाई कोबद की हत्या नहीं की और केवल उसे कैसिल आफ आबलीवियन में कैद रक्खा (४९८-५०१ ई०)

कहा जाता है कि अपनी स्त्री की सहायता से कोबद भाग निकला और हूणों के पास पहुँच गया। हूणों ने पुन: उसकी सहायता की, और जमास्प ने, गद्दी के लिए लड़ने की मनाही कर दी। अत: कोबद पुनः फारस का सम्राट बना (५०१-५३१ ई०) यह उसका द्वितीय शासन-काल माना जाता है। बुद्धि-मत्तापूर्वक, इस बार, कोबद ने, मजदक को राजकीय सहायता पहुँचाना बन्द कर दिया, यद्यपि व्यक्तिगत रूप से वह अब भी उन्हीं का अनुयायी था। द्वितीय शासन-काल के समय, सम्राट कोबद को पुनः रोम से युद्ध करना पड़ा। प्रथम रोमीय युद्ध ५०३-५०५ ई० को हुआ, जिसका कारण था कि भूतपूर्व फारस के सम्राट याज्दगिर्द द्वितीय तथा रोमीय सम्राट थियोडोसियस द्वितीय के बीच यह निश्चय हुआ था कि, दरबन्द पास (Derbend pass) की रक्षा के लिए जो सेना रक्खी जायेगी, उसके खर्चे का कुछ भाग, रोमीय साम्राज्य दिया करेगा। इस पहाड़ी रास्ते से अक्सर, फारस तथा रोम के पूर्वीय साम्राज्य पर, बर्बर जातियाँ हमले किया करती थीं। परन्तु रोम वालों ने ८ वर्ष तक (फारस एवं रोम के शान्ति की अवधि) इस व्यय का एक पैसा-फारस को नहीं भेजा। सम्राट कोबद को, अब इस धन की आवश्यकता पड़ी क्योंकि उन्हें हूणों को आर्थिक पुरस्कार देना था। अत: सम्राट कोबद ने, एकायक, रोमीय आर्मेनिया पर आक्रमण किया और थियोडोसिओपोलिस एवं अमीदा पर अधिकार कर लिया। इतने में सफेद हूणों के आक्रमण से, सन् ५०३ ई० को, सम्राट को सेना-समेत, खोरासान जाना पड़ा। और रोमीय सेना ने, दजला पार करते हुए, अमीदा तथा निसिबिस पर घेरा डाल दिया। अब सम्राट कोबद ने अपना राजदूत भेज कर, रोम से सन्धि कर ली और सन् ५०५ ई० में, सात वर्ष के लिए दोनों में सन्धि हो गयी और रोम ने, अमीदा के निवासियों की तकलीफों को दूर करने के लिए एक हजार पौंड वजन का सोना मूल्यस्वरूप, चुकाया।

सम्राट कोबद तथा हूणों का युद्ध ५०३ ई० से ५१३ ई० यानी १० वर्ष तक चलता रहा, और अन्त में सम्राट ने हूणों को इस प्रकार परास्त किया कि वे सर न उठा सके। अब आये दिन के लिए, फारस पर, सफेद हूणों (Epthalites) का आक्रमण बन्द हो गया।

सम्राट कोबद के समय अन्य उल्लेखनीय घटनाओं में, मजदक सम्प्रदायों का निधन (Persecution of the Mazdakites) काफी महत्वपूर्ण है। यह घटना सन् ५२३ में हुई। कारण यह था कि मजदकी सम्प्रदाय ने, भविष्य में, अपनी सुरक्षा के लिए, सम्राट कोबद से अनुरोध किया कि वे अपने पुत्र को गद्दी पर बैठाकर स्वयं गद्दी त्याग दें। सम्राट ने चालाकी से उनके नेताओं को, अपने पुत्र के अभिषेक की सहायता के लिए बुलवाकर, मरवा डाला।

इसी समय के लगभग, आईबेरिया में भी विद्रोह हुआ, परन्तु सम्राट ने उसे भी दबा दिया।

रोम से द्वितीय युद्ध—(५२४ ई०-५३१ ई०)

रोमीय सम्राट अनास्टेसियस ने, सन्धि के शर्तों के विपरीत, निसिबिस के निकट, दारा (या दरस) में एक दुर्ग निर्माण करवाया। सम्राट कोबद ने विरोध-पत्र भेजा, परन्तु कुछ उचित उत्तर उसे न प्राप्त हुआ। बस यही रोम से द्वितीय युद्ध का कारण था।

रोमीय सेना के सेनापति बेलीसरीयस (Belisarius) के नेतृत्व में, रोमीय सेना ने, फारस-अधिकृत आर्मेनिया पर आक्रमण किया (५२६ ई०) परन्तु रोमीय सेना की विकट पराजय हुई। मेसोपोटेमिया में भी रोमीय सेना हारी। सन् ५२८ ई० में, पुनः फारसी-सेना विजयी हुई, और अपने प्रसिद्ध सेनापति, फीरोज मिहरान' (Firoz, The Mehran) के नेतृत्व में, दारा की ओर अग्रसर हुई।

इस युद्ध में फारसी फौज की संख्या, रोमीय सेना से दुगुनी थी। फारसी सेना में, बड़े कुशल धनुषधारी (archers) भी थे, जिनके तीरों की बौछार ने रोमीय सेना में, खलबली मचा दी। उधर रोमीय सेना के दाहिनी बाजू को, 'अमर सैनिकों' ने (जिनकी परम्परा हुख्मनीषी सम्राटों के समय से चली आ रही थी) तोड़ दिया, और दोनों सेना आमने-सामने हाथों हाथ (Hand to hand fight) लड़ाई में जुट गयी। सौभाग्यवश, रोमीय सेना में मैसागिटी जाति के घुड़सवारों की उपस्थिति एवं बहादुरी ने रोम की लाज इस बार रख ली। फारसी सेना ने, अन्ततोगत्वा, पीछे ही हटने का निश्चय किया। परन्तु रोमीय सेना ने पीछा करना उचित न समझा।

जो कुछ भी हो, यह मानना पड़ेगा कि फारसी सेना ने इस लड़ाई में काफी बहादुरी प्रदर्शित की. क्योंकि सुशिक्षित एवं सुगठित रोमीय सेना के विरुद्ध, हाथों हाथ लड़ना, कोई आसान काम न था। संभवतः इस युद्ध में उन्हें पीछे इसलिए हटना पड़ा कि, उनके पास तीरन्दाज घुड़सवार (mounted archers) न थे, जैसे कि कैरी के युद्ध में, पार्थिया सेना के पास थे और जिन्होंने रोमीय सेनापति क्रेसस की फौज को, अपनी तीरन्दाजी से ही परास्त किया था।

५३१ ई० में, पुनः कैलिनिकस (Callinicus) में, फारसियों से रोमनों का युद्ध हुआ, जिसमें रोमन फौज को अन्त में फरात नदी के पार भागकर जान बचानी पड़ी। यह सम्राट कोबद के समय का अन्तिम 'रोमीय युद्ध' था और सम्राट की मृत्यु के बाद समाप्त हो गया। सारांश में, रोम तथा फारस की हार-जीत—इन युद्धों में—बराबर रही।

सम्राट कोबद का शासन काल, इन्हीं कारणों से, महत्वपूर्ण माना जाता है। सफेद हूणों को उसने पूर्ण परास्त कर दिया, रोम के दाँत खट्टे कर दिये, और कई शहरों का निर्माण किया, जिनमें दो बहुत ही प्रसिद्ध हैं—एक तो 'काजेरुन' जो बुशायर तथा शीराज़ के मध्य तथा शापूर नगर के निकट है। और दूसरा गंजा, काकेशस पहाड़ियों में है, जिसका आधुनिक नाम है, 'एलिज़ाबेतपोल (Elizabetpol)। उसके समय फारस की सेना भी अधिक संगठित एवं सुशिक्षित बन गयी। सारांश में उसने ४० वर्ष के शासन-काल में, फारस की प्रतिष्ठा को, अपनी अन्तिम सीमा तक पहुँचा दिया।

सासानी राजवंश के समय फारस तथा चीन का सम्पर्क

अध्याय ७ में, असीशीद राजवंश के समय, पार्थिया एवं फारस तथा चीन के सम्पर्क का उल्लेख किया जा चुका है। उसके २०० वर्ष पश्चात् पुनः फारस तथा चीन का सम्पर्क स्थापित हुआ। उस समय उत्तरी चीन में 'उत्तरी वी राजवंश' (Northern Wei Dynesty) राज्य कर रही थी (३८६-५३४ ई०)। उन्हें, फारस में सासानी राजवंश के शासन स्थापित होने की कोई खबर मालूम नहीं थी। सन् ४५५ ई० से ५१३ ई० तक, करीब दस बार राजदूतों (missions) का आदान प्रदान, फारस और चीन के बीच में हुआ। तत्कालीन चीनियों ने फारस का बड़ा ही मनोरंजक वर्णन दिया है, जो इस प्रकार है :—

"पो-ज़ (Po-Sz-) राज्य (फारस का चीनी नाम) की राजधानी सू-ली (Suh-Li) यानी ctesiphon–है····जिसमें १००,००० से ऊपर परिवार (households) का निवास है। इस राज्य की भूमि काफी समतल है और यहाँ पर सोना, चाँदी, मूँगा, अम्बर (तृणमणि) उत्तम मोती, काँच के बर्तन तथा स्फटिक, हीरा, लोहा, ताँबा, सिन्दूर, पारा, जामदानी, एम्ब्रायडरी, सूती-वस्त्र, कार्पेट तथा झालर, आदि पाये जाते हैं। यहाँ की जलवायु अधिक गर्म होने के कारण यहाँ के निवासी अपने घरों में बर्फ (ice) रखा करते हैं। यहाँ का धरातल, अधिकांश पथरीला एवं बालुई (stormy sand) है और सिंचाई के लिए, दूर से पानी लाना पड़ता है।

"इस मुल्क में, ५ किस्म के गल्ले, पक्षी एवं पशु उसी प्रकार पाये जाते हैं जैसे चीन में·····इस मुल्क में, घोड़े, बड़े-बड़े गदहे तथा ऊँट, सफेद हाथी, सिंह, एवं बड़े पक्षी के अंडे (अर्थात् शुतुरमुर्ग के अंडे) पाये जाते हैं। ऊँट के आकार-वाला एक प्रकार का पक्षी यहाँ पर पाया जाता है, जिसके दो बड़े-बड़े पंख हैं, जिसके द्वारा यह दौड़ सकता है, परन्तु उड़ नहीं सकता। यह पक्षी घास एवं गोश्त खाता है और आग भी निगल सकता है" (Vide P. Sykes, His-

tory of Persian Empire, p. 449—Hindi Tr. by the author himself.)

उक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि सासानी सम्राटों के अधीन, फारस की कृषि तथा सिंचाई की पर्याप्त उन्नति हुई थी एवं देश की आर्थिक तथा सामाजिक अवस्था काफी उन्नतिशील थी तथा उद्योग-धंधों में काफी विकास हो चुका था।

उपर्युक्त वर्णन के अलावा, चीनियों ने फारस के सम्राट और राजदरबार का भी वर्णन दिया है। उनका कहना है कि सम्राट सोने के सिंहासन (शेर के आकार की) पर, अपना भव्य मुकुट पहन कर बैठा करता है। फिर वे, फारसियों की राष्ट्रीय पोशाक एवं उत्तराधिकार की प्रथा (custom of succession) भाई-बहन का विवाह (इसका विशेष उल्लेख है) तथा मृतकों (dead bodies) को, दक्मा (dakma) या खुले बुर्ज (tower of exposure) पर ले जानेवाली, अछूत जाति का भी उल्लेख करते हैं। इसके अलावा दरबारियों के पद तथा मोबेद (चीनी = मोह-उ-तन) एवं सिपाहबुद (चीनी = सिय-पो-पु:) यानी सेनापति, आदि का भी उल्लेख है।

सम्राट कोबद तथा उसके परवर्ती सम्राट नौशेरवाँ के समय, चीनी सम्राटों की ओर से, विशेष राजदूत, फारस के दरबार में भेजे गये, जिन्होंने फारस सम्राट द्वारा, चीनी सम्राट को, श्रद्धापूर्वक पत्र एवं पुरस्कार भेजने का उल्लेख किया है। अत: स्पष्ट है कि इन सासानी सम्राटों के समय, फारस और चीन के बीच, बहुत ही सुन्दर तथा मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हुआ था।

सम्राट नौशेरवाँ (५३१ ई०–५७९ ई०)

सम्राट नौशेरवाँ, ईरान के इतिहास में, 'न्यायी सम्राट नौशेरवाँ' (या अनुशीखाँ) कहा गया है। कहा जाता है कि सम्राट कोबद जब हूणों के पास भागे जा रहे थे, उस समय निशापुर में एक किसान की लड़की से उन्होंने विवाह कर लिया था। उसी से सम्राट नौशेरवाँ का जन्म हुआ।

सम्राट नौशेरवाँ को आसानी से गद्दी नहीं मिली। अपने अन्य दो सौतेले भाई, काऊस (Kaoses) तथा ज़ामी (Zame) को मारकर उसे फारस की गद्दी प्राप्त हो सकी।

गद्दी पर बैठने के थोड़े ही दिनों के अन्दर सम्राट नौशेरवाँ ने, मज़दकी सम्प्रदाय के एक हजार व्यक्ति एवं स्वयं उनके नेता मज़दक को मरवा डाला।

रोम से सन्धि (५३३ ई०)

रोमीय सम्राट जस्टीनियन, इटली तथा अफ्रीका में अशांति होने के कारण

फारस से युद्ध करने का इच्छुक न था। सम्राट नौशेरवाँ भी रोम से शान्ति-संधि करना चाहते थे। अतः दोनों में निम्नलिखित समझौते हुए :—

(१) काकेशस पहाड़ियों के दरबन्त (Derbent) दुर्ग, तथा अन्य दुर्गों की सुरक्षा के लिए, रोम ग्यारह हजार पौंड सोना, व्यय करेगा।

(२) रोम को दारा का दुर्ग (fortress of Dara) कायम रखने का अधिकार प्राप्त होगा परन्तु उसे अपना प्रधान स्थान बनाने का नहीं।

(३) लैज़ीका (Lazica) प्रान्त में जीते हुए स्थान एक दूसरे को, लौटा देंगे।

(४) फारस एवं रोम में सर्वदा के लिए शान्ति तथा मैत्री स्थापित रहेगी।

परन्तु अफ्रीका में रोम की बढ़ती हुई शक्ति ने नौशेरवाँ को चिन्तित कर दिया और उसने ५४० ई० में, अकस्मात् रोम से संधि-भंग कर दी और सीरिया पर आक्रमण करते हुए अन्तीओक (Antioch) पर अधिकार कर लिया। रोमीय सम्राट जस्टिनीयन द्वारा संधि की शर्तों के पूर्ण पालन करने की प्रतिज्ञा, ऐडेसा में सम्राट नौशेरवाँ को प्राप्त हुई। परन्तु तब भी लौटते समय, जिन शहरों से उन्हें गुजरना पड़ा, वहाँ से उन्होंने जबर्दस्ती कर (ransom) वसूल किया। वस्तुतः इस प्रकार रोम से पुनः शत्रुता स्थापित कर, उन्होंने बुद्धिमत्ता का परिचय नहीं दिया। सम्राट जस्टिनीयन ने, सन्धि भंग करने का आरोप उन पर लगाकर, पुनः युद्ध छेड़ दिया।

लैजीका प्रान्त में युद्ध—(५४० ई०-५५७ ई०)

लैजीका (Lazica) प्रान्त, ५२२ ई० से, रोम के संरक्षण में था। वहाँ के शासक ने, रोमीय गवर्नर के उत्पात के कारण, सम्राट नौशेरवाँ से, रोम के विरुद्ध सहायता माँगी (५४० ई०) सम्राट नौशेरवाँ को, जल-मार्ग से (काले-सागर के रास्ते से) रोमीय-प्रान्तों पर आक्रमण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। अपनी सेना समेत, उसने फौरन कूच किया और पेत्रा के बन्दरगाह (Port of Petra) पर अधिकार स्थापित कर लिया। अब लैजीका का प्रान्त फारस के संरक्षण में आ गया।

५४९ ई० में, पुनः लड़ाई शुरू हुई, और पेत्रा का दुर्ग, कभी रोम और कभी फारस के कब्जे में होता रहा। अन्त में सम्राट नौशेरवाँ को यह विश्वास हो गया कि जल-युद्ध में, रोम को परास्त करना, एक निष्फल स्वप्न मात्र है और लैजीका प्रान्त, दूर होने के कारण, उनके अधिकार में हमेशा कभी नहीं रह सकता। परिणामस्वरूप, ५६२ ई० में, रोम से उन्होंने पुनः सन्धि कर ली, और दोनों में यह समझौता हुआ :—

(१) लैजीका प्रान्त, हमेशा के लिए, रोम के संरक्षण में रहेगा।

(२) ३०,००० स्वर्ण-मुद्रा (Gold pieces) प्रतिवर्ष रोम, फारस को देता रहेगा।

(३) फारस के ईसाइयों को धार्मिक स्वतंत्रता दी जायेगी।

(४) दारा का सुरक्षित दुर्ग एवं शहर स्थायी रहेगा।

(५) दरबन्त (Derbent) पर फारस का अधिकार रहेगा।

(६) उक्त सन्धि एवं शान्ति ५० वर्ष तक कायम रहेगी।

श्वेत हूणों का दमन--५५४ ई०

सम्राट नौशेरवाँ ने, ५५४ ई० में, तुर्कों के खान मोकन खान—से, सम्बन्ध स्थापित कर लिया, और उनकी सहायता से, श्वेत हूणों (White Huns) के प्रान्त में आक्रमण कर, उनके सम्राट को मार डाला और उसके राज्य को आपस में बाँट लिया। इक्षु नदी (Oxus river) दोनों राज्यों की सीमा मानी गयी, और बलख प्रान्त, फारस के अधिकार में आ गया।

इसी समय के लगभग, सम्राट नौशेरवाँ ने, खजार (Khazars) जातियों पर आक्रमण कर, हजारों की संख्या में उनका वध कर डाला।

५७६ ई० में, अबीसीनिया वालों ने, येमेन (Yemen) पर धावा बोलकर, उसे अपने कब्जे में कर लिया। इन लोगों ने ईसाई-धर्म ग्रहण कर लिया था, और अपने नेता अब्राहम के नेतृत्व में, इन्होंने कई स्थानों पर गिर्जे बनवाये थे, जिनमें साना (Sana) का गिर्जा भी था। संयोगवश, उस समय, नौशेरवाँ के दर्बार में, अबिसीनिया के प्राचीन हीमारी राजवंश, का एक शरणार्थी राजकुमार भी उपस्थित था। उसने सम्राट को, आक्रमणकारियों पर आक्रमण करने की सलाह दी। सम्राट ने उसकी बात मान ली, और अपने जहाजी बेड़े के साथ, फारस की खाड़ी होते हुए, अदन के बन्दरगाह पर पहुँच गया। वहाँ पर हीमार वंश के लोगों ने अपने राजकुमार को पहचान लिया और उसके सहायतार्थ, चारों ओर एकत्रित हो गये। इधर अबीसीनिया वाले, अब्राहा वंश के नेता मसरूक के पक्ष में लड़ने के लिए तैयार हो गये। परन्तु युद्ध में मसरूक मारा गया, और हीमारी वंश का राजकुमार, सम्राट की ओर से, अबीसीनिया का प्रान्तीय शासक बनाया गया।

ऐतिहासिक तबारी (Tabari) के अनुसार, इसी समय, सम्राट ने भारत-वर्ष के भी कुछ प्रान्त अपने साम्राज्य में मिला लिये।

५६७ ई० में सम्राट को तुर्कों से भी युद्ध करना पड़ा। इक्षु नदी का प्रान्त जब से इनके अधिकार में आया था, तब से इनकी शक्ति काफी बढ़ गयी थी। उक्त वर्ष, उनके बादशाह दीजाबुल (Dizabul) ने, सम्राट नौशेरवाँ के पास अपना दूत भेजकर, उनसे वैवाहिक संबन्ध स्थापित करने की प्रार्थना की।

सम्राट ने उनके दूतों को विष देकर मरवा डाला और यह प्रचार किया कि उनकी मृत्यु स्वाभाविक रूप से हुई है। दिजाबुल इससे बहुत क्रोधित हो गया और उसने रोमीय सम्राट जस्टीनीयन से. फारस पर आक्रमण करने की प्रार्थना की। रोमीय सम्राट, फारस-सम्राट की शक्ति वृद्धि से, काफी भयभीत हो चुका था। उसे भी आक्रमण करने का एक अच्छा बहाना मिल गया। इस प्रकार रोम से फारस का तृतीय-युद्ध (५७२-५७९ ई०) प्रारंभ हुआ।

सम्राट नौशेरवाँ ने काल-विलम्ब न कर, तुरन्त निसीबीस (Nisibis) पर, घेरा डालने वाली रोमीय फौज को भगा दिया और दारा (Dara) तक उनका पीछा किया। उधर सम्राट की एक दूसरी सेना ने सीरिया पर आक्रमण कर, अन्तिओक के आसपास के प्रान्तों को जला कर खाक कर दिया एवं अपामीया (Apamea) को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, तथा सम्राट की प्रथम सेना के, दारा पहुँचने के पहले ही, उससे आकर मिल गयी। अब दोनों सेनाओं ने मिलकर 'दारा के दुर्ग' को घेर लिया। अन्त में ५७३ ई० में, दुर्ग की रोमीय रक्षावाहिनी ने आत्मसमर्पण कर दिया। अन्ततोगत्वा, रोमीय सम्राट जस्टिनीयन ने, परेशान होकर, गद्दी त्याग दी, और काउन्ट टाईबेरियस (Count Tiberius) को अपना उत्तराधिकारी बना गया। नवीन सम्राट टाईबेरियस ने एक साल की विराम सन्धि कर, ४५,००० स्वर्ण-मुद्रा (Gold pice) देकर, सम्राट नौशेरवाँ से सन्धि कर ली। इस विराम अवधि में, सम्राट टाईबेरियस ने, गुप्तरूप से, एक नवीन सेनावाहिनी गठन करने की चेष्टा की, परन्तु असफल होकर, पुनः ३ वर्ष की विराम सन्धि (truce) सम्राट नौशेरवाँ से की, और सालाना ३०,००० स्वर्ण-मुद्रा देने की प्रतिज्ञा की।

इसके पश्चात् सम्राट नौशेरवाँ ने, आर्मेनिया पर भी अधिकार स्थापित करने का प्रयास किया। परन्तु रोमीय सेनापति मौरीस (Maurice), आक्रमण करते हुए, पूर्वी मैसोपोटेमिया तक पहुँच गया, और कुर्दिस्तान में भी छापा मारने के लिए अपनी सेना भेजी। सम्राट नौशेरवाँ, टेसीफोन भाग गया और वहीं कुछ दिन पश्चात्. उसकी मृत्यु हो गयी (५७९ ई०)

सम्राट नौशेरवाँ की छत्रछाया में ईसाई सम्प्रदाय

फारस के ईसाई सम्प्रदाय ने, पुनः रोम से धार्मिक समझौता कर लिया था। सम्राट ने, फारसी-चर्च के प्रधान पादरी, 'मार अबा' (Mar Aba) को बुलवाकर दंड देना चाहा, परन्तु उसने, अपने धार्मिक-सिद्धान्तों को इस प्रकार सम्राट के पास, तर्कपूर्ण ढंग से उपस्थित किया कि, सम्राट ने सन्तुष्ट होकर, उसका प्राणदंड क्षमा कर दिया।

पारसी ईसाई सम्प्रदाय ने, ५४० ई० में, हिरात तथा समरकन्द में भी—

धार्मिक केन्द्र bishopries स्थापित कर लिए और चीन में भी, इस धर्म का प्रचार करने का प्रयत्न किया। भारत में भी उन्होंने, धर्मप्रचारार्थ, अपने धर्म-याजक भेजे। ६ठीं शताब्दी के लगभग, आईवन नामक एक पारसी ईसाई-धर्म-याजक ने, इंग्लैंड की भी यात्रा की। उसी समय के लगभग, होर्मुज्द नामक एक अन्य पारसी ईसाई धर्मयाजक, पोप बनाया गया।

सम्राट नौशेरवाँ का चरित्र एवं कृति

उपरोक्त घटनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि सम्राट नौशेरवाँ एक योग्य सम्राट था, जिसके समय में फारस की, प्रभूत उन्नति हुई। उसके शासन-प्रबंध आदि का विस्तृत विवरण, परवर्त्ती अध्याय में दिया गया है। यहाँ पर केवल उनकी चारित्रिक विशेषता, एवं प्रधान कृतियों पर आलोक सम्पात किया जायगा।

सम्राट नौशेरवाँ के चरित्र में, शक्ति एवं न्यायपरायणता (justice) का विचित्र मिश्रण था। राज्य की समस्त भूमि का पर्यवेक्षण करने के पश्चात् उन्होंने भूमिकर (revenue) निश्चित कर दिया जो मुद्रा में चुकाया जाता था। इसी प्रकार फसल एवं उपज का वार्षिक-निर्धारण (assessment) भी किया गया।

सम्राट ने, वेतनभोगी स्थायी सेना भी नियुक्त की और उन्हें संभवतः पेन्शन भी (नौकरी समाप्त होने के पश्चात्) वृद्धावस्था में देने का बन्दोबस्त किया।

कृषि की ओर सम्राट का पूरा ध्यान रहा। बंजर भूमियों के उद्धार के लिए (reclamation) राज्य की ओर से बीज, औजार और जानवर दिये गये। जनसंख्या की वृद्धि के लिए, उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि, सभी लोग विवाह करें, एवं कुछ न कुछ काम करते रहें। निष्कर्म तथा आलसी रहना एवं संन्यासी बन जाने की प्रथा को, राजकीय अपराध माना जाने लगा।

सम्राट ने आने-जाने के साधनों की भी उन्नति की, सड़कों को दस्युओं से सुरक्षित बनाया, और विदेशी यात्रियों को फारस आने के लिए काफी उत्साहित किया। सम्राट स्वयं अपने अतिथियों को बड़ा सम्मान दिखाता तथा आदर करता था। इनके अतिथियों में, रोमीय सम्राट जस्टिनीयन के बिताड़ित (expelled) नवीन-अफलातुनी दार्शनिक (Neo-Platonist philosopher) भी थे, जिनका प्रभाव, परवर्त्ती युग के फारसी रहस्यवाद पर अवश्य पड़ा।

सम्राट ने, यूनानी दार्शनिक प्लेटो (अफलातून) तथा अरस्तू की पुस्तकों का पारसी भाषा में अनुवाद करवाया और स्वयं उनका अध्ययन किया। उसने

गुन्दियासपुर में भी एक विश्वविद्यलय की स्थापना की, जहा दर्शन शास्त्र तथा साहित्य, विशेषकर औषधि-शास्त्र (medical science) का गंभीर अध्ययन किया जाता था। सासानी वंश के संस्थापक, सम्राट अर्देशीर की राजाज्ञाओं (edicts) को फिर से प्रकाशित किया गया, एवं 'खुधय-नामक', नामकी एक पुस्तक बनायी गयी जिसमें फारस के इतिहास एवं किंवदन्तियों को लिखा गया। महान् कवि फिरदौसी का "शाहनामा" इसी पुस्तक पर आधारित है। भारत-वर्ष के तत्कालीन प्रसिद्ध कहानी-लेखक पिलपाई (Pilpay) को कहानियाँ फारस में लायी गयीं एवं भारतवर्ष से ही लाया गया शतरंज का खेल (game of chess) तथा नील (indigo) फारस में चालू हुआ। इसी समय, फारस के दो ईसाई संन्यासी खोतान प्रदेश से, रेशम के कीड़े (silkworm seed) फारस में लाये। इस प्रकार उस समय फारस, पूर्व तथा पश्चिम का मिलन केन्द्र बन गया था।

सम्राट की न्याय-प्रियता के बारे में एक कहानी प्रसिद्ध है। जब रोमीय राजदूत को सम्राट नौशेरवाँ का भव्य राजप्रासाद दिखाया गया तो उसने सामने के हिस्से के असमान-आकार (irregular shape) को देखकर उसका कारण पूछा। लोगों ने कहा कि वहाँ पर एक बुढ़िया की झोपड़ी थी, और वह किसी भी मूल्य पर, उस जगह को छोड़ने पर राजी न हुई। उस राजदूत ने कहा, 'यह असमान आकार, चतुष्कोण आकार से कहीं अधिक सुन्दर है"—

("This irregularity is more beautiful than the most perfect square" vide P. Sykes, History of Persia, P. 459.)

सम्राट नौशेरवाँ की कई कहावतें प्रसिद्ध हैं जैसे, "सौभाग्य के दिन, पलकों में समाप्त हो जाते हैं, परन्तु दुर्भाग्य के दिन, बहुत दिनों तक कायम रहते हैं।"

कहा जाता है कि सम्राट नौशेरवाँ की अधिकांश कृतियाँ, उसके वजीर यानी प्रधान मन्त्री, बुजुर्गमिहिर के कारण ही हैं। यह व्यक्ति पहले राजकुमार का गृह-अध्यापक (Tutor) था और अपने विशेष गुणों के कारण, सम्राट का प्रियपात्र और पश्चात् प्रधान मंत्री बन गया। एक बार, सम्राट के दरबार में, दार्शनिकों का अधिवेशन हो रहा था और इस समस्या पर विचार-विमर्श हो रहा था कि मनुष्य के जीवन में सबसे अधिक दुःख किन बातों में है। एक यूनानी दार्शनिक ने कहा, कि 'मूर्खता तथा दरिद्रता से भरी हुई वृद्धावस्था', एक भारतीय दार्शनिक ने उक्ति की, "शारीरिक बीमारी तथा मानसिक चिंता।" बुजुर्ग मिहिर से उत्तर दिया कि, "मेरे विचार में, सबसे महान् दुःख है कि जब किसी व्यक्ति के जीवन का अन्तिम समय आ गया हो, और तब तक उसने कोई भलाई का काम न किया हो।" सम्राट नौशेरवाँ ने, बुजुर्गमिहिर की, इस उक्ति को बहुत पसन्द किया और उसकी राय, सर्वोत्तम मानी गयी। इस

प्रकार सम्राट नौशेरवाँ एवं उसके परवर्त्ती-सम्राट के समय तक शाही दरबार में बुजुर्गमिहिर का काफी प्रभाव रहा। परन्तु सम्राट खुसरो परवेज ने (५८९-६२८ ई०), इनको मरवा डाला क्योंकि यह महान् व्यक्ति, ईसाई-धर्म के सिद्धांतों में, विश्वास करता था।

सम्राट् होर्मुज्द चतुर्थ (५७९-५८९ ई०)

सम्राट होर्मुज्द चतुर्थ, जैसा कि ऊपर कहा गया है, सम्राट नौशेरवाँ से विवाहित, तुर्की-खान की पुत्री से उत्पन्न, लड़का था। और सम्राट नौशेरवाँ के गत होने पर, फारस का सम्राट बना।

वर्तमान सम्राट ने, रोम से युद्ध जारी रक्खा परन्तु कई लड़ाइयों में उसकी हार हुई। अन्तिम युद्ध, ५८९ ई० में, निसीत्बीस पर हुआ, और रोमीय सेनापति, हेराक्लियस ने, फारसी सेना को पूर्ण परास्त करते हुए, उनके सेनापति को मार डाला।

सम्राट को रोमीय युद्ध में व्यस्त देखकर, तुर्कों ने, ५८८ ई० में, फारस पर धावा बोल दिया। परन्तु फारसी सेनापति, बहराम (Bahram Chubin) ने, युद्ध में, उनके खान को मार डाला, एवं परवर्ती युद्ध में उसके बेटे को कैद कर लिया। इस युद्ध में, काफी लूट का माल फारस को प्राप्त हुआ।

इसके पश्चात्, सम्राट ने (५८९ ई०), सेनापति बहराम को, लैजीका प्रान्त पर आक्रमण करने के लिए भेजा। इस युद्ध में, बहराम की हार हुई, और सम्राट ने, उसका काफी अपमान किया। परन्तु बहराम की सेना ने, इस पर क्षुब्ध होकर, विद्रोह किया और शीघ्र ही, मैसोपोटेमिया की सेना से मिलकर, राजधानी, टेसीफोन पर आक्रमण कर दिया। सम्राट ने इस सम्मिलित सेना के विरोध में, अपनी सेना भेजी, परन्तु वह भी विद्रोही हो गयी। अन्त में सम्राट पकड़ा गया और मारा गया।

सम्राट खुसरो पर्वेज (५९० ई०—६२८ ई०)

उक्त सम्राट, भूतपूर्व सम्राट होर्मुज्द का सबसे बड़ा लड़का था। यह सासानी राजवंश का अन्तिम महान् सम्राट माना जाता है।

सम्राट खुसरो पर्वेज ने गद्दी पर बैठने के उपरान्त, सेनापति बहराम को, पुनः पत्र देकर बुलाने की चेष्टा की, और राज्य में, उसे 'द्वितीय स्थान' (Second place in the empire) देने की प्रतिज्ञा की परन्तु बहराम, अब भी विद्रोही बना हुआ था, और उसने सम्राट को उत्तर भेजा कि "सम्राट मुकुट उतारकर उसके पास उपस्थित हों, और एक प्रान्तीय शासक का पद ग्रहण करें।" सम्राट ने इस उत्तर से अपमानित होकर बहराम को दंड देना ही उचित

समझा और सेना लेकर चल पड़ा। परन्तु बहराम ने रात को छापा मारकर उसे भागने पर विवश किया। सम्राट ने राजधानी त्याग दी, और फरात नदी की ओर भागा। परन्तु बहराम की चार हजार सेना ने उसका पीछा किया। सम्राट के चाचा ने, इस समय बड़ी बुद्धिमत्ता से, अपने को फारस का सम्राट जाहिर करते हुए, सम्राट खुसरो का पीछा करने वाली फौज को अपनी ओर खींच लिया। इस प्रकार सम्राट की जान बची और वह भाग कर सिरसेसीयम (Circesium) पहुँचा, जहाँ रोमीय अधिकारियों ने उसके साथ बहुत ही उदारता तथा प्रेम का व्यवहार किया। अब रोमीय सम्राट मौरीस की आज्ञा की प्रतीक्षा होने लगी।

रोमीय सम्राट मौरीस ने, बहुत सोचने विचारने के बाद, सम्राट खुसरो को संवाद भेजा कि रोमीय सम्राट उसे अपने पुत्र के समान मानता है, और उसकी सहायतार्थ, रोमीय सेना भेज रहा है। परन्तु इस सहायता के बदले, आर्मेनिया का फारसी-प्रान्त, एवं दारा तथा मार्टीरोपोलिस के दुर्ग, रोम को वापस लौटाये जाएँ।

इस रोमीय सेना की सहायता से, सम्राट खुसरो ने, दजला नदी की ओर ५९१ ई० में यात्रा की और बहराम के सेनापति को कैद कर लिया और बाद में मार डाला। फिर सम्राट खुसरो, अजरबैजान की ओर चल पड़ा, जहाँ पर उसके चाचाओं ने, उसकी सहायता के लिए, सेना एकत्रित की थी। इधर सेलूशिया और टेसीफोन पर, एक अन्य रोमीय सेनादल ने, अधिकार कर लिया।

अब सम्राट खुसरो ने, बहराम पर, पूरी शक्ति से आक्रमण किया। बहराम भागा, और कुर्दिस्तान की पहाड़ियों में छिपकर, कंजका के दुर्ग के निकट, अपनी सेना स्थापित की। परन्तु इस बार, बहराम की गहरी पराजय हुई, और वह भागकर, तुर्कों के पास पहुँच गया। सम्राट ने, अपनी राजधानी, टेसीफोन, में, पुन: विजयी के रूप में प्रवेश किया। और अपने रोमीय सहायकों को काफी पुरस्कार देकर विदा किया। परन्तु सम्राट खुसरो की अवस्था, अभी तक काफी सुरक्षित न थी। उसने, एक हजार रोमीय सेना, अपने अंगरक्षी के रूप में, रख ली और धीरे-धीरे, बड़ी चालाकी से, अपने विरोधियों को, एवं बहराम, को भी मरवा डाला। आश्चर्य की बात है कि उसने अपने सहायक चाचाओं का भी निधन कर दिया।

रोमीय सम्राट मौरीस के समय में, रोमीय राजाधानी कुस्तुनतुनिया (Constantinople) तथा फारस की राजधानी टेसीफोन (Ctesiphon) में पूर्ण मैत्री एवं उत्तम संबन्ध स्थापित रहा। परन्तु सन् ६०२ ई० में, फोसश (Phoces) नामक एक व्यक्ति ने, रोमीय सम्राट की हत्या कर दी। सम्राट खुसरो ने, इस व्यक्ति को, कठिन दंड देने का विचार किया और रोमीय सेनापति

नर्सीस (Narses) की सहायता से, दारा, अमीदा, हर्रान, ऐडेसा, हि हीरो-पोलिस, बेरहोइया (आधुनिक एलेप्पो) एवं अन्य कई शहरों पर अधिकार कर लिया तथा आर्मेनिया एवं कैप्पेडोसिया पर आक्रमण करते हुए, फ्रीजिया, गैलेशिया एवं बिठीनिया को भी खूब लूटा।

६१० ई० में, सम्राट को अरबों से युद्ध करना पड़ा, और इस युद्ध में जो कि 'जू-कर के युद्ध' 'Battle of Zu-Kar'—के नाम से प्रसिद्ध है, सम्राट-सेना की गहरी पराजय हुई।

पूर्वी रोमीय साम्राज्य में अराजकता—हेराक्लियस का सम्राट बनना—६१० ई०

६०२ ई० में सम्राट मौरीस को गद्दी त्यागनी पड़ी, और उनके स्थान पर फोशस नाम का एक व्यक्ति सम्राट चुना गया। इसने अवर जाति को, खिराज (Tribute) देकर, सन्धि कर ली, और फारस संबन्धित समस्याओं पर कुछ ध्यान न दिया। सन् ६१० ई० में, अफ्रीका के रोमीय शासक के पुत्र हेराक्लियस को, पूर्वी रोमीय साम्राज्य का सम्राट चुना गया।

६११ ई० में, फारस के सम्राट खुसरो ने, पूर्वी रोमीय साम्राज्य की गड़बड़ी से फायदा उठाकर, यरूसलम पर आक्रमण कर दिया और 'हजरत ईसा के क्रास' (True Cross) को उठा लाया, जो विश्व भर के ईसाइयों का 'परम-पूज्य' माना जाता था। ६१६ ई० में, फारस के शाही सेनापति ने, पेलूशियम पार करते हुए, मिश्र पर आक्रमण किया, और उसके प्रसिद्ध बन्दर-गाह सिकन्दरिया पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार, प्रायः नौ सौ वर्ष के पश्चात् फारस ने नील की घाटी पर पुनः अपना झंडा फहराया।

६१७ ई० में, एक दूसरी फारसी सेना ने, चाल्सीडान पर अधिकार कर लिया, जो कि कुस्तुन्तुनिया के विपरीत, बिठीनीया के तट पर स्थित था। रोमीय सम्राट हेराक्लीयस ने, फारसी सेनापति शहीन के कहने पर अपना राज-दूत भी, सम्राट खुसरो के पास भेजा, परन्तु उससे कोई लाभ न हुआ। अब फारस की राज्यसीमा, डेरियस महान् की राज्य-सीमा के बराबर हो गयी।

इधर रोमीय साम्राज्य की गड़बड़ी, एवं अवर (Avars) जाति के थ्रेस आक्रमण के कारण, सम्राट हेराक्लियस ने, पदत्याग कर कार्थेज भागने की तैयारी की। परन्तु जनता तथा प्रधान पादरी (Patriarch) ने उसे भागने नहीं दिया, और लड़ाई की तैयारी होने लगी।

६२२ ई० से ६२७ ई० तक, रोमीय सम्राट हेराक्लियस ने निरंतर फारस के साथ युद्ध, किया। ६२२ ई० में, ईसस के मैदान में पहुँचकर, वह, फारसी सेनापति, शहर बराज की सेना पर एकाएक टूट पड़ा। युद्ध में फारसी सेना

की हार हुई, और रोमीय सम्राट, आनन्दित होकर, कुस्तुन्तुनिया लौट गया और जाड़ा वहीं बिताया।

दूसरी बार के आक्रमण (६२३) में, रोमीय सम्राट ने, लैजीका में अपनी सेना को उतारा और आर्मेनिया पर चढ़ाई कर दी। इस बार भी फारसी फौज, पराजित होकर भागी, और रोमीय सम्राट ने, अल्बेनिया में जाड़ा बिताया। ६२४ ई० में, जब पुनः लड़ाई शुरू हुई, तो सम्राट ने पुनः दक्षिणी अल्बेनिया में मोर्चा शुरू किया और फारसी सेनापति शहर-बराज की पूरी सेना को एकदम काट डाला। अबकी जाड़ा, उसने सालबन (या वन) में बिताया।

अन्तिम लड़ाई—सरस की लड़ाई (Battle of Saras) के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी तिथि ६२५ ई० है और इस युद्ध में, शहर-बराज को पीछे हटना पड़ा।

६२६ ई० में, अवर जाति की सहायता से, सम्राट खुसरो ने, कुस्तुन्तुनिया पर घेरा डाला परन्तु रोमीय सम्राट के भाई थियोडोर, ने शाही सेनापति शहीन को परास्त कर दिया और फारसी सेना को घेरा उठाकर भागना पड़ा।

६२७ ई० में रोमीय सम्राट ने, असीरिया तथा मैसोपोटेमिया पर आक्रमण किया, और नीनेव पर दोनों सेनाओं में, भयंकर युद्ध हुआ। फारसी सेनापति के मारे जाने पर भी, फारसी सेना, तितर-बितर नहीं हुई, और अपने खेमे को, सुगमता से, लौट गयी। अब सम्राट हेराक्लियस के दबाव से, सम्राट खुसरो को, दस्तागीर्द (टेसीफोन के ७० मील उत्तर) के पास भागना पड़ा, और बराज-रुद (Baraz Rud) नामक नहर से सुरक्षित, उसने रोमीय सम्राट का मुकाबला करने की चेष्टा की। परन्तु, हेराक्लियस के आने की खबर पाते ही, उसके दिल में डर समा गया और राजधानी छोड़कर भाग खड़ा हुआ। सम्राट हेराक्लियस ने, टेसीफोन तक धावा बोल दिया, परन्तु यह खबर पाकर कि राजधानी की नहर (नहर नहरवान) काफी गहरी है और दो सौ हाथी उसकी रक्षा कर रहे हैं, उसने घेरा डालने का विचार त्याग दिया और उत्तर की ओर, अपनी सेना-समेत कूच करते हुए, मार्च में कन्जाका पहुँच गया।

परन्तु इधर सम्राट खुसरो पर्वेज का भी अन्तिम दिन निकट था। उसने अपने मृत सेनापति शहीन की मृत-देह की बेइज्जती की, तथा अन्य सेनापति, शहर-बराज को भी फाँसी देने का बन्दोबस्त करने लगा। अन्त में राजधानी टेसीफोन की रक्षावाहिनी के सेनापति के नेतृत्व में, एक भयंकर विद्रोह खड़ा हुआ और सम्राट को कैद कर, एक 'अंधकार कोठरी' में रक्खा गया, उसके प्रिय पुत्र की, उसके सामने हत्या की गयी, एवं एक दिन उसको भी तलवार के घाट उतार दिया गया।

सम्राट खुसरो पर्वेज का चरित्र

फारस के सम्राटों में सम्राट खुसरो पर्वेज का नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है। सम्राट खुसरो, साहित्य तथा कला का प्रेमी था। उसकी शक्ति, एवं उदारता, तथा कोष, (treasure) एवं ईसाई-पत्नी शीरीन के प्रति गम्भीर प्रेम, एवं उसके काले घोड़े, शब्दीज के प्रति स्नेह, आदि बातों ने, उसकी प्रसिद्धि को और विस्तृत कर दिया था। ऐतिहासिक तवारी, उसके धन तथा ऐश्वर्य का उल्लेख करते हुए, कहता, है, कि 'सम्राट के स्वर्ण सिंहासन के पाये, लालमणि (ruby) के बने हैं। उसके पास ५०,००० ऊँट, घोड़े एवं गधे, एक हजार हाथी, बारह हजार स्त्रियाँ तथा पिघले हुए सोने का ताल है। वह अपने रूमाल napkin को साफ करने के लिए आग में फेंक देता है इत्यादि।'

युद्ध में उसकी प्रारंभिक सफलता ने, उसके चरित्र को नष्ट कर दिया था। परन्तु युवावस्था में वह अधिक उदार एवं न्याय-प्रिय रहा। वृद्धावस्था में वह क्रूर एवं निर्दयी तानाशाह बन गया जिससे उसका पतन शीघ्रता से हुआ।

सम्राट की धार्मिक उदारता

सम्राट ने सभी धर्म एवं सम्प्रदाय के साथ उदारता का व्यवहार किया। जब किसी जरस्थुत्री-पुरोहित (मागी) ने, सम्राट को, ईसाइयों का निधन (Persecution) करने के लिए अनुरोध किया तो उसने उत्तर दिया, "मेरा सिंहासन चार पाये के सहारे स्थित है न कि दो। और वे हैं, यहूदी, ईसाई एवं जरस्थुत्री।" (Vide P. Sykes, History of Persia, Vol I. p. 487). कुछ दिन तक रोमीय-साम्राज्य में निवास करने के कारण, एवं कुछ अपनी सुन्दरी ईसाई-पत्नी शीरीन के प्रभाव के कारण, सम्राट, अपने पूर्वजों से कहीं अधिक, ईसाइयों के प्रति उदार था। उसकी पत्नी शीरीन ने, राज्य में, कई गिर्जे एवं संघाराम (Monastaries) निर्माण करवाये।

परन्तु सम्राट के चरित्र में विरोधी तत्त्वों का समावेश था। जब रोमीय सम्राट हेराक्लियस, उसके विरुद्ध युद्ध करते हुए विजयी होने लगा, तो सम्राट ने, अपने राज्य भर के तमाम गिर्जों के खजाने को कब्जे में कर लिया, और सभी ईसाइयों को, नस्तूरी-धर्म (Nestorian Church) स्वीकार करने पर विवश किया।

सम्राट कोबद द्वितीय (६२८ ई०–६२९ ई०)

यह, सम्राट खुसरो का लड़का था और उसके बाद फारस का सम्राट बना। उसने, True Cross (जो उसके पिता यरुशलम से लूट कर लाये थे)

जीते हुए प्रान्त एवं युद्धबन्दियों को लौटाकर, रोमीय-सम्राट, हेराक्लियस से सन्धि कर ली।

गद्दी पर बैठने के उपरान्त, उसने अपने पिता के सताये हुए व्यक्तियों को, यथापूर्वक आर्थिक एवं अन्य सहायता प्रदान करते हुए, अपनी चारित्रिक उदारता प्रदर्शित की। परन्तु उसने अपने सभी भाइयों को मरवा डाला। उसके कुछ ही महीने के उपरान्त, वह स्वयं प्लेग की बीमारी से, परलोक सिधार गया।

उसके पश्चात् फारस का इतिहास, अराजकता, हत्या एवं षड्यन्त्रों, से भरा हुआ है। सन् ६२९ ई० में, शहर-बराज (फारसी सेनापति) ने गद्दी हड़पने की चेष्टा की, परन्तु अपनी सेना के द्वारा ही, वह मारा गया। राजधानी की सड़कों पर, उसकी लाश को घसीटते हुए, उसके सैनिकों ने चिल्ला-चिल्लाकर कहा, "जो कोई शाही वंश का नहीं है, अगर वह फारस की गद्दी पर बैठने की चेष्टा करेगा, तो उसका भाग्य भी शहर-बराज की भाँति होगा।" संक्षेप में शाही-सेना शाही वंश के राजकुमार के अलावा, और किसी को, फारस का सम्राट मानने के लिए तैयार न थी।

६२९-६३४ तक अराजकता का दौर रहा। फिर ६३४ ई० में, सम्राट यज्दगिर्द तृतीय (Yezdgird III) फारस की गद्दी पर बैठा। सासानी राजवंश का यह अन्तिम सम्राट था, जिसके समय, सासानी राजवंश का गौरव-रवि सदैव के लिए, अस्तमित हो गया। इसके समय में, अरब के मुस्लिम खलीफाओं ने, भयंकर रूप से, फारस पर आक्रमण किया और 'नहावन्द की अन्तिम लड़ाई' में (Battle of Nahavand ६४२ ई०) फारसी फौज को, अरबों की सेना ने, पूर्णतः परास्त कर दिया। सम्राट यज्दगिर्द तृतीय, पराजित होकर, बल्ख की ओर भागा, परन्तु रास्ते ही में मर्व के निकट, खजाने के लालच में, किसी ने उसकी हत्या कर दी। इस प्रकार, दुर्दशा की अवस्था में, अन्तिम सासानी सम्राट की जीवन-लीला समाप्त हुई।

अध्याय | ९

सासानीयों के समय शासन का प्रबन्ध, भाषा एवं साहित्य तथा कलाकौशल का विकास

सम्राट नौशेरवाँ ने किस प्रकार शासन-प्रबन्ध में सुधार करने की चेष्टा की, इसका उल्लेख, गत अध्याय में किया गया है। यहाँ पर उसका विस्तृत विवरण दिया जायगा।

जिस समय सम्राट नौशेरवाँ फारस की गद्दी पर बैठा, उस समय, फारस में नृशंसता, अन्याय, व्यभिचार, नाना प्रकार के अपराधों का राज्य था। इन सब बुराइयों को दूर करने के लिए उसने निम्नलिखित सुधार किये।

१. सत्रपियों (क्षत्रपियों) का निर्माण

सम्राट ने उत्तम शासन-प्रबन्ध के लिए सारे साम्राज्य को चार सत्रपियों (क्षत्रपियों) में बांट दिया। जैसे :—

(१) पूर्वी सत्रपी—जिसमें खोरासान तथा कर्मान के प्रान्त सम्मिलित थे।

(२) पश्चिमी सत्रपी—इसमें इराक तथा मैसोपोटेमिया सम्मिलित थे।

(३) उत्तरी सत्रपी—अर्मेनिया तथा अजरबैजान के प्रान्त इसमें सम्मिलित थे।

(४) दक्षिण सत्रपी—जिसमें फर्स तथा खुजीस्तान के प्रान्त सम्मिलित थे।

इन सभी सत्रपियों के शासन के लिए प्रान्तीय शासक (क्षत्रप) नियुक्त किये गये। इनकी शक्ति अधिक न बढ़ जाये, इसलिए सम्राट को गुप्तचर भी नियुक्त करना पड़ा, और उसे स्वयं भी सर्वदा चौकन्ना रहना पड़ता था।

२. भूमि-प्रबंध

हुरूमनीषी सम्राटों के समय भूमि-कर (revenue) उर्वर भूमि की उर्वरता (fertility) तथा उपज (produce) के अनुसार—$\frac{1}{10}$ से $\frac{1}{2}$ तक,

गल्ले के रूप में—निर्धारित होता था। परन्तु इस कर के अदा करनेवाले अफसरों के अत्याचारों से, किसानों ने जमीन की उर्वरता या पैदावार बढ़ाने पर कोई ध्यान नहीं दिया। परिणामस्वरूप, पैदावार एवं फसल में भारी कमी आ गयी।

सम्राट नौशेरवाँ ने, भूमिकर अदा करने के लिए यह नियम किया कि उसे उपज एवं धन, दोनों रूप में, चुकाया जा सकता है। हर एक भूमि के टुकड़े पर, भूमि कर के रूप में, १ दिरहम और पैदावार का कुछ हिस्सा देना आवश्यक था। सम्राट ने इसी कारण उन समस्त जमीनों की पैमाइश करवाई जिनमें खेती होती थी। भूमि कर के अलावा, फलों के पेड़, एवं सम्पत्ति पर कर तथा पोलटैक्स (Poll tax) भी अदा किये जाते थे। इनको, सालभर में, तीन बार, प्रति चार माह पर, चुकाना पड़ता था, और किसानों को तथा अन्य व्यक्तियों को अत्याचार से बचाने के लिए, मागी पुरोहितों को निरीक्षक (Inspector) नियुक्त किया गया था।

३. सिंचाई तथा यातायात के प्रबंध में सुधार

सिंचाई के लिए, सम्राट ने कई बाँध बनवाये जिससे किसानों को खेतों में पानी देने की सुविधा प्राप्त हुई।

उसने व्यापारिक मार्गों को सुरक्षित बनाया एवं निरंतर सड़कों तथा पुलों की मरम्मत करवाता रहा।

इन सब सुधारों का अवश्यम्भावी परिणाम यह हुआ कि किसानों की अवस्था अच्छी हो गयी, एवं फसल तथा अन्यान्य उपजों में काफी वृद्धि हुई। एवं सम्राट नौशेरवाँ के उत्तराधिकारियों के समय भी खेती तथा फसल की अवस्था काफी अच्छी थी।

४. सैनिक प्रबंध

सासानी सम्राटों ने स्थायी सेना रखने का उचित प्रबन्ध किया और घुड़सवारों के पोशाक एवं अस्त्रों की उन्नति पर विशेष ध्यान दिया। पार्थिया के सम्राटों के पास केवल हल्के घुड़सवार (light cavalry) होते थे, जिनका एक मात्र अस्त्र था तीर-धनुष। सासानी घुड़सवारों के कवच (armour) तथा अस्त्र दोनों ही भारी एवं मजबूत होते थे। उभरे हुए प्रस्तर चित्रों पर, सासानी घुड़सवार के मस्तक पर शिरस्त्राण (helmet) तथा शरीर पर कवच (coat of mail) तथा हाथ में ढाल (shield) दिखाई पड़ता है। उसके अस्त्र थे, भारी बल्लम, तलवार, गदा, तथा तीर-धनुष। घोड़ों के शरीर पर भी काफी भारी कवच, सुरक्षा हेतु, होता था। घुड़सवार एवं उसका घोड़ा

बहुत कुछ मध्ययुगीन यूरोप के महान् योद्धा (knight) के भांति प्रतीत होते हैं।

पदातिक सेना की ओर सासानीयों ने विशेष ध्यान नहीं दिया। धनुष-धारी सैनिक, पैदल सेना के मुख्य भाग माने जाते थे और ढालों की आड़ से तीर चलाने में कुशल होते थे। बाकी पैदल फौज के पास केवल भाले और तलवार होते थे, परन्तु रक्षा के लिए, कोई विशेष कवच वे नहीं पहनते थे।

इस प्रकार सासानी सम्राटों ने, एक ऐसी शक्तिशाली सेना का गठन किया था जो कि रोमीय सेना (Roman legionaries) के साथ, समान रूप से, युद्ध कर सकती थी। और इसी सेना के कारण, रोमीय सम्राटों को कभी फारस को पूर्णतः दबाने का अवसर नहीं प्राप्त हुआ।

इस सेनादल में हाथी-सेना भी होती थी, जिसके कारण, सासानीयों को कई युद्ध में काफी सहायता प्राप्त हुई। रोमीय घुड़सवारों के तथा अरबों के घोड़े अक्सर इन हाथियों को देखकर, भड़कते एवं भाग खड़े होते। सुदूर लैजी-का प्रान्त में भी, इस हाथी-सेना ने, काफी चमत्कार दिखाया।

घेरा डालने की कला एवं यन्त्रों में भी, सासानीयों ने, पार्थियनों से कहीं अधिक उन्नति की। पार्थिया की सेना किसी सुरक्षित दुर्ग या शहर को अपने अधिकार में नहीं कर सकती थी। परन्तु सासानी सम्राट, इस कला में दक्ष थे और आसानी से, कठिन से कठिन दुर्ग या शहर को अपने अधिकार में कर लेते थे। लम्बे-लम्बे सुरंग या खांई (trenches) खुदते हुए वे सुरक्षित दुर्ग या शहर के परिखा (ditch) की ओर अग्रसर होकर उसे मिट्टी और कूड़े कर्कट से भर देते थे। तब दीवार तोड़ने के यन्त्र (battering raw) आदि लाकर दुर्ग की दीवार को तोड़ने की चेष्टा करते। और जब दीवार में कहीं भी कोई स्थान टूट जाता तो फौरन् आक्रमण कर उसे अपने कब्जे में कर लेते थे।

सैनिकों को वेतन देने के लिए सम्राट नौशेरवाँ ने एक अधिकारी (Pay Master general) नियुक्त किया जिसे यह पूर्ण अधिकार था कि वह केवल उसी सैनिक को वेतन दे जो अस्त्र-शस्त्रों से उचित ढंग से, सुसज्जित हो। कहा जाता है कि एक बार सम्राट स्वयं जब अपना वेतन (चार हजार एक दिरहम) लेने के लिए उपस्थित हुआ तो उसके पास दो फालतू धनुष के तार (extra bowstring) नहीं थे जो कि हरेक घुड़सवार के पास होने चाहिए। सम्राट को वेतन नहीं मिला और नियमानुसार उसे राजप्रासाद लौटना पड़ा। और वहाँ से अपनी कमी को पूरा करते हुए वापस लौटने के पश्चात् ही (Pay-Master general से) वेतन प्राप्त हुआ। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि सम्राट नौशेरवां स्वयं अनुशासन का पालन करनेवाला था और अपने

बनाये हुए नियम या कानून को कभी नहीं तोड़ता था। अतः उसकी सेना सुसंगठित, शिक्षित एवं अनुशासन का पालन करनेवाली होगी, इसमें क्या आश्चर्य है। और तभी उसकी सेना सुशिक्षित रोमीय सेना से मोर्चा ले सकती थी।

सम्राट एवं उसका दरबार

उभरे हुए प्रस्तर-चित्रों (bas-reliefs) में, सम्राट के अति उत्तम कवच, तथा एम्ब्रायडरी एवं घोड़े की सज-धज आदि का सटीक प्रतीक (correct representation) देखा जा सकता है। यहाँ तक कि रोमीय सम्राट, डाईयोक्लेशियन ने भी, सासानी सम्राटों के राजकीय पोशाक तथा दरबार के नियमों का, अनुकरण किया था।

सासानी सम्राट, ऐश्वर्यशाली थे और काफी विलासी जीवन व्यतीत करते थे। कहा जाता है कि सम्राट के पास एक बहुमूल्य कालीन (जिसे स्वर्गीय कालीन कहा जाता था) था जिसकी लम्बाई ७० घनफुट और चौड़ाई ६० घन-फुट थी। इस कालीन में एक बगीचा बना हुआ था जिसकी जमीन सोने से कढ़ी हुई तथा रास्ते चाँदी के, हरियाली पन्ने (emerald) के एवं झरने मोती के बने हुए थे। इसी प्रकार पेड़, फूल तथा फल, उज्ज्वल हीरे, लालमणि (ruby) एवं अन्यान्य बहुमूल्य रत्नों (precious stones) के बने हुए थे।

इसके अलावा, सम्राट के सोने का सिंहासन (जिसके पाये ruby के बने थे) भी काफी प्रसिद्ध था। उसका मुकुट (crown) इतना भारी था कि उसे लटकाने की आवश्यकता होती थी। इन सब कारणों से, वस्तुतः सम्राट नौशेरवाँ 'महान्' था, इसमें सन्देह नहीं।

सम्राट दरबार में, पर्दों (curtains) के पीछे बैठता था। दरबारी एवं कोई भी व्यक्ति, सम्राट के बिना बुलाये, उसके निकट नहीं जा सकता था। ऐतिहासिक मासूदी के अनुसार, दरबारियों के तीन भाग थे—प्रथम, अमीर-उमरा एवं राजकुमार, जो सिंहासन की दायीं ओर, पर्दे से ३० फुट पीछे खड़े रहते थे। दूसरे विभाग में, प्रान्तीय शासक तथा सहायक करदाता (tributary kings) राजा लोग होते थे जो प्रथम विभाग के ३० फुट पीछे होते थे। तृतीय एवं अन्तिम विभाग में विदूषक (buffoons), संगीतज्ञ तथा गायक होते थे।

इनके अलावा, सिंहासन की बाँयीं ओर रक्षक दल (armed guard) होता था।

जब कभी सम्राट किसी को, अपने पास बुलाता, तो उसे अपने मुंह पर रूमाल बाँधकर आना पड़ता था, ताकि उसका दुर्गन्धमय श्वास (foul bre-

ath), सम्राट की पवित्रतां को नष्ट न करे। सम्राट के पास पहुँचकर, उसे साष्टांग (prostrate) लेटना पड़ता था और वह आदेश पाने पर ही उठ खड़ा होता था।

सम्राट के हरम में कई स्त्रियाँ होती थीं परन्तु राजमहिषी (chief queen) केवल एक होती थी। सम्राट खुसरो परवेज के हरम में, १२,००० स्त्रियाँ थीं।

सम्राट के आमोद-प्रमोद का प्रधान साधन था—शिकार। जंगलों में, या घेरे हुए बाड़ों में, जंगली जानवरों का शिकार किया जाता था। बाज (falcon) पालना भी एक प्रकार का दिलबहलाव था और सम्राट के बाजों को पालने के लिए एक अफसर होता था जो chief falconer कहलाता था।

सासानी सम्राट, पोलो खेलने के भी शौकीन थे और इस वंश का प्रतिष्ठाता सम्राट अर्देशीर स्वयं इस खेल में उस्ताद था। सम्राट शापूर प्रथम भी इस खेल के उस्ताद थे। सम्राट खुसरो पर्वेज, एवं उनकी रानी शिरीन तथा उसकी सहचरियाँ, पोलो खेलकर मनोविनोद करती थीं। शतरंज के खेल तथा संगीत, मनोविनोद के अन्यतम साधन थे।

भाषा एवं साहित्य—पहलवी भाषा की उन्नति

सासानी वंश के अधीन, पहलवी भाषा की विशेष उन्नति हुई। यह भाषा उस समय राजकीय भाषा--official language मानी जाती थी। चौथी शताब्दी ई० पू० में इसका प्रथम प्रचलन हुआ और नवीं शताब्दी तक इसका व्यवहार होता रहा। इस भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें लिखा कुछ जाता है और पढ़ा कुछ जाता है, जैसे, 'मल्कान-मल्का' (king of kings) लिखा जाता था और, "शाहंशाह" पढ़ा जाता था। रोटी के लिए 'लहमा' लिखा जाता था और 'नान' पढ़ा जाता था।

जरस्थुत्री धार्मिक ग्रन्थों के भाष्य एवं टीका (Explanation and commentary) आदि, अधिकांश पहलवी भाषा में होने के कारण उसकी प्राचीन आवेस्तिक-भाषा को समझने में काफी आसानी हुई है। 'जेन्द-आवेस्ता', पहलवी भाषा में, आवेस्ता की विशद व्याख्या (explanation) का ही दूसरा नाम है।

पहलवी भाषा के शिलालेख एवं साहित्य

सम्राट अर्देशीर के समय का 'नख्श-ई-रजब' (Naksh-i-Rajab) का शिलालेख, पहलवी भाषा के दो रूप तथा यूनानी अनुवाद के साथ लिखा गया है। पहलवी साहित्य के तीन भाग हैं—(१) आवेस्ता के पहलवी अनुवाद

(२) पहलवी भाषा में लिखे गए धार्मिक ग्रंथ (३) पहलवी भाषा में लिखे गये साधारण ग्रन्थ ।

प्रथम विभाग में २७ ग्रंथ हैं । द्वितीय विभाग में ५५ ग्रंथ हैं जिनमें 'दिन-कर्त' तथा "बुदाशीह" जैसे ग्रंथ भी सम्मिलित हैं । तृतीय विभाग में केवल ११ ग्रंथ हैं । इनमें सबसे प्राचीन ग्रन्थ है—'यत्कर-ई-ज़रीरान' (Yatkar-i-Zariran) । यह एक उपन्यास है और ५०० शताब्दी में लिखा गया है । कवि फिरदौसी ने 'शाहनामा' लिखने के लिए इसी से सहायता ली है । दूसरा प्रसिद्ध ग्रन्थ है 'कारनामक-ई-अर्तक्षेत्र-ई-पापकान' (Karnamak-i-Arta-Kshatri-Papakan) अर्थात्, 'अर्देशीर-पापकान' की कृतियाँ (deeds) । इसका जर्मन-अनुवाद श्री नोल्देके (Noldeke) ने किया है । इसका समय ६०० शताब्दी माना गया है । अन्यान्य ग्रन्थ, 'सीस्तान के चमत्कार' या शत-रंज के खेल पर लिखे गये हैं । सासानी युग में कोई कविता नहीं लिखी गयी ।

सासानी समय की वास्तु कला तथा महल-निर्माण-कला

सासानी सम्राटों ने टेसीफोन एवं हात्रा में अपने राजप्रासादों तथा महलों का निर्माण किया । प्रायः सभी सासानी महलों का निर्माण, एक ही ढंग से हुआ । ये साधारणतः 'oblong rectangle' आकार के, पूर्व से पश्चिम तक विस्तृत होते थे और इनके बीच में एक मंडप (porch) या मेहराब (arch) होता था । इस विशेष कला का निदर्शन अब भी, फारस के धार्मिक एवं घरेलू भवनों में पाया जाता हैं ।

इस कला की दूसरी विशेषता थी कि इनके कमरे चौकोर होते थे, जिनके ऊपर गुम्बद (dome) होते थे । इन कमरों में आने-जाने का रास्ता होता था । इन भवनों में, आंगन अवश्य होता था, और ये दोमंजिले नहीं होते थे । भवनों की सौन्दर्य-वृद्धि एवं सजावट (decoration) मेहराबदार ताकों (arched recesses) कारनीस, तथा चौकोर खंभों (pilasters) से की जाती थी ।

फीरोज़ाबाद का प्रासाद:—

फीरोज़ाबाद का प्राचीन नाम है 'जुर'—(Jur) । यह स्थान, शीराज़ के दक्षिणी-पूर्वी कोने पर स्थित है । यह प्रासाद, सासानी समय का सबसे प्राचीन भवन है । पूरी इमारत की लम्बाई ३२० फुट और चौड़ाई १७० फुट है । प्रवेश-द्वार पर केवल एक मेहराब है जो एक प्रकोष्ठदार हाल (vaulted hall) है, जिसकी लम्बाई ९० फुट तथा चौड़ाई ४३ फुट है । इसका निर्माण-काल तीसरी शताब्दी बताया जाता है । इस हाल के दोनों ओर, और छोटे-छोटे

हाल बने हैं। इनके अलावा और तीन कमरे, चतुष्कोण (square) आकार के थे जिनके गुम्बद ईंटों के बने हुए थे—(elliptical brick dome) इन कमरों से अन्य छोटे कमरों में होते हुए, आंगन में जाने का रास्ता था। इस आंगन (court) की लम्बाई-चौड़ाई ९० फुट थी और इसके चारों ओर छोटे-छोटे कमरे बने हुए थे।

फीरोज़ाबाद के निकट ही सर्विस्तान का राजप्रासाद है, जिसका निर्माण-काल यद्यपि, फीरोजाबाद के प्रासाद के बाद ही है, परन्तु बनावट उसी की भाँति है।

ताक-ई-किसरा (Tak-i-Kisra)

इस भव्य महल का निर्माण सम्राट नौशेरवाँ ने किया था। इस महल में एक सोने का सिंहासन था, जिस पर बैठकर सम्राट अपनी प्रजाओं को दर्शन देता था। इस भवन के बीच में एक विशाल, अर्ध-गोलाकार मेहराब है, इसलिए इसे कभी-कभी 'Arch of Khusro' भी कहा जाता है। सामने के हिस्से की (facade) सजावट के लिये, उसे वर्गाकार में विभाजित किया गया है, जिसमें चौकोर खंभे लगे हुए हैं। एक दृष्टि में ही, यह एक प्रभावशाली भवन प्रतीत होता है।

क़स्रे-शीरीन में सम्राट खुसरो का महल

यह स्थान, जेग्रोज पहाड़ी के पश्चिम में है और यहीं पर सम्राट खुसरो ने एक भव्य प्रासाद का निर्माण करवाया था जो अब भी 'ईमारत-ई-खुसरू' कहलाता है। इसका निर्माण-काल, ७वीं शताब्दी है, और यह भवन, एक विशाल पार्क के अन्दर बनाया गया था। अब यहाँ पर केवल खजूर और अनार के पेड़ की जड़ें ही पाई जाती हैं। अरब लेखकों के वर्णन से पता चलता है कि यहाँ पर जानवर, स्वतंत्रता से घूमते-फिरते नजर आते थे।

इस भव्य भवन के सामने, एक विशाल तालाब था। इस प्रासाद में कई खंभे थे, और इसकी छत, लकड़ी की बनी थी। प्रायः सभी कमरे प्रकोष्ठदार थे। खंभे ईंटों के हैं और पलस्तर से जोड़कर बनाये गये हैं, इस दृष्टिकोण से, हुख्मनीषी सम्राटों की वास्तुकला अधिक उत्तम है।

सम्राट खुसरो पर्वेज ने अन्य एक महल भी बनवाया था जो 'मशीता-महल' के नाम से प्रसिद्ध है। इस भवन को नाना-प्रकार की फूल-पत्तियों के नक्शे (design) पत्थरों में खोदकर, अलंकृत (Ornamentated) किया गया है। इन नक्शों में जानवरों के चित्र भी हैं। इसका भी निर्माण-काल ७वीं शताब्दी है।

नख्शे-रस्तम के प्रस्तर-चित्र (Bas reliefs at Nakshi-Rustam)

सासानी कला के सर्वोत्तम नमूने इस स्थान पर पाये गये हैं। ऐसे प्रस्तर-चित्र शापुर तथा अन्य शहरों में भी पाये गये हैं। नक्शे-रुस्तम के ये प्रस्तर चित्र, हुख्मनीषी सम्राटों की कब्रों के नीचे पाये गये हैं। बहुत दिनों तक फारस के लोगों का विश्वास था कि इन दाढ़ीवाले योद्धाओं की आकृतियाँ (figure) उनके राष्ट्रीय योद्धा, रुस्तम के ही प्रतीक हैं। १९वीं शताब्दी में, अनेक खोजों के पश्चात्, इस मूल-सिद्धान्त का खंडन हुआ।

नक्शे-रुस्तम के चित्रों की संख्या सात है। इनमें चतुर्थ वर्ग (fourth group) के चित्र अधिक महत्वपूर्ण हैं। इसमें सम्राट शापुर, घोड़े पर आसीन दिखाए गये हैं। उनके सामने रोमीय सम्राट वेलेरीयन, कैदी के रूप में हाथ फैलाए, जमीन पर पड़ा है। दूसरा कैदी मिरियडिस है। दोनों के पैरों में जंजीर है। सम्राट शापुर का सुन्दर चेहरा, मस्तक पर घुंघराले बाल, और स्वर्ण-मुकुट से चमक उठा है। उसकी दाढ़ी, ठुड्डी के नीचे, गाँठ देकर बाँधी गयी है। गले पर कीमती रत्नों का हार है। उनके मस्तक के पीछे, तलवार की मूँठ पर तथा घोड़े की दुम पर, राजकीय पट (ribbon) हिलता हुआ दिखाई पड़ता है। सम्राट तत्कालीन सलवार या पाजामा पहने हुए है।

यह चित्र, २६० ई० की घटना की स्मृति में बनाया गया था, जब कि सम्राट शापुर ने, रोमीय सम्राट वेलेरियन को कैदी बना लिया था।

अन्य तीन चित्र-वर्ग में, आपस में युद्ध के दृश्य हैं। सातवें चित्र में, सम्राट अर्देशीर पापकान को, होर्मुज्द देव से राजकोय अधिकार (दंड) प्राप्त करते हुए दिखाया गया है। सम्राट अर्देशीर, अपने पैर से, अन्तिम पार्थिया-सम्राट अर्दवान की मृत देह को कुचल रहा है।

सम्राट खुसरो-पर्वेज के शिकार-दृश्य

ये शिकार-दृश्य, करमंशाह के निकट पाये गये हैं और 'ताक-ई-बुस्तान' (Tak-i-Bustan) के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस शब्द का अर्थ है, 'बगीचे के मेहराब' (Arch of the garden)। दो बड़े मेहरावें, पहाड़ काटकर बनायी गयी हैं, जिनकी ऊँचाई ३० फुट और गहराई २२ फुट है। बाहर एक अर्धचन्द्र (Crescent) बना है और बगल में 'पंखवाली विजय' (Winged Victory) की मूर्तियाँ है और ये मूर्तियाँ दोनों ओर अलंकृत (Ornamented) हैं। संभवतः ये मूर्तियाँ तथा अलंकार, किसी यूनानी कारीगर के हैं।

अन्दर की दीवाल, ऊपर और नीचे, दो भागों में बँटी हुई है। ऊपर के चित्र में, सम्राट खुसरो पर्वेज, अपने दो सहायकों से, माला ले रहा है। नीचे

के भाग में, इसी सम्राट की आकृति बनी हुई है। मेहराब के दोनों ओर दो शिकार-दृश्य एक शूकर-शिकार तथा अन्य हिरण-शिकार के प्रस्तर चित्र हैं। हिरण-शिकार के दृश्य में, हाथियों के द्वारा, हिरण को, जालों के बाड़े में, खदेड़ते हुए, दिखाया गया है। और छोटे-छोटे चित्रों के द्वारा, सम्राट का आगमन, शिकार और घर लौटने के दृश्य दिखाए गये हैं। इन चित्रों में, गाने-बजाने वालों के भी चित्र हैं। शूकर-शिकार (boar hunt) के दृश्य में, सम्राट को नाव से, शूकर को तीर मारते हुए, दिखाया गया है, और यहाँ भी प्रथम चित्र की भाँति—शूकर को, हाथियों के द्वारा, खदेड़ते हुए दिखाया गया है। गाने-बजाने वाले नाव पर बैठे हैं। एक कोने में सुअर को साफ करते और हाथियों पर चढ़ाते हुए दिखाया गया है। प्रतीत होता है कि इनका मांस, राजप्रासाद के भोजन-सौरभ को बढ़ाने के लिए, प्रयोग कियोग किया जाता होगा।

सासानी युग में चाँदी के काम

अब तक सासानी-युग की तीन तश्तरियाँ (dishes) पायी गयी हैं। एक में, सम्राट बहराम गौर को, घोड़े पर सवार होकर, तलवार के द्वारा, एक शेर को मारते हुए दिखाया गया है। दूसरी तश्तरी में, सम्राट शापुर द्वितीय, हिरण का शिकार करते हुए दिखाए गये हैं। इन सम्राटों को केवल उनके मस्तक पर पहने हुए मुकुट से ही पहचाना जा सकता है क्योंकि हर एक सम्राट का मुकुट भिन्न-भिन्न होता था।

तीसरी तश्तरी में, सिंह, शूकर, जंगली भेड़ आदि के शिकार-दृश्य हैं। पूरी तश्तरी को एक ही चाँदी के पत्तर से नहीं बनाया गया है—वरन् हर एक भाग को अलग-अलग बनाकर जोड़ा गया है, जो कि कला की दृष्टि से एक चमत्कारिक ढंग माना गया है।

सम्राट शापुर प्रथम की प्रस्तर मूर्ति

शापुर प्रथम द्वारा बसाये हुए शापुर नगर के निकट, एक गुफा के ऊपर, उक्त सम्राट की एक विशाल प्रस्तर मूर्ति का आविष्कार हुआ है। यह मूर्ति, ४ फुट ऊँची एक वेदी पर बनायी गयी थी। अब भी उस पर चप्पल पहने हुए, सम्राट के पैरों के निशान हैं। मूर्ति टूटी हुई हालत में, पास ही पड़ी है।

सासानी-युग के प्रासाद तथा भवननिर्माण कला की विशेषता यह थी कि उनका निर्माण इस ढंग से किया जाता था कि सम्राट, पर्दे के द्वारा, अदृश्य रहे, परन्तु उसी हाल या भवन में, उनके मन्त्री, अमीर, दरबारी आदि सभी के खड़े होने का पर्याप्त स्थान हो। इसीलिए इन भवनों में, मेहराब तथा प्रकोष्ठ-

दार कमरों (Vaulted rooms) का अधिकाधिक प्रयोग देखा जाता है। मुस्लिम-कला पर, इस कला का काफी प्रभाव पड़ा, क्योंकि हजार वर्षों के पश्चात् निर्मित, मेशेद की मस्जिद, इसी ढंग पर बनी है।

सासानी bas-reliefs भी हुख्मनीषी सम्राटों के समय से कहीं अधिक उन्नतशील थे। इन चित्रों में, सम्राटों के चित्र, अधिक भव्य एवं सुन्दर प्रतीत होते हैं। शिकार-दृश्यों में गति एवं सजीवता दिखाई पड़ती है। कला की इस उन्नति से यह स्पष्ट हो जाता है कि, सासानी सम्राटों का समय, निश्चय ही, ईरान में, राष्ट्रीय-जागरण (National awakening) का समय था, जिस कारण इतने भव्य राजप्रसाद एवं प्रस्तर-मूर्तियाँ एवं रेखा-चित्र (bas relief) बन सके।

अध्याय | १०

सिन्ध घाटी की सभ्यता

सिन्ध-घाटी की सभ्यता, भारत में आर्यों के आने और उनकी सभ्यता के विस्तार होने के, प्रायः डेढ़ हजार वर्ष पूर्व, सिन्ध तथा उसकी सहायक नदियों के किनारे, विकसित हुई थी। इस सभ्यता का प्रारंभिक समय, ५००० ई० पू० बताया जाता है। सर जान मार्शल, डा० राखालदास बैनर्जी, डा० आर० डी० व्हीलर, आदि विद्वानों के अथक् परिश्रम से, सिन्ध-घाटी की सभ्यता का आविष्कार तथा विभिन्न बातों को जानने में, हम समर्थ हुए हैं।

सन् १९२१-२२ में, सिन्ध प्रान्त में, उत्खनन कार्य करते हुए, डा० राखालदास बैनर्जी ने इस सभ्यता का अकस्मात् आविष्कार किया। तत्कालीन पुरातत्व विभाग के प्रधान परिचालक, सर जान मार्शल ने, डा० बैनर्जी को, इस आविष्कार में, पूरी-पूरी सहायता पहुँचाई और दोनों के अथक् परिश्रम से, इस भ्रमात्मक सिद्धान्त का खंडन हुआ कि भारतीय सभ्यता का इतिहास, आर्यों के भारत आगमन से प्रारम्भ होता है। सबसे आश्चर्य की बात तो यह है कि जहाँ आर्य या वैदिक सभ्यता, केवलमात्र ग्रामीण सभ्यता (rural civilisation) थी वहाँ, सिन्ध-घाटी की सभ्यता, नगर-सभ्यता (Urban or Town civilisation) थी। इस सभ्यता का समय-काल, नाना प्रकार के तथ्यों के आधार पर, ३,००० ई० पू० से २००० ई० पू० तक माना गया है।

सिन्ध घाटी के प्रधान नगर एवं बस्तियाँ

आज भी सिन्ध घाटी के इन नगरों के खंडहर, हमें उस अतीत गौरव का स्मरण कराते हैं। नगर के भवनों का निर्माण, पक्की ईंटों से, सुपरिकल्पित योजना (well-planned scheme) के अनुसार किया गया था। इन शहरों में प्रधान शहर ये हैं:—सिन्ध प्रान्त के लरकाना जिले में मोहनजोदड़ो, पश्चिमी पंजाब के माण्टगोमरी जिले में हड़प्पा, पूर्वी पंजाब के अम्बाला जिले में रूपेर, दक्षिण के काठियावाड़ प्रान्त में रंगपुर एवं लोठाल—जहाँ अभी हाल

ही में खुदाइयाँ हुई हैं। इन शहरों में से, अभी तक मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा के ही विस्तृत विवरण हमें प्राप्त हुए हैं।

मोहनजोदड़ो

सिन्धी भाषा में, मोहनजोदड़ो शब्द का अर्थ है, 'मृतकों का टीला' (mound of the dead)। बहुत दिनों तक लोगों को इस सभ्यता का पता न चलने कारण ही, संभवत: उन्होंने उस स्थान का नाम, ऐसा रक्खा हो। मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा, दोनों ही स्थानों पर, दो टीलों का आविष्कार हुआ है। इनमें से छोटा परन्तु ऊँचा टीला पश्चिम में और एक छोटा परन्तु बड़ा टीला पूर्वी दिशा में स्थित है। डा० व्हीलर ने १९४६ में, उत्खनन करने के पश्चात् यह आविष्कार किया कि छोटा टीला, तो सुरक्षित दुर्ग का खंडहर है, परन्तु बड़ा टीला स्वयं, नगर का ही ध्वंसावशेष है। इस बड़े टीले की खुदाई में ही, यहाँ के नगर-निवासियों की नगर-निर्माण कला एवं सुन्दर नागरिक-जीवन बिताने का पता चला है। इस शहर की सभी सड़कें, एक दूसरे को समकोण पर काटतीं हुई दिखायी पड़ती हैं। सड़कें अधिकतर, उत्तर-दक्षिण एवं पूर्व-पश्चिम दिशा की ओर फैली हुई हैं।

मकान तथा नालियाँ

मकानों के निर्माण के लिए, भट्टी में पकी हुई ईंटों का प्रयोग किया गया है। इनमें बड़ी-बड़ी ईंटों की लम्बाई २०¼", चौड़ाई १०½", एवं मोटाई ३½" है। हरएक मकान में, रहने के लिए, तीन या चार कमरे होते थे। साथ ही, स्नानघर एवं रसोईघर भी होते थे। कुछ मकान, दो या तिमंजिले भी होते थे और किसी-किसी में ३० कमरे तक होते थे। हरएक मकान में एक कुआँ और नालियाँ (underground drainage) होती थीं, जो गन्दे पानी को, मकान के बाहर ले जातीं और सड़क की बड़ी नाली से मिला देती थीं। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यहाँ के निवासी, स्वास्थ्य तथा स्वच्छता (Health, Hygiene and Sanitation) पर पूर्ण ध्यान देते थे जो कि उत्तम नागरिक जीवन के लिए अत्यावश्यक है। सारे शहर में, सड़क के नीचे नालियाँ बनी हुई थीं, जिनके द्वारा सारा गन्दा पानी, शहर के बाहर चला जाता था। नालियों (drainage) का इतना सुन्दर प्रबन्ध अन्य किसी समकालीन सभ्यता में (जैसे मैसोपोटेमिया) नहीं पाया जाता है।

मोहनजोदड़ो का दुर्ग एवं प्राकार (Citadel and defence)

मोहनजोदड़ो का दुर्ग, बीस फुट ऊँची निर्मित एक कृत्रिम वेदी (platform) पर बसा हुआ था, जो गीली मिट्टी एवं गीली मिट्टी की बनी हुई

ईंटों का बना हुआ था। दुर्ग की रक्षा के लिए एक विशाल प्राकार बना हुआ था, जिसमें स्थान-स्थान पर, पक्की ईंटों की बनी हुई बुर्जें भी थीं।

इसी दुर्ग के अन्दर एक सार्वजनिक स्नानागार भी बना हुआ था, जिसकी लम्बाई ३९ फुट, चौड़ाई २३ फुट एवं गहराई ८ फुट थी। इसके चारों ओर पोशाक बदलने एवं पहनने के लिए कई कमरे बने हुए थे। यही मोहनजोदड़ो का ऐतिहासिक 'Great Bath' या महान् स्नानागार है। इससे साफ जाहिर होता है कि, मोहनजोदड़ो के निवासी स्नान करने तथा तैरने के शौकीन थे। इस स्नानागार में, नीचे उतरने के लिए, सीढ़ियाँ भी बनी हुई थीं। ठंढा एवं गरम पानी तथा भाप के द्वारा स्नान करने का पूरा बन्दोबस्त यहाँ था। इसके निर्माण के लिए पक्की एवं चमकीली ईंटों का प्रयोग किया गया है।

यहाँ पर एक शिक्षा भवन (college) का भी आविष्कार हुआ है जिसका क्षेत्रफल २३७' × ७८ वर्गफुट है। इसके बीच में एक आंगन है और इसके चारों ओर कई कमरे बने हुए हैं। एक खंभेवाला हाल का भी आविष्कार हुआ है, जिसका क्षेत्रफल ९० वर्गफुट है। इसके अलावा, एक खलिहान भी यहाँ पर पाया गया है, जो हवादार है और जिसमें, नगराधिकारियों की ओर से गल्ला एकत्रित कर, रक्खा जाता था जो आवश्यकतानुसार, नगर-निवासियों के काम आता था।

हड़प्पा-शहर, दुर्ग एवं अन्यान्य भवन

मोहनजोदड़ो की भाँति, हड़प्पा में भी, भवन, स्नानगृह, दुर्ग, सार्वजनिक नालियाँ आदि का आविष्कार हुआ है।

हड़प्पा के दुर्ग प्राकार का निर्माण, कच्ची मिट्टी तथा ईंटों के द्वारा किया गया है, जिसकी नीचे के घेरे की चौड़ाई ४५ फुट है, और जो ऊपर को तंग उठता हुआ चला गया है। बाहर की ओर से, ४ या ६ फुट चौड़ाई की पक्की ईंटों की गाँथनी (revetment) के द्वारा, इस दीवाल को और अधिक मजबूत बनाने का प्रयास किया गया है। दुर्ग प्राकार में स्थान-स्थान पर, पहरे के लिए, वर्गाकार बुर्ज, बनाये गये हैं। पश्चिम की ओर एक फाटक का भी आविष्कार हुआ है, जिससे साबित होता है कि दुर्ग के बाहर आने-जाने के लिये फाटक भी बने हुए थे। दुर्ग के अन्दर का हिस्सा, २० या २५ फुट. ऊँची वेदी पर, बना हुआ था।

दुर्ग के उत्तरी भाग में, उद्योग-धन्धों के लिए एक विशेष स्थान बना हुआ था। यहाँ पर, दो पंक्तियों में, छोटे-छोटे घर बने हुए पाये गये हैं, जो संभवतः 'coolie quarters' यानी मजदूरों के रहनें के घर थे। हरएक घर में एक आंगन और एक कमरा पाया गया है। इन घरों में नासपाती के आकार के

चूल्हे और अनाज पीसने के लिए, पक्की ईंटों की बनी हुई, गोल-वेदियों की पाँच पंक्तियों, का भी आविष्कार हुआ है।

इन 'coolie-quarters' के और अधिक उत्तर में, ६ खलिहानों (granaries) का आविष्कार हुआ है जिनका क्षेत्रफल, ५०'×२०' है। इन भवनों के निर्माण से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यहाँ का केन्द्रीय शासन-प्रबन्ध अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया था।

मोहनजोदड़ो की भाँति, हड़प्पा में भी पक्के मकान एवं गन्दे पानी के निष्कासन के लिए पक्की ईंटों की बनी हुई नालियाँ पायी गयी हैं। मकानों के दरवाजे, सार्वजनिक रास्ते की ओर (Public Road) न खुलकर, अगल-बगल खुलते थे जिससे रास्ते की धूल अन्दर न प्रवेश कर सके।

शहर की प्रधान-प्रधान सड़कें भी पक्की ईंटों की बनी हुई होती थीं।

प्राचीन सिन्ध की जलवायु तथा उपज, भोजन तथा पशु

इन स्थानों में ऐसे प्रमाण प्राप्त हुए हैं जिनसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यहाँ की जलवायु, प्राचीन समय में इतनी शुष्क न थी, जैसी कि आज-कल है। उस समय प्रचुर वर्षा होती थी, और यह प्रान्त बड़े-बड़े जंगलों से भरा हुआ था। इन्हीं जंगलों से लकड़ियाँ लाकर ईंटों की भट्टियों में जलाई जाती थीं क्योंकि पक्की ईंटों का प्रयोग, मकान एवं सड़क बनाने में किया गया है।

वर्षा अधिक होने के कारण, यहाँ के लोग कृषि कार्य में काफी उन्नतिशील थे। साथ ही, मोहनजोदड़ो के निकट सिन्ध नदी एवं हड़प्पा के निकट रावी नदी की स्थिति के कारण, यहाँ के निवासियों को, कृषिकार्य तथा सिंचाई, आदि के लिए, प्रचुर जल प्राप्त हो जाता था।

उपज

यहाँ की मुख्य पैदावर गेहूँ, जौ और खजूर है जो प्रचुर परिमाण में यहाँ पैदा होता था। इनके अलावा, यहाँ के निवासी मटर, तरबूज, केला आदि नाना प्रकार के फलों का भी उत्पादन करते थे।

भोजन

उपरोक्त वस्तुओं के अलावा, सिन्ध के निवासी, अपने भोजन में निम्न वस्तुओं को भी शामिल करते थे जैसे, मछली, मुर्गा, भेड़ का मांस (mutton) गाय या बैल का मांस (beef), तथा सूअर का मांस (pork) ये सभी जानवर अधिक जल तथा जंगल वाले प्रदेशों में ही पाये जाते हैं। अतः यह एक और प्रमाण है कि उस समय का सिन्ध, निश्चय ही, आज के सिन्ध

की तुलना में, अधिक जलवाला, हरा-भरा, जंगलों से छाया हुआ, प्रदेश रहा होगा।

जानवर

पालतू जानवरों में, मवेशी, (विशेषकर उभड़ते हुए कूबड़ वाला साँड़) बिल्ली, कुत्ता, एवं हाथी का उल्लेख किया जा सकता है। तोता पालने का भी रिवाज था, जैसा कि तोते के आकार की एक मिट्टी के खिलौने से, स्पष्ट प्रतीत होता है। संभवत: यहाँ के निवासी, ऊँट और घोड़े नहीं पालते थे, क्योंकि इनके कंकाल (Skeleton) कहीं नहीं पाये गये हैं। जंगली जानवरों में, शेर (Tiger), भालू, साँभर, बाईसन (जंगली भैंस) और गैंडा, आदि का उल्लेख किया जा सकता है। प्रासंगिक रूप से यह कहना उचित होगा कि ये सभी जंगली जानवर, गम्भीर अरण्य (deep and dense forest) के निवासी हैं, जो इस बात की पुन: पुष्टि करते हैं कि प्राचीन सिन्ध में बड़े-बड़े जंगल थे।

वेश-भूषा, अलंकार तथा आभूषण

इतने प्राचीन काल में भी, सिन्ध के लोग, सूती वस्त्रों का प्रयोग करते थे क्योंकि वस्त्र का एक जला हुआ टुकड़ा, यहाँ पाया गया है। सिन्ध-घाटी के समसामयिक, मिश्र तथा ईराक के लोग, उस समय, सूती वस्त्रों का उपयोग करना नहीं जानते थे। कुछ विद्वानों का ऐसा भी विश्वास है कि कपास (Cotton), सिन्ध-प्रान्त से ही, आगे चलकर, उन देशों में भेजा जाता था, जिसे वहाँ के निवासी सिन्दौन (Sindon) अर्थात् 'सिन्ध-देश का माल या वस्तु' कहते थे, जिससे Sidon शहर का नाम पड़ा।

सूती-वस्त्रों के अलावा, ऊनी वस्त्रों का प्रयोग भी, यहाँ के निवासी करते थे। संभवत: जाड़े के दिनों में, सूती वस्त्र के ऊपर, ऊनी चादर, डालकर, जाड़े के हाथ से, अपने शरीर की रक्षा करते थे। हड़प्पा में प्राप्त एक घड़े के टुकड़े के ऊपर एक मनुष्य-मूर्ति बनी हुई है, जो धोती पहनी हुई जान पड़ती है। मोहनजोदड़ो में प्राप्त, प्रस्तर-मूर्ति (steatite Statue)से प्रतीत होता है कि, सिन्ध-प्रदेश के लोग, अवश्य ही, ऊनी-शाल का प्रयोग करते थे।

सिंध-प्रदेश के निवासी, नाना प्रकार के आभूषण एवं अलंकार पहनने के भी शौकीन थे। यहां पर नाना प्रकार के आभूषणों का आविष्कार हुआ है, जैसे, गले के हार, चूड़ियाँ, बाजूबन्द, टायरा, कर्णफूल (ear-rings), करधनी, अँगूठी, पायजेब (anklet), नाक-फूल (nose-stud) आदि। स्त्री और पुरुष, दोनों ही, हार, चूड़ी, अंगूठी, आदि अलंकारों का प्रयोग

करते थे। इन अलंकारों के निर्माण के लिए, सोना, चाँदी, हाथीदाँत, ताँबा, एवं बहुमूल्य पत्थर जैसे स्फटिक, नीलम, सुलेमानी पत्थर एवं जेड (Jade) आदि का प्रयोग होता था। गरीब लोग, अधिकतर, पकी, हुई मिट्टी के आभूषण पहनते थे।

स्त्रियाँ नाना प्रकार से केश बाँधती थीं। कभी-कभी तो वे, बालों के गुच्छे, फीते में बाँधकर, पीछे लटका देती थीं। पुरुष अपने सिर पर, छोटे-छोटे बाल रखते थे। शिरोभूषण (head-dress) पहनने का रिवाज, स्त्रियों में था। मोहनजोदड़ो, तथा हड़प्पा में, हाथीदाँत की बनी हुई कंघियाँ एवं मूँठ लगे हुए ताँबे के आईने पाये गये हैं।

घरेलू व्यवहार की चीजें

घरों में नित्य व्यवहार के लिए, नाना प्रकार के मिट्टी के घड़ों का प्रयोग होता था। इन्हें भट्टी में पकाकर कड़ा कर लिया जाता था, फिर इन पर, लाल रंग चढ़ाये जाते थे, जिस पर, काले-रंग से नाना प्रकार की ज्यामितिक डिजाइनें बनी होती थीं। शव-दाह के लिए, ऐसे ही बने हुए, बड़े-बड़े मिट्टी के घड़ों का प्रयोग होता था। इन मिट्टी के वर्तनों को बनाने के लिए, कुम्हार के चाक, अवश्य रहे होंगे। इस प्रसंग में यह उल्लेख किया जा सकता है, कि प्राचीन सुमेरिया-निवासी भी, कुम्हार के चाक (Potters Wheel) का प्रयोग जानते थे और उसी के द्वारा, नाना प्रकार के घरेलू मिट्टी के बर्तन बनाते थे।

अन्यान्य घरेलू वस्तुओं में, तकुए का उल्लेख किया जा सकता है जो, पकी हुई मिट्टी, चीनी मिट्टी (Porcelain) या कछुए के खोल (shell) से बनता था। तकुए का प्रयोग, सूत कातने के लिए होता था। आज भी देहातो में इसका प्रयोग जारी है।

अन्य घरेलू वस्तुओं में निम्न वस्तुओं का उल्लेख किया जा सकता है जैसे, हाथीदाँत एवं हड्डी की बनी हुई सुई तथा रेशमी कंघी; ताँबा एवं पीतल की बनी हुई कुल्हाड़ी, चाकू, हँसिया, मछली पकड़ने के काँटे, और छुरे (razors); पत्थर के बने हुए छोटे-छोटे टुकड़े (नाप-तौल के लिए) आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

बच्चों के नाना प्रकार के खिलौने भी पाये गये हैं, जैसे पहिएदार गाड़ी एवं कुर्सी, तोता, सीटी (whistle) आदि। इससे यह प्रमाणित होता है कि सिन्ध-निवासी, बच्चों की मानसिक तथा शारीरिक उन्नति के प्रति पूरा ध्यान देते थे। इस प्रसंग में, यह उल्लेखनीय है कि, आधुनिक शिक्षाविद्, खेल तथा खिलौने के द्वारा ही बच्चों को शिक्षा देने की प्रथा (Play-way in Education) को सर्वोत्तम बताते हैं।

युद्ध के अस्त्र-शस्त्र

सिन्ध-घाटी के लोग, ताँबे या काँसे के बने हुए हथियारों का प्रयोग करते थे, जैसे कुल्हाड़ी, भाला, छुरा (daggers), गदा आदि। वे तीर-धनुष का इस्तेमाल बहुत ही कम करते थे, क्योंकि इसके नमूने, खुदाइयों में बहुत कम प्राप्त हुए हैं। उत्खनन में, अभी तक केवल दो छोटी तलवारों का आविष्कार हुआ है, जिससे पता चलता है कि तलवार का प्रयोग भी, वे बहुत कम जानते थे। इसी प्रकार, रक्षात्मक अस्त्र-शस्त्र जैसे ढाल तथा कवच भी यहाँ नहीं पाये गये हैं। अत: प्रतीत होता है कि आत्मरक्षात्मक अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग भी वे नहीं जानते थे। घोड़ों का प्रयोग न जानने से, आक्रमणकारियों के हाथ, इनकी अवश्य ही गहरी पराजय हुई होगी। ऐसा मालूम होता है कि यहाँ के निवासी शान्ति-प्रिय थे, अत: युद्धादि की ओर इनका ध्यान अधिक न था। और इसी शान्ति-प्रिय स्वभाव के कारण, इनकी पराजय, विदेशी जातियों के हाथ हुई।

लेखन-शैली

सिन्ध-घाटी में पाये गये सिलमोहरों पर जो चित्रलिपि (Pictorial script) पायी गयी है, उससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ये लोग लिखना अवश्य ही जानते थे। दुर्भाग्यवश, इस लिपि (script) का पाठोद्धार अभी तक न हो सका। वाराणसी हिन्दू विश्वविद्यालय के नामी विद्वान डा० प्राणनाथ ने कुछ सीलमोहरों को पढ़ने की चेष्टा की है। उनका कहना है कि इन पर, वैदिक मन्त्र लिखे हुए हैं। परन्तु उनके सिद्धान्त का प्रतिपादन, अभी तक अन्य किसी विद्वान ने नहीं किया है।

सिन्ध-घाटी के सीलमोहर एवं उनका ऐतिहासिक महत्व

अब तक इन खुदाइयों में, ५०० सील-मोहरों का आविष्कार हुआ है। ये सील मोहर, सिन्ध-घाटी के प्राचीन निवासियों के जीवन-यापन, लेखन-शैली, व्यापार तथा व्यापारिक सम्बन्ध, एवं धर्म पर काफी प्रकाश डालते हैं। अत: उक्त दृष्टिकोण से, सिन्ध-घाटी की सभ्यता के इतिहास में उनका स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण है।

इन सीलमोहरों पर नाना प्रकार के जानवरों के चित्र पाये गये हैं, जैसे कुब्ज वाला साँड़ (humped bull), यूनिकार्न (एक विचित्र जानवर जो आधा बैल एवं आधा भैंस है), हाथी एवं गैंडा। मोहनजोदड़ो में प्राप्त एक सीलमोहर पर, तीन मुंह-वाले देवता का चित्र पाया गया है, जिसके सिर पर दो सींग हैं, और जो ध्यानावस्था में, आसन लगाये योगी की तरह बैठा हुआ है और उसके चारों ओर नाना प्रकार के पशु घूम रहे हैं। विद्वानों के

अनुसार यह 'पशुपति शिव' की मूर्ति है, जो योगीराज भी कहे जाते हैं। उनका यह भी कहना है कि शिव तथा शक्ति की पूजा, सिन्ध घाटी से ही प्रारम्भ हुई है, और परवर्त्ती हिन्दू-धर्म में शक्ति-पूजा का प्रचलन, सिन्ध-घाटी की सभ्यता का ही अप्रत्यक्ष प्रभाव है।

व्यापार एवं व्यापारिक सम्बन्ध

सिन्ध-घाटी के लोगों का व्यापारिक सम्बन्ध, भारत के अन्यान्य देशों से भी रहा। पश्चिम की ओर इनका सम्बन्ध, अफगानिस्तान, फारस तथा ईराक से था। ये लोग राजस्थान के खेत्री (Khetri) प्रान्त से (संभवतः अफगानिस्तान से भी) ताँबा, मैसूर (Mysore) से सोना, ईराक तथा बदख्शाँ (अफगानिस्तान) से नीलम (Lapis-Lazuli), पामीर से जेड (Jade) एवं फारस के खोरासान प्रान्त से टर्को (Turquoise) मँगाते थे।

पश्चिमी एशियायी देशों में ये अधिकतर, सूती-वस्त्र, मसाले, आदि वस्तुओं को भेजते थे। इन देशों से, सिन्ध-घाटी के लोगों के व्यापारिक सम्बन्ध का एक प्रमाण और है कि, इनके सीलमोहर, मैसोपोटेमिया के उर, (Ur), लगाश (Lagash), सूसा (ईलम की राजधानी), तथा तेल-अस्मार आदि स्थानों में पाये गये हैं। निश्चय ही सिन्ध-घाटी के सौदागरों के द्वारा, ये सील-मोहर, पश्चिमी एशिया के इन प्रान्तों में पहुंचे होंगे। हो सकता है, इन भारतीय व्यापारियों के उपनिवेश भी इन स्थानों पर रहे हों। वस्तुतः, लगाश के निकट उम्मा शहर में, एक ऐसी कपड़े की गाँठ पायी गयी है, जिसपर सिन्ध-घाटी के सील-मोहर का चिह्न है। पश्चिमी एशियायी देशों से, स्थल-रास्ते (काफिलों के द्वारा) एवं जल-रास्ते, दोनों के द्वारा व्यापार होता था। जल-रास्तों में, समुद्र के किनारे-किनारे, एक विशेष प्रकार की नाव या जलयान के द्वारा, व्यापार होता था, जिसका चित्र, एक मिट्टी के बर्तन के टुकड़े पर एवं, मोहनजोदड़ो में प्राप्त सील-मोहर पर, पाया गया है।

धर्म एवं धार्मिक विश्वास

ऊपर पशुपति शिव का उल्लेख किया गया है। शिव-पूजा सिंध-घाटी से ही प्रारंभ हुई, इसमें सन्देह नहीं। शिव के अलावा वे वृक्ष, नाग, यक्ष, नदी तथा जल आदि की भी पूजा करते थे। एक सील-मोहर पर वृक्ष के नीचे एक व्यक्ति खड़ा हुआ दिखाई पड़ता है, और ऊपर वृक्ष में एक और छोटी सी मूर्ति है, जो निश्चय ही वृक्ष-देवता है। एक अन्य सील-मोहर पर, शिव लिंग के दोनों ओर, दो नाग फन उठाए दिखाई पड़ते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सिंध के निवासी शिवलिंग एवं नाग, दोनों की पूजा करते थे। एक सील-मोहर

पर, एक स्त्री की योनि से, एक वृक्ष निकलता हुआ दिखाई पड़ता है, यह निश्चय ही धरित्री माता की मूर्ति है, जिसकी पूजा सिन्ध-वाले करते थे। पक्की मिट्टी की बनी हुई धरित्री माता की छोटी-छोटी असंख्य मूर्तियाँ, सिन्ध-घाटी में प्राप्त हुई हैं, जिससे यह विश्वास दृढ़ हो जाता है कि वे मातृ देवी के उपासक थे।

इसके अलावा, कई लिंग और योनि प्रस्तर (Ling and Yoni Stones) यहाँ पाये गये हैं जिससे स्पष्ट हो जाता है कि वे इनके पूजक थे।

विद्वानों का विश्वास है कि परवर्ती हिन्दू धर्म पर, निश्चय ही सिन्धु-निवासियों के धर्म का गंभीर प्रभाव पड़ा क्योंकि शिवलिंग, नाग, वृक्ष जल या नदी की पूजा आज भी हिन्दुओं में प्रचलित है।

कला-कौशल

विशाल भवन एवं सड़कों तथा नालियों का निर्माण, सिन्ध-निवासियों की वास्तुकला का अपूर्व उदाहरण है। लेखन-शैली में उनके उन्नतिशील होने का प्रमाण, वहाँ पर प्राप्त सील-मोहरों से हो जाता है। सील-मोहरों की छोटी बनावट एवं उन पर पशुओं की मूर्तियों का निर्माण, उनकी सूक्ष्म-कला (Fine Arts) का द्योतक है। नाना प्रकार के ताँबे तथा काँसे के औजार एवं हथियार एवं अलंकार निर्माण, उनकी सूक्ष्म-कला के प्रति रुचि का ही परिचायक हैं।

मूर्ति-कला में भी वे काफी उन्नतिशील थे। हड़प्पा में प्राप्त दो प्रस्तर-मूर्तियों की निर्माण-कला के बारे में, सर जान मार्शल का कहना है कि,

"When I first saw them, I found it difficult to believe that they were Pre-historic : they seemed so completely to upset all established idea about early art. Modelling such as this, was unknown in the ancient world, up to the Hellenistic age of Greece."

अर्थात् "जब मैंने इन मूर्तियों को पहले-पहल देखा, तो यह विश्वास करना कठिन हो गया कि ये प्रागैतिहासिक युग की हैं। इन दो मूर्तियों ने, प्रारम्भिक कला के बारे में, सभी स्थिर सिद्धान्तों को, पूर्णतः उलट दिया। इस प्रकार की मूर्तियों का निर्माण, प्राचीन विश्व में यूनान के हैलेनिस्टिक युग तक लोगों को अज्ञात रहा।" (Tr. by the author himself)

मोहनजोदड़ो में प्राप्त, चूना-पत्थर की बनी हुई मनुष्य-मूर्ति को ध्यान-पूर्वक देखने से पता चलता है कि उसके शरीर पर फूलदार डिजाइन का कोई वस्त्र है, सिर के बाल तथा दाढ़ी आधी कटी हुई, यत्नपूर्वक सँवारी हुई है, ऊपर की मूँछें मुड़ी हुई हैं, और सिर पर एक फीता जैसी कोई चीज बँधी है।

एक नर्तकी की मूर्ति भी यहाँ प्राप्त हुई है, जिसके दोनों हाथों पर कोहनी तक चूड़ियाँ हैं, दाहिना हाथ कमर पर है और वह बायाँ पैर उठाकर नृत्य की मुद्रा में ताल दे रही है। यह मूर्ति, मूर्तिकला और संगीत कला का अपूर्व उदाहरण है।

ये दोनों ही मूर्तियाँ सिन्ध-घाटी के लोगों की मूर्ति-कला में पर्याप्त उन्नतिशील होने की परिचायक हैं। कहना असंगत न होगा कि समसामयिक, सुमेरिया तथा बैबिलोनीय सभ्यता में, इस प्रकार की मूर्तियों का आविष्कार आज तक नहीं हुआ है।

नाप-तौल के साधन

सिन्ध-घाटी के लोग घनाकार बटखरे (weight) का प्रयोग करते थे। ये बटखरे, पत्थर के टुकड़े या स्टीयाटाईट (steatite) के बने हुए होते थे। इन बटखरों का वजन, इन राशियों में होता था, १, २, ४, ८, १६, ३२ इत्यादि। नापने के लिए वे १३ या १३·२ इंच के 'फुट' (नापने का यन्त्र) और २०·३ या २०·८ इंच के 'घनफुट' का प्रयोग करते थे। इन वजनों के प्रचलन से, इस बात की पुष्टि हो जाती है कि, सिन्ध-घाटी के निवासी व्यापारादि में काफी उन्नतिशील थे। हड़प्पा में ब्रोंज्ज-धातु (काँसा या पीतल) की बनी हुई, नापने की छड़ का भी आविष्कार हुआ है।

सिन्ध-घाटी की सभ्यता का समय (Chronology of Indus-Valley Civilisation)

सिन्ध-घाटी के प्रायः ३० सीलमोहर, ईराक के विभिन्न सतह पर पाये गये हैं और इसी प्रकार पश्चिमी एशिया के कई सीलमोहर हड़प्पा के विभिन्न सतह में पाये गए हैं। अपितु, सिन्ध घाटी की अधिकांश वस्तुएँ, अक्काद सम्राट् सार्गोन प्रथम (Sargon of Akkad) के समय यानी २३५० ई० पू० के लगभग सुमेरिया-बैबिलोनिया में भेजी गयी थीं।

इसी प्रकार हड़प्पा की निम्न सतह (late Harappan levels) में प्राप्त घुमावदार तथा जानवर के सिर वाला पिन, छेद-सहित कुल्हाड़ी का हिस्सा तथा गदा, आदि से यह प्रतीत होता है कि इस सभ्यता का क्रम, २००० ई० पू० तक अवश्य ही इस प्रान्त में रहा होगा। इसी प्रकार हड़प्पा की ऊपरी सतह (upper level) में, 'फीआँस' का बना हुआ एक मोती (Faience bead) पाया गया है जिसका निर्माण एवं आकार क्रीट की राजधानी 'नसस' में पाये गये फीआँस मोती की तरह है जो १६०० ई० पू० का बना हुआ बताया जाता है।

अतः उपरोक्त नाना प्रकार के पुरातात्विक निदर्शनों से इस सभ्यता का समय २५०० ई० पू० से १५०० ई० पू० तक माना जा सकता है यद्यपि यह भी कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक, डा० रमेश चन्द्र मजुमदार का कहना है कि, "सिन्ध-घाटी की सभ्यता का समय, ई० पू० तीसरी शताब्दी है" (3rd. millenium B. C.)।

निवासी

यहाँ पर कई जातियों का निवास था, जिनमें ये मुख्य थीं :—

(i) प्रोटो-आस्ट्रोलयड (Proto-Austroloid)
(ii) अल्पाइन (Alpine)
(iii) भूमध्यसागरीय (Medittarranean)
(iv) मंगलोयड (Mongloid)
(v) द्राविड़ (Dravidian)

कुछ विद्वानों के अनुसार इन जातियों में द्राविड़ जाति अधिक प्रभावशाली थी और किसी समय पंजाब, सिन्ध, बलूचिस्तान एवं भारतवर्ष के अनेक भागों में इस जाति का निवास था। इन्हीं स्थानों से ये क्रमशः मैसोपोटेमिया की ओर चली गयीं। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि बलूचिस्तान की ब्राहूई जाति के लोग (Brahui People of Baluchistan) अब भी द्रविड़-भाषा का प्रयोग करते हैं।' और सम्भव है ये लोग बलूचिस्तान के रास्ते से ही, मक्रान-तट होते हुए, मैसोपोटेमिया पहुँचे हों।

दाह-क्रिया एवं प्रथा (Method of Cremation)

सिन्ध-घाटी के लोग अपने मृतकों को निम्न प्रकार से दफनाते थे :—

(i) छोटे-छोटे बच्चों को हाँड़ियों में रखकर ढक्कन द्वारा उसे ढाँप देते और जमीन के नीचे गाड़ देते थे।

(ii) कभी-कभी बड़े आदमियों को भी इसी प्रकार दफनाया जाता था।

(iii) मृत व्यक्ति को जलाकर उसकी राख तथा अस्थियों को हाँड़ी में रखकर जमीन के नीचे गाड़ देते थे। कभी-कभी मृत व्यक्ति को खुला छोड़ देते थे और कुछ काल पश्चात् उसकी बची हुई हड्डियों को एक हाँड़ी में रखकर जमीन के नीचे गाड़ देते थे।

(vi) मृतक को कभी-कभी कब्र में गाड़ते थे और उसके साथ कुछ हाँड़ी (pots), उस मृत व्यक्ति के गहने, प्रसाधन द्रव्य, भोजन की सामग्री भी गाड़ते थे। ऐसा करने का कारण यह था कि, सिन्ध वालों का विश्वास था कि, परलोक-यात्रा (Journey to the next world) के समय, मृतकों को

उपरोक्त वस्तुओं की आवश्यकता होती है। प्रसंगवश उल्लेखनीय है कि सुमेरिया तथा बैबिलोनिया के लोगों में भी अनुरूप विश्वास प्रचलित था और वे भी अपने मृतकों को दफनाने के समय नाना प्रकार की आवश्यकीय वस्तुएँ तथा अलंकारादि उनकी कब्र में गाड़ देते थे।

मृतकों को दफनाने के लिए इन हाँड़ियों को गहरे लाल रंग से रंगा जाता था और फिर उस पर गहरे काले रंग से नाना प्रकार की ज्यामितिक डिजाइनें, मछली तथा मोर की आकृति (figures), टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ आदि बनायी जाती थीं।

हड़प्पा में लकड़ी के शवाधार में दफनाया हुआ एक मृतक का अवशेष प्राप्त हुआ है। इस प्रकार की प्रथा भी अक्कादि एवं सुमेरिया सम्राट्, सार्गोन प्रथम के समय में प्रचलित थी। सम्भवत: यह व्यक्ति सुमेरिया से हड़प्पा को आया था और जब किसी कारण उसकी मृत्यु हो गयी तो हड़प्पा निवासियों ने उसकी मातृभूमि में प्रचलित प्रथा के अनुसार ही उसे दफनाया। इससे पता चलता है कि हड़प्पा निवासी विदेशियों के साथ बड़ा ही उदारता का व्यवहार करते एवं उनके सामाजिक नियमों को आदर की दृष्टि से देखते थे।

सिन्ध सभ्यता का विनाश

इस उन्नतिशील एवं महान् सभ्यता के विनाश के कई कारण विद्वानों द्वारा अनुमानित हुये है जैसे—(i), सिन्ध तथा उसकी सहायक नदियों की भयंकर बाढ़ एवं बाढ़ के पश्चात् इन नदियों का अपना रास्ता बदल देना। (ii) जल-वायु में गम्भीर परिवर्तन अर्थात् क्रमश: वर्षा का कम होना जिससे यहाँ की हरियाली का समाप्त हो जाना। (iii) आर्य-जातियों का आक्रमण जो सिन्ध-निवासियों से अधिक रण-कुशल थे एवं घोड़ों पर या रथ पर चढ़कर तीर-धनुष एवं लोहे की तलवारों से लड़ते थे। चूँकि सिन्ध निवासियों को इन चीजों का प्रयोग नहीं मालूम था, अत: वे शीघ्र ही युद्ध में आर्यों के विरुद्ध परास्त हो गये।

श्री एम० आर० साहनी महोदय इस सभ्यता के विनाश के कारण, 'सिन्ध नदी की भयंकर बाढ़' (flood theory) को ही बताते हैं। इसके विपरीत श्री व्हीलर साहब (Dr. R. E. M. Wheeler) का कहना है कि 'इन्द्र (यानी आर्यों के युद्ध देवता अत: आर्य-आक्रमणकारियों के प्रतीक) के आक्रमण से ही यहाँ के निवासी परास्त हो गये और इन्हीं आक्रमणकारियों ने यहाँ के शहरों को भी विध्वस्त कर दिया।'

पुरातात्विक खुदाइयों से यह पता चला है कि मोहेन-जो-दड़ो शहर सात बार ध्वस्त हुआ और सात बार उसका पुनर्निर्माण (rebuilt) हुआ। इस

प्रकार मोहेनजोदड़ो का प्राचीनतम शहर (oldest city) काफी पुराना रहा होगा, इसमें सन्देह नहीं।

इस सभ्यता के विनाश का अन्यतम कारण, भूकम्प (Earthquake) बताया जाता है। क्वेटा तथा बलूचिस्तान के अन्य प्रान्तों में अब भी अक्सर भूकम्प आते रहते हैं।

जो कुछ भी हो सिन्ध घाटी के खण्डहरों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अकस्मात् किसी विपर्यय (Calamity) के कारण ही इस सभ्यता का सदैव के लिए विनाश हो गया।

अध्याय | ११

प्राचीन चीनी सभ्यता का प्रारंभिक इतिहास

विश्व के सबसे प्राचीन सभ्य देशों में प्राचीन महादेश चीन भी, अपना विशेष स्थान बनाये हुए है। वस्तुतः आधुनिक सभ्यता कई बातों में चीनी सभ्यता की ऋणी है। प्राचीन चीन-साम्राज्य की प्रशंसा करते हुए फ्रांस के मनीषी एवं लेखक, वाल्टेयर (Voltaire) ने कहा है :—

"The body of this Empire, has existed, 4,000 yrs., without having undergone any sensible alternation in its laws, customs, language or even in its fashion of apparel.....The organisation of this empire is, in truth, the best that the world has ever seen." (Quoted by Will Durant in 'Our Oriental Heritage' p. 639)

अर्थात् '४००० वर्ष तक, इस साम्राज्य का ढाँचा कायम रहा और इस समय के अन्दर इसके कानून, सामाजिक रीति-नीति, भाषा एवं पोशाक आदि में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। सत्य तो यह है कि, इस साम्राज्य का संगठन, विश्व में सर्वोत्तम है।' (Tr. by the author himself).

अन्य एक विद्वान, काउण्ट कैसरलिंग ने, चीनी सभ्यता एवं संस्कृति की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि,

"China has created the highest universal culture of being hitherto unknown.....The greatness of China takes hold of and impresses me more and more.....The great men of the country stand on a higher level of culture than ours do....." (vide Our Oriental Heritage p 639).

अर्थात्, "सर्वोच्च विश्व-संस्कृति की सृष्टि चीन ने की है, जो अभी तक विश्ववासियों को अज्ञात रही·····चीन देश की महानता का पूर्ण प्रभाव मेरे ऊपर पड़ चुका है, और मैं क्रमशः उस महानता से अभिभूत होता जा रहा हूँ····इस देश के महान् पुरुषों की संस्कृति, मेरे देश के महान् पुरुषों की संस्कृति से कहीं अधिक ऊँची है।"

उसी विद्वान ने यहाँ के निवासियों की प्रशंसा में यह भी कहा है,

"How perfect is the courtesy of the cultured China man.....China's supremacy of form, is unquestionable.....The China man is perhaps the profoundest of all men....."

अर्थात् "सभ्य चीनी का विनय कितना उत्तम हैं.....चीनी संस्कृति की महानता निस्संदेह, जिज्ञासावाद के परे हैं.....संभवत: चीन के निवासी, विश्व के अन्य निवासियों से कहीं अधिक महान् एवं उदार हैं"—(quoted from Will Durant's, Oriental Heritage, p. 639).

वस्तुत: चीन के प्राचीन साहित्य एवं दर्शन का गम्भीर अध्ययन करने से, यह स्पष्ट हो जाता है कि चीनी सभ्यता एवं संस्कृति की विशेषता यह है कि चीनी कभी रूढ़िवादी नहीं रहे। लाओत्से (लाऊत्सु) एवं कुंग-फु-जे (कनफयु-शियस), मो-ती (मो-ती) तथा मेंग-जे (Mencius) जैसे महान् दार्शनिकों की विचारधाराओं ने, चीन के समाज को इतना प्रभावित किया कि वह कभी भी रूढ़िवाद एवं कुसंस्कार का शिकार न बन सका। साथ ही पुरोहित-वर्ग का प्रभाव, चीनी समाज एवं जनता पर कभी नहीं पड़ा इसीलिये, धार्मिक कलह, एवं रक्तपात से चीन, सर्वदा ही मुक्त रहा, जब कि विश्व के अन्य भागों में, धर्म के नाम पर खून की नदियाँ बह चली थीं।

अत: चीन के लोग भी अपनी संस्कृति के लिए गर्व करेंगे एवं उसकी तुलना में, विदेशियों को 'असभ्य' समझेंगे, इसमें क्या सन्देह ? परन्तु इस कारण उन्होंने विदेशियों पर कभी अत्याचार नहीं किया, एवं उन्हें 'असभ्य' (barbarian) कहते हुए भी, उनकी पर्याप्त श्रद्धा उन्होंने की एवं उन्हें आदर की दृष्टि से देखा। यूरोपवालों को वे बराबर असभ्य कहते रहे, परन्तु उनकी अश्रद्धा चीन वालों ने कभी नहीं की। परन्तु, यूरोपवालों ने चीन की महानता से लाभ उठाकर, शताब्दियों तक चीन को लूटा, जो कि उनकी असभ्यता का ज्वलन्त प्रमाण है।

चीन की भौगोलिक सीमा

यह देश, विश्व के सबसे विशाल समुद्र, प्रशान्त महासागर के द्वारा, पूर्व की ओर से घिरा हुआ है एवं सबसे ऊँचे पहाड़ एवं सबसे वृहत, मरु-स्थल या मरुभूमि (Central Asian desert), भी इस देश में है। इन प्राकृतिक सीमाओं के कारण, चीन देश बहुत दिनों तक बाहरी आक्रमणों से, सुरक्षित रहा। अत: बहुत दिनों तक, अखंड शांति, यहाँ विराजमान थी।

चीनी बड़े ही देशप्रेमी होते हैं और वे अपनी मातृभूमि को कई भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं, जैसे :—

(1) Tieun-Hua (तीएन-हुआ) अर्थात् स्वर्गीय भूमि = Under the Heaven)
(2) Sz-Hai (ज़-हैई) = चारों ओर समुद्र से घिरा हुआ (within the four seas)
(3) Chung-Kuo (चुंग-कुओं) = मध्यवर्त्ती राज्य (Middle Kingdom)
(4) Chung-Hwa-Kuo (चुंग-हवा-कुयो) = मध्यवर्त्ती फूलों का राज्य (Middle Flowery Kingdom)
(5) Chung-Hwa-Min Kuo (चुंग-हवा-मीन-कुयो = मध्यवर्त्ती फूलवाला जनता का राज्य (Middle Flowery People's Kingdom) आदि, आदि।

अन्यान्य प्राचीन सभ्यताओं की तरह चीनी सभ्यता भी, होवांग हो तथा यांग-टी-सी क्यांग नामक नदियों के किनारे ही फली-फूली। इसमें प्रथम नदी चीन के जत्तर में, तथा दूसरी नदी दक्षिण में, स्थित है। होवांग-हो नदी की भयंकर बाढ़ों के कारण, इसे 'चीन का दुःख' (Sorrow of China) भी कहा जाता है।

चीनी सभ्यता प्रायः ७००० वर्ष पुरानी है। यहाँ के लोग अधिकतर मंगोलियन जाति के हैं, परन्तु दक्षिणी रूस तथा मध्य एशिया की आक्रमणकारी जातियों का खून भी इनमें मिला है। भारत की तरह, यहाँ भी, भिन्न-भिन्न जातियों का मेल हुआ है, जिनके सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक रीति-नीति तथा आचार-व्यवहार में काफी अन्तर होने के कारण, इनमें, प्रायः संघर्ष हुआ करता था।

चीनी विश्वास के अनुसार विश्व-सृष्टि

चीनियों का कहना है कि इस विश्व के निर्माणकारी, महान् देवता, प' आन-कू हैं, जिन्होंने हथौड़े के द्वारा ठोंक-ठोंक कर २,२२९,००० वर्ष में इस विश्व का निर्माण किया। इतने वर्षों के अथक परिश्रम के पश्चात् भी जब देखा कि विश्व का पूरा निर्माण न हो सका, तो हताश होकर उन्होंने प्राण त्याग दिए। तब उनके श्वास (breathing) से वायु और बादल (wind and cloud), आवाज से वज्र गर्जन (thunder) और धमनियों से नदियाँ, शरीर के मेद (flesh) से धरातल (earth), केश (hair) से घास और पेड़, हड्डियों से धातु, पसीने से वर्षा (rainfall), और शरीर में लगे हुए कीड़ों से मनुष्य-जाति का जन्म हुआ। इस प्रकार प' आन-कू के आत्म-त्याग से ही विश्व-निर्माण का कार्य पूरा हो सका।

उपरोक्त सिद्धान्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि चीनी, बहुत प्राचीन-काल से ही, कारीगरों (artist and artisan) को श्रद्धा की दृष्टि से देखते रहे क्योंकि उनके विश्वकर्मा प' आन-कू ने, हथौड़े के द्वारा ही विश्व का निर्माण किया।

स्वर्गीय सम्राटों का राज्य (Reign of celestial emperors)

किंवदन्ती के अनुसार 'स्वर्गीय सम्राटों' के आगमन के पहले चीनी असभ्य थे, स्वर्गीय सम्राटों ने ही जंगलीपन एवं असभ्यता से, उन्हें मुक्त किया। कहा जाता है कि इन सम्राटों में से, हरएक ने १८,००० वर्ष राज्य किया। परन्तु ऐतिहासिक तथ्य इस बात का समर्थन नहीं करता है। नीचे इन सम्राटों का संक्षिप्त वर्णन दिया जाता है।

प्रथम स्वर्गीय सम्राट फू-सी (I Celectial Emperor–Fu-Hsi) 2852-2737 B. C. (२८५२–२७३७ ई० पू०)

प्रथम स्वर्गीय-सम्राट फू-सी २८५२ ई० पू० में, चीन का सम्राट हुआ। इसने अपनी सम्राज्ञी के सहयोग से चीन के लोगों को विवाहादि के नियम-कानून, पढ़ना-लिखना, पशु-पालन, रेशम-उद्योग (Silk-industry) सिखाया। इस प्रकार चीनियों को प्रारंभिक सभ्यता का आलोक (light) इन्होंने ही दिया। इन्होंने २७३७ ई० पू० तक राज्य किया।

दूसरे सम्राट शेन-नुंग (Shen-Nung) ने २७३७ ई० पू० से २६९७ ई० पू० तक राज्य किया। इस अवधि में इन्होंने कृषि-कर्म तथा लकड़ी का बना हुआ हल (Wooden Plough) का आविष्कार किया, बाजार और व्यापार (Trade and Commerce) कायम किया तथा औषधि-शास्त्र की प्रभूत उन्नति की। इस प्रकार इस सम्राट ने, चीनी-सभ्यता को एक पग और आगे बढ़ा दिया।

तीसरे स्वर्गीय सम्राट हुआंग-ती (Huang-Ti) ने २६९७ ई० पू० से २५९७ ई० पू० तक शासन किया। यह बड़ा पराक्रमी शासक था। इन्होंने चीन के निवासियों को चुम्बक और पहिए का प्रयोग सिखाया एवं अपने दरबार में राजकीय ऐतिहासिकों की नियुक्ति की। इन्होंने ईटों के कई मकान बनवाये एवं ग्रह-नक्षत्रों (Planets and Stars) आदि के निरीक्षण के लिए मानमन्दिरों का निर्माण किया। इन्होंने चीनी कैलेण्डर में भी सुधार किए एवं जमीनों का बँटवारा कर, कृषि तथा कर (Revenue) में काफी सुधार किए।

चौथा सम्राट याओ (Yao) इस वंश का सबसे महान् एवं प्रधान शासक था।

इसके राज्य-शासन की प्रशंसा, महान् चीनी दार्शनिक कनफ्यूशियस ने भी की है। इन्होंने अपने महल के बाहर एक ढोल (Drum) लगवाया ताकि प्रजा उसे बजाकर अपनी फरियाद सम्राट के सामने उपस्थित कर सके। इस सम्बन्ध में इनकी तुलना भारतीय-सम्राट जहाँगीर के साथ, की जा सकती है क्योंकि सम्राट जहाँगीर ने भी अपनी प्रजा की फरियाद सुनने के लिए, अनुरूप व्यवस्था की थी।

सम्राट याओ ने, प्रजा की फरियाद एवं शिकायत (Complaint) सुनने के लिए, महल के बाहर एक तख्ता भी रखवा दिया, जिस पर लोग अपनी फरियाद लिख सकें।

इस न्यायप्रिय, सरल एवं प्रजा की भलाई चाहने वाले सम्राट ने, सौ वर्ष तक (यानी ११६ वर्ष की उम्र तक) राज्य किया। यह आडम्बरहीन जीवन बिताना अधिक पसन्द करता--लकड़ी के चम्मच से खाता, सादी-पोशाक एवं चीनी टोपी पहनता था तथा लाल रथ की सवारी करता जो सफ़ेद घोड़ों से खींचा जाता था। यह सम्राट गर्मियों में सूती कपड़े और जाड़े में मृग-चर्म (Deer-Skin) पहनता था।

सम्राट याओ का उपरोक्त वर्णन, प्राचीन भारत के राजर्षि जनक (मिथिला-सम्राट) से बहुत कुछ मिलता-जुलता है, जिनका शासन-काल महाकाव्य-युग का एक उज्ज्वल अध्याय है।

इस वंश का पंचम एवं अन्तिम सम्राट शून (Shun) था जिसने २२५५ से २२०५ ई० पू० तक राज्य किया। अपने पूर्वजों की भाँति यह भी प्रजा-पालक एवं महान् सुधारक था। अपने प्रधान इंजीनियर यू (Yu) की सहायता से इन्होंने होवांग-हो (Hawng-Ho) नदी की भयंकर बाढ़ों को नियन्त्रित किया—कैलेण्डर का सुधार किया एवं नाप-तौल के बाँटों में भी सुधार किए, ताकि दूकानदार या व्यापारी, लोगों को धोखा न दे सकें।

इस सम्राट ने शिक्षा-व्यवस्था में भी सुधार किया। उस समय चीनी बच्चों को पढ़ाने के लिए, स्कूलों में लम्बे-लम्बे बेंतों का प्रयोग किया जाता था। इन्होंने इन बेंतों की लम्बाई छोटी करवा दी, ताकि बच्चों को कठोर दण्ड (Punishment) न दिया जाय। इस दिशा में निश्चय ही सम्राट 'शून' का शासन-काल महत्वपूर्ण है, जिन्होंने यह अनुभव किया कि, बच्चों को शारीरिक दंड (Physical or Corporal punishment) देने से उनके बौद्धिक तथा व्यक्तित्व के विकास (Mental and Personality development) को हानि पहुँचती है। कहना असंगत न होगा कि आधुनिक शिक्षाविद, इस सिद्धान्त को इतना सत्य मानते हैं कि अब तो स्कूलों में बच्चों को मारना-पीटना बिल्कुल ही बन्द हो गया है जो कि निश्चय ही हमारी

प्रगति का लक्षण है। निश्चय ही, इस दृष्टिकोण से. सम्राट शून, आधुनिक शिक्षावदों के पूर्वज (Predecessor) माने जा सकते हैं।

अपने अन्तिम-दिनों में, सम्राट शून ने, अपने सिंहासन के पास, राजकीय इंजीनियर यू (Yu) का भी सिंहासन लगवा दिया, और इस प्रकार उसके बाढ़-नियंत्रण कार्यों[1] के लिए उसको सम्मान दिया। ऐसा उदाहरण इतिहास में अतुलनीय है, इसमें सन्देह नहीं।

सम्राट शून के शासन की समाप्ति के साथ ही, चीन में 'स्वर्गीय-सम्राटों' का राज्य समाप्त हो जाता है और उसका स्थान, Hsia (सिया) राजवंश ले लेता है।

'सियावंश' (Hsia dynasty) का प्रतिष्ठापक सम्राट शून का इंजीनियर यू था। इसने अपने राजवंश का नाम Hsia यानी Civilised या 'सभ्य' रक्खा।

सम्राट 'यू' के समय, एक व्यक्ति ने, चावल की शराब बनाकर, सम्राट को पीने के लिए, श्रद्धापूर्वक दी। सम्राट ने थोड़ा पीने के बाद ही उसे जमीन पर पटक दिया और कहा "एक दिन ऐसा आवेगा जब इस नशे के लिए, एक राज्य गँवाना पड़ेगा।" उन्होंने, इसके आविष्कारक को देश के बाहर निकाल दिया, एवं राज्य भर में इसके निर्माण (Manufacture) या प्रयोग (use) की मनाही कर दी।

इस वंश का अन्तिम सम्राट चीये (Chieh) था जो अत्यन्त विलासी था और इसी कारण अधिक दिन तक शासन न कर सका।

इस वंश में १७ सम्राट हुए। इसके बाद चीन में 'शांगवंश' (Shang dynasty) का उदय हुआ। इस वंश में ३० सम्राट हो गये हैं जिनमें सबसे महत्वपूर्ण थे सम्राट यू-यी (Wu-Yi) जिनकी मृत्यु बिजली गिरने से हुई (११९८-११९४ ई० पू०) इस वंश का अन्तिम सम्राट था चाऊ-सीन (Chow Hsin) जिसने Chopstick का आविष्कार किया, जिनके द्वारा चीनी बड़ी आसानी से, सभी चीजें खा सकते हैं।

सम्राट Chou-Hsin ने ११५४ से ११२३ ई० पू० तक राज्य किया। इसके शासन-काल के अन्तिम समय में, विद्रोह प्रारंभ हुए,—पश्चिम के चाऊ (Chou) प्रान्त से आक्रमण शुरू हुआ। इन आक्रधणकारियों ने चीन में चाऊ वंश (Chou dynasty) की स्थापना की और अपने सहायकों को बड़ी-बड़ी जागीरें प्रदान कीं। इस प्रकार चीन में सामन्तशाही का जमाना (Feudal Age) शुरू हुआ।

---

१. 'यू' ने चीन की नौ नदियों को, नौ पहाड़ों के बीच से काटकर निकालते हुए, नौझीलों का निर्माण किया और इस प्रकार इनकी बाढ़ों को नियन्त्रित किया।

चीन में सामन्तशाही जमाने का प्रारंभ (Begining of Feudal Age in China)

११२२ ई० पू० से २५५ ई० पू० तक चीन में सामन्त राजाओं का राज्य रहा, जिनमें प्रारंभ में चाऊ-राजवंश (Chou dynasty) प्रमुख था। इस वंश की दो शाखाएँ पश्चिमी चाऊ-राजवंश (१०००-९५० ई० पू०) एवं पूर्वी-राजवंश (७७०-२५५ ई० पू०) थीं, जिनकी राजधानी क्रमशः हाओ (Hao) जो वी घाटी (wei valley) में थी एवं लोयांग (Loyang) थी।

इस समय इन सामन्त-राज्यों की संख्या थी १७,००। अधिकांश रियासतें नगर-राज्य की तरह थीं, जिनके नगर एवं राजधानी, मजबूत दीवालों से घिरे हुए थे क्योंकि पड़ोस की असभ्य जातियों का आक्रमण बराबर चीन पर होता रहा।

क्रमशः इन सामन्त-राज्यों की संख्या घटकर ५५ हो गयी, जिनमें सबसे शक्तिशाली थे 'सी' या 'ची' (Ts'i or Ch'i) तथा 'चीन' (Chin या Tsin) राज्य। अन्त में 'चीन' (Chin) राज्य ने अन्य सभी सामन्त-राज्यों को जीत कर मिला लिया। इसी राज्य के नाम से, सम्पूर्ण देश का नाम Chin या China पड़ा।

सामन्तशाही जमाने में चीन की विशेष उन्नति हुई। 'सी' (Tsi) राज्य से चीन के शासन-प्रबन्ध का विकास हुआ। इसके प्रधान शासक ड्यूक हुआन (Duke Huan) के परामर्शदाता थे कुआन-चुंग (Kuan-Chung)। इन्होंने व्यक्तिगत आमदनी, मछली तथा नमक पर कर (tax) लगाकर, गरीबों की काफी मदद की, और राज्य के विद्वानों को पुरस्कृत किया। कुआन की प्रशंसा करते हुए, चीन के प्रसिद्ध दार्शनिक एवं विद्वान, कनफुशियस ने कहा है कि, "आज तक कुआन की बदौलत ही लोगबाग, सुखी जीवन बिता रहे हैं। अगर वह न होता, तो हमारे सिर के बाल बिखर गये होते, और हम अपनी कोट के बटन बाँयीं ओर लगाते"—अर्थात् कुआन के कारण ही चीनियों को सभ्यता तथा उचित सामाजिक रीति-नीतियों का ज्ञान हुआ। व्यवस्थित रूप से सरकार चलाने की एवं राज्य-शासन करने की प्रणाली का आविष्कार, कुआन ने ही किया था। अतः चीनी तथा चीन देश हमेशा उसके आभारी रहेंगे, इसमें क्या सन्देह ?

सामन्तशाही के जमाने में, कायदे-कानून तथा सामाजिक रीति-नीति (Laws. social customs and manners during the Feudal Age)

सामन्त राजाओं के दरबार में, सामाजिक रीति-नीति, रहन-सहन के

तरीके, व्यक्तिगत व्यवहार आदि की बड़ी उन्नति हुई, जो कि सभ्यता के विकास के लिए परम आवश्यक समझे जाते हैं।

चेंग (Cheng–535 B. C.) तथा चीन (Chin–512 B. C.) राज्यों (Duchie) में विधान संहिताओं (Code of Law) का निर्माण हुआ। परन्तु ये कानून, कृषकों (Peasants) के लिए हानिकारक सिद्ध हुए। ऊँचे व्यक्तियों को, बहुत कुछ, छुटकारा, इन कानूनों के द्वारा, प्राप्त हुआ। जैसे ऊंचे कुल का कोई व्यक्ति, अगर किसी की हत्या कर देता, तो उसे राजदंड से छुटकारा मिलता था, परन्तु उसे 'आत्महत्या' (Suicide) करने के लिए कहा जाता, और उसे वह करना पड़ता। बाद में आत्म-हत्या की यह प्रथा, जापान की सामुराई (Samurai) जाति में काफी प्रचलित हुई।

इस समय की विधान-संहिताओं में सबसे अधिक 'चाऊ-ली' (Chou-Li) या 'चाऊ का कानून' प्रसिद्ध है। यह चाऊ राज्य के द्वितीय ड्यूक (second Duke of Chou) के चाचा तथा प्रधान-मंत्री Chou-King के द्वारा निर्मित हुई थी। इस विधान संहिता से, तत्कालीन सामन्त-राजाओं के शासन-प्रबन्ध के बारे में, काफी बातों का पता चलता है। शासन-प्रबन्ध में सम्राट या राज्य के शासक प्रधान थे, और 'स्वर्गीय-पुत्र' (Son of Heaven) समझे जाते थे। इनके सहायक ऊँचे घराने (nobles and aristocrats) थे। तत्कालीन चीनी समाज 'पितृप्रधान' (Patriarchal) था। साधारण लोगों का शासन-प्रबन्ध में कोई हाथ न था। ६ मन्त्रियों का एक मंत्रिमंडल (Cabinet of ministers) बना हुआ था, जो लोगों के सामाजिक, धार्मिक तथा युद्ध संबन्धी नियमों की देख-रेख करता था तथा उनको परामर्श (directions) देता था।

सामन्तशाही के जमाने में जैसे चीन की काफी उन्नति हुई, वैसे ही धन-वृद्धि के कारण, सामाजिक तथा राजनैतिक वातावरण में, नाना प्रकार के दुर्गुण (evils) भी प्रवेश कर गये। दो शताब्दी के अन्दर ही, इन सामन्त-राजाओं में, छत्तीस राजाओं का निधन हो गया और सारे देश में अराजकता की वृद्धि हुई।

इस समय सबसे अधिक हानि किसानों की हुई। सारी जमीनें जमींदारों के हाथों में थीं और किसान अपने मालिक जमींदारों की भूमि जोतता था जिस पर उसका कोई अधिकार न था। ये जमीदार केवल नाममात्र अपने राज्य के ड्यूक को अपना शासक (ruler) मानते थे। परन्तु अपनी-अपनी जमींदारी के वे पूर्ण मालिक होते थे और किसानों पर मनमाना अत्याचार करते थे। चीनी किसानों की हालत उस समय वैसी ही थी जैसी कि लार्ड कार्नवालिस के 'स्थायी बन्दोबस्त' (Permanent Settlement—1793 A. D.) के कारण बँगाल के किसानों की हो गयी थी।

शहरों में व्यापार की वृद्धि के कारण एक शक्तिशाली; 'मध्यम वर्ग' (middle-class bourgeoise) की उत्पत्ति हुई जिनके रहन-सहन के तरीकों (way of living) में क्रमशः भारी परिवर्तन (changes) हो गये। ये पैरों में चमड़े के जूते पहनते, शरीर को सुन्दर रेशमी वस्त्रों से ढाँपते, गाड़ी या रथ पर चढ़ते और नाव के द्वारा नदियों को पार करते थे। ये अपने घरों में नाना प्रकार के मेज तथा कुर्सियों का प्रयोग करते तथा नक्काशीदार बर्तनों में खाना खाते थे। इन 'मध्यम-वर्ग' के व्यक्तियों के जीवन का मान-दण्ड तत्कालीन, यूनानी या रोम के मध्यम-वर्गीय लोगों से कहीं अधिक ऊँचा था :—

कला-कौशल तथा साहित्य की उन्नति

सामन्तशाही युग में साहित्य, भाषा, संगीत, कविता, कला, दर्शन, सभ्यता तथा संस्कृति की काफी उन्नति हुई। इसी युग में चीन का महान् दार्शनिक, कुंग-फू-जे (Kung-fu-ze)—जिन्हें कन्फूशियस (Confucius) भी कहा जाता है—पैदा हुए जिनकी दार्शनिक-विचारधारा तथा अमर वाणियों का गंभीर प्रभाव एवं स्पष्ट छाप आज भी चीनी समाज पर परिलक्षित होता है। ये एक अच्छे कवि भी थे एवं इनकी ३०५ कविताओं का संग्रह, 'शी-चींग' (Shi-Ching) यानी 'कविता-संकलन' (Book of odes) नामक पुस्तक में किया गया है। इन कविताओं में अधिकांश शृंगार-रस की कविताएँ हैं। निम्नलिखित कविता में प्रेमिका अपने प्रेमी से प्रातःकाल विदा होते समय अनुरोध करती है कि जाते समय किसी प्रकार की आवाज न हो नहीं तो उसके स्वामी (वृद्ध) जग जायेंगे और तब वह आपत्ति में पड़ जायेगी :—

प्रिय मेरे, छोड़ो मेरी कुटिया,
(जाते समय) तोड़ो न मेरी बिलो की बगिया, (willow boughs)
विदा वेला, यद्यपि दुःख होगा मुझे,
पर डर है, कहीं जगें न स्वामी मेरे,
प्रेम से करती हूँ अनुरोध काम-भावनाओं से विरत,
(क्योंकि) स्वामी की आज्ञाओं का पालन,
अनिवार्य है, मेरे लिए।'

एक अन्य कविता में, प्रातःकाल की शोभा को निरख कर, कवि चंचल हो उठता है,

'ऊषा काल की गौरव - छाया मेरे मस्तक पर,
खिले फूल सफेद, बैंगनी, नीले और लाल, मैं हो रहा हूँ चंचल।'

दर्शन-शास्त्र तथा दार्शनिक

सामन्तशाही युग में दर्शन एवं दार्शनिकों की प्रभूत उन्नति हुई। कई महान् दार्शनिकों का जन्म इस समय हुआ, जिन्होंने दर्शन-शास्त्र पर कई महान् ग्रन्थ लिखे। नीचे इन दार्शनिकों के नाम, संक्षिप्त परिचय एवं उनकी कृतियों का विवरण दिया जाता है।

(१) दार्शनिक वेन-वांग (Wen-Wang) :—ये चाऊ वंश के अन्यतम प्रतिष्ठापक एवं नींव डालने वालों में से थे। परन्तु किसी कारणवश इनको कारावास का दण्ड (Jail) दिया गया और यहीं बैठकर इन्होंने 'ई-चींग' (I-Ching) यानी "परिवर्त्तनशील जगत' (Book of changes) नामक पुस्तक लिखी। चीन का सर्वप्रथम दार्शनिक ग्रन्थ यही है। विख्यात दार्शनिक कनफुशियस ने इस पुस्तक की प्रशंसा करते हुए कहा कि 'इसके अध्ययन के लिए, पचास वर्ष की आवश्यकता है।'

(२) दूसरा महान् दार्शनिक, इस युग का था तेंग-शीह (Teng-Shih) यह बड़ा स्पष्ट वक्ता था जिससे असन्तुष्ट होकर चेंग-राज्य के शासक (Duke of cheng) ने इसको मरवा डाला।

(३) इस युग के सबसे महान् एवं प्रसिद्ध दार्शनिक थे, लाओत्जे (Lao-Tze), जो चाऊ-राज्य के राजकीय पाठागार के संरक्षक (curator) थे। बहुत दिनों तक उक्त पद पर कार्य करने के पश्चात् राजनैतिकों के काँव-काँव से परेशान होकर, इन्होंने उक्त पद त्याग दिया और किसी गांव में जाकर रहने लगे।

कहा जाता है जिस समय यह चाऊ-राज्य छोड़कर जा रहे थे, तो सीमा-प्रान्त पर प्रान्तीय-रक्षक यीन-सी (Yin-Hsi) ने उनसे एक पुस्तक लिखने की प्रार्थना की। लाओत्जे ने उसकी बात मान ली और पुनः अपनी लाइब्रेरी में लौट गया और अपनी अमर-वाणी को एक पुस्तक में संकलित किया। इस पुस्तक के दो भाग हैं, 'ताओ' और 'ते' (Tao and Te) जिनकी सम्मिलित शब्द संख्या है, ५,००० । परन्तु इस पुस्तक के संकलन के पश्चात् ही वह पुनः चाऊ-राज्य छोड़कर अपने गाँव को चला गया। लाओत्जे ८७ वर्ष तक जीवित रहा।

'लाओत्जे' शब्द का अर्थ है 'प्राचीन शिक्षक' (Old Master), परन्तु इनका वास्तविक नाम था 'ली' (Li)। कुछ विद्वानों का कहना है कि उनकी दार्शनिक पुस्तक 'Lao-Te-Ching' उनकी लिखी हुई नहीं है, परन्तु यह सिद्धान्त माननीय नहीं है।

इस पुस्तक में, लाओत्जे के दार्शनिक सिद्धान्त लिखे हुए हैं। 'ताओ' शब्द

का अर्थ है—'रास्ता' या कहना चाहिए 'प्रकृति का रास्ता' (Way of Nature)। इस सिद्धान्त के अनुसार, 'अधिक जागतिक (materialiastic) चिन्ता ठीक नहीं है इनसे उदासीन रहना ही उचित है। प्रकृति का चिन्तन ही सर्वोत्तम है इत्यादि'।

उपरोक्त सिद्धान्त तथा भारतीय वेदान्त-दर्शन के विचारों में काफी समानता है।

अपने सिद्धान्त का विश्लेषण करते हुए लाओत्जे ने यह भी कहा है कि, "ज्ञान (meterialistic knowledge) कोई virtue नहीं है। ज्ञान या शिक्षा की वृद्धि से समाज में दुष्ट-व्यक्तियों की वृद्धि हुई है।"

इस महान् दार्शनिक के अनुसार 'दार्शनिकों की सरकार (Government of Philosophers) सबसे खराब है क्योंकि वे सिद्धान्त के ऊपर (Theory) ज्यादा जोर देते हैं और उनमें वास्तविकता (Practicality) का अभाव रहता है। वे केवल सैद्धान्तिक विचारों (Theoratical ideas) को बढ़ा (multiply) सकते हैं और बातें बना सकते हैं, लम्बे-लम्बे भाषण दे सकते हैं। अतः वे व्यावहारिक जगत के कार्य के लिए सर्वथा अनुपयोगी (unsuitable) होते हैं।'

उनका कहना है कि बुद्धिमान तथा विद्वान व्यक्ति राज्य के लिए खतरनाक होते हैं क्योंकि वे ज्यामिति (Geometry) की तरह वर्गाकार (Group-form) समाज बनाना चाहते हैं और ऐसे नियम बनाते हैं, जिनसे स्वतन्त्र-जीवन (free-life) नष्ट हो जाता है और समाज के विभिन्न अंगों (organs of society) को कमजोर बना देता है।

'साधारण मनुष्य (जो पढ़ा-लिखा नहीं होता) जो कानून और नियमों के इन दाँव-पेंचों से मुक्त होता है, जब शासक (Ruler) बनता है तो स्वतन्त्र-जीवन का प्रेमी होने के कारण मनुष्य के जीवन को कम नियंत्रित (control-or regulate) करना चाहता है तथा राष्ट्र (State) को एक सीधे-सादे रास्ते से उन्नति की ओर ले जाता है जिसमें कृत्रिमता (artificiality) कम होती है। सरकारी नियंत्रण (Government Control) कम होने से लोग स्वयं ही आर्थिक उन्नति करने लगते हैं। ऐसी अवस्था में आविष्कार (invention) कम होते हैं क्योंकि आविष्कार धनियों की दौलत में वृद्धि और शक्तिशाली की शक्ति को बढ़ाते हैं। समाज के उस स्वतन्त्रतापूर्ण-जीवन में न तो पुस्तक की आवश्यकता है, न वकीलों की और न तो कला-कौशल, उद्योग-धन्धे (Industries) की ही आवश्यकता है। सिर्फ ग्रामीण उद्योग-धन्धा-व्यापार (Village industries and trade) ही ऐसी अवस्था में कायम रहते हैं'।

लाओत्जे का उपरोक्त विचार बहुत कुछ भारतीय राष्ट्र के पिता गाँधीजी के 'ग्रामीण-उन्नति तथा उद्योग' सम्बन्धी विचारों के अनुकूल हैं, जिनको कार्यान्वित करने के लिए आधुनिक भारत में महान् प्रयत्न किए जा रहे हैं।

'ताओ' धर्म में 'प्रकृति' का महत्व (Significance of nature in Taoism)

लाओत्जे ने जिस धर्म का प्रचार किया वह 'ताओ' धर्म के नाम से प्रसिद्ध है। यह वस्तुतः एक दार्शनिक सिद्धान्त है जिसमें रूढ़िवाद की सम्भावना एकदम नहीं है।

'ताओ' सिद्धान्त के अनुसार, प्रकृति या प्राकृतिक कार्यक्रम (natural activity) एक विशेष नियम है जिससे समय की गति (speed or movement) हमेशा चला करती है, मौसम (Season) अपने समय से आते-जाते हैं, आसमान के तारे अपने-अपने रास्ते या कक्षापथ (orbit way) पर चला करते हैं—इसी प्रकार संसार की सभी वस्तुएँ इसी नियम से नियन्त्रित हो रही हैं। इसी नियम का नाम है 'ताओ'—यह एक शाश्वत-नियम (Universal law) है एवं मानव-जीवन भी इसी नियमानुसार नियन्त्रित (controlled and guided) होना चाहिए। मानव-जीवन के नियम भी इसी शाश्वत-नियम का एक भाग हैं।

इस 'ताओ-सिद्धान्त' (doctrine of Tao) का विश्लेषण करते हुए, लाओत्जे ने आगे बतलाया कि, प्राचीन काल में, जब यह भौतिक सभ्यता न थी, लोगों का जीवन सीधा-सादा और सरल था। लोग सुखी थे। परन्तु 'ज्ञान', यानी 'भौतिक ज्ञान' (Materialistic Knowledge) की प्राप्ति के पश्चात् लोगों ने नाना प्रकार के आविष्कारों से अपना जीवन दुःखमय बना लिया, गाँव छोड़कर शहर में रहने लगे, पुस्तकें लिखने लगे--यहीं से मनुष्य का दुःख प्रारम्भ हुआ और दार्शनिकों का विलाप (wailing and moaning) प्रारम्भ हो गया।

अतः लाओत्जे का कहना है कि 'ज्ञानी व्यक्ति' को इस 'भौतिकवादी सभ्यता' (materialistic civilisation) को छोड़ना चाहिए। उन्हें बाहर से, पुस्तकों से तथा सुधारवादियों (Reformers) से, दूर हट जाना चाहिए और 'प्रकृति की गोद' में लौट जाना चाहिए (Return back to the lap of the Nature) और प्राकृतिक नियमों को चुपचाप, मान लेना चाहिए क्योंकि, लाओत्जे के अनुसार, 'प्रकृति का कार्य चुपचाप शान्ति से होता है। वह अपने कार्य को पूरा करते हुए भी कोई अधिकार (claim) या दावा नहीं करती। प्रकृति के इस नियम के अनुसार, सभी वस्तुएँ अपने कार्य

पूरा करने के बाद समाप्त हो जाती हैं। (All things alike do their work and then we see them subside) जब वे अपनी पराकाष्ठा (bloom) को पहुँच जाती हैं, तब पुनः अपने उद्गम-स्थल (place of origin) को लौट जाती हैं—यानी उनको आराम करने का मौका मिल जाता है। यह एक 'शाश्वत-नियम' (Universal Law) है, और इसी को जानना 'ज्ञान' (यानी wisdom) है।'

'अतः प्राकृतिक नियमों का विरोध करना उचित नहीं है (Not to resist the Natural law) अतः कोई भी व्यक्ति, किसी प्रकार का भौतिक कार्य (materialistic activity) करने की चेष्टा न करे, (Philosophical inaction)। इसलिए सबको उचित ढंग से, अपने कर्त्तव्यों को पूरा करना चाहिए (one must fulfill his duties) अगर उसे विरोध (यानी opposition) या बाधा प्राप्त (resistance) होने की संभावना हो तो उसे किसी प्रकार की लड़ाई-झगड़ा न कर, चुपचाप हट जाना चाहिए और धैर्य तथा शान्ति (Patience and peace) से विजय प्राप्ति की चेष्टा करनी चाहिए।"

इस प्रकार 'ताओ-सिद्धान्त' का विश्लेषण करने के पश्चात्, लाओत्जे ने यह उपदेश दिया कि—'अगर तुम किसी से झगड़ा नहीं करते हो, तो तुमसे कोई झगड़ा नहीं करेगा। जो तुम्हारी हानि करे उसे दया के बर्ताव से पूरा करो। जो तुम्हारे साथ अच्छा व्यवहार करे, और जो बुरा व्यवहार करे, उसके साथ भी अच्छा व्यवहार करो। विश्व में कठोरता (Hardness) के साथ जब कोमलता (Softness) टकराती है तो कोमलता ही विजयी होती है (The softest thing in the world dashes against and overcomes the hardest)। दुनिया में जल (water) सबसे निर्बल (weak) है, परन्तु कठिन से कठिन (Hardest) वस्तु जैसे चट्टान (rock) को भी विध्वस्त (destroy) कर देता है।'

लाओत्जे का उपरोक्त सिद्धान्त, महात्मा गाँधी के अहिंसा के सिद्धान्त से कितना मिलता जुलता है।

इस महान् दार्शनिक का कहना है कि बुद्धिमान व्यक्ति यद्यपि दुनिया में ऊँचा से ऊँचा स्थान अधिकार करने योग्य है, तथापि वह चुपचाप, सरल और शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करता है। शान्ति (Silence) ही 'बुद्धि' (wisdom) की शुरुआत (beginning) है। अतः 'जो व्यक्ति 'ताओ' (Doctrine of Tao) को जानता है, वह उसे कहता नहीं, जो कहता है, वह उसे जानता नहीं।' ५० वर्ष की उम्र में उसे 'ज्ञान' (knowledge) की शक्ति और 'बुद्धि की कमजोरी', मालूम हो जाती है। अगर बुद्धिमान पुरुष

दूसरों से अधिक जानता है, तो वह उसे छिपाने की कोशिश करता है। वह किसी अज्ञानी या अनजान व्यक्ति की भाँति, दूसरे का विरोध नहीं करता। वह धन-दौलत या शक्ति (might or power) को कोई महत्व नहीं देता। वह दुनिया के लाभ तथा हानि की परवाह नहीं करता परन्तु उसके प्रभाव से दूर रहता है। वही सर्वोत्तम व्यक्ति है और वही वास्तविक ऋषि है (He is the noblest man under heaven, he is the real sage)'।

दार्शनिक लाओत्जे की इस विचित्र वाणी (message) और सिद्धान्त (doctrine), ने चीन के अन्यतम महान् दार्शनिक कन्फूशियस (Confucius) को भी विचलित और परेशान किया होगा। जब वह लोयाँग (Lo-yang, Capital of Chou dynesty) शहर में, लाओत्जे का परामर्श लेने के लिए आया लाओत्जे ने उससे कहा—

"जिन (महान् व्यक्तियों) के बारे में तुम पूछताछ कर रहे हो, उनकी हड्डियाँ भी चूर-चूर होकर मिट्टी में विलीन हो गयी हैं। केवल उनकी कृतियाँ (works) ही अवशेष हैं। जब महान् व्यक्ति का समय आता है, वह नेतृत्व ग्रहण करने के लिए उठ खड़ा होता है। परन्तु उचित समय आने के पहले वह जो कुछ करता है उसमें बाधा प्राप्त होती है। (but before his time has come, he is hampered in all that he attempts)। मैंने सुना हैं कि सफल व्यापारी (सौदागर) अपनी दौलत को सावधानी से छिपा लेता है और इस प्रकार व्यवहार करता है कि उसके पास कुछ है ही नहीं। इसी प्रकार महान् व्यक्ति (Great Man) अपनी कृतियों से भरपूर होता है (abounding in achievements), परन्तु अपने चाल-चलन, हाव-भाव में, साधारण होता है। तुम अपनी महान् आकाँक्षाओं एवं अहंकार तथा स्नेह या लगाव (affection) और अव्यवस्थित उद्देश्यों (extravagant aims) को त्याग दो। इन निरर्थक बातों से तुम्हारे चरित्र की महानता में तनिक भी वृद्धि नहीं होती। यही तुम्हें, मेरा परामर्श तथा उपदेश है।"

लाओत्जे का 'ताओ-सिद्धान्त' भारतीय 'वेदान्त' के सिद्धान्त से बहुत कुछ मिलता जुलता है—वेदान्तवादियों ने भी संसार को 'माया एवं मिथ्या' बतलाया है, और सांसारिक बातों से, ज्ञानी व्यक्ति को, दूर रहने का उपदेश दिया है। परवर्त्ती युग में चीनी समाज पर लाओत्जे के सिद्धान्त का गम्भीर प्रभाव पड़ा।

कुंग-फू-जे या कन्फूशियस (Confucius)—(५५१ ई० पू०-४७८ ई० पू०)

इस युग के अन्यतम महान् दार्शनिक थे कुंग-फू-जे (Kung-Fu-Tze), या कुंग-चिऊ (Kung-Chiu)। चीनी भाषा में 'कुंग' शब्द का अर्थ है

अध्यापक (Kung The Master) या प्रवीण-व्यक्ति। इनका जन्म 'लू' राज्य के गुफू (Ch'u-fu in Lu-state) स्थान पर, ५५१ ई० पू० में हुआ था। इनका जन्म 'कुंग-वंश' में हुआ था, जिस वंश के स्वर्गीय सम्राट हुआंग ती (२६९७-२५९७ ई० पू०) भी थे। इस वंश में, कई योग्य व्यक्ति, दार्शनिक, राजनैतिक एवं चीनी सरकार (अर्थात् वर्तमान चीनी सरकार के पहले) के अधीन उच्च पदस्थ मंत्री या अफसर हो चुके हैं।

कहा जाता है कि, इनके जन्म के समय इनके पिता की उम्र सत्तर (७०) वर्ष की थी। बचपन से ही कुंग-फू-जे को कठोर परिश्रम करना पड़ा। विद्यार्थी जीवन से, स्कूल के बाद भी, ये अपनी माता की मदद के लिए काम करते थे। परन्तु अपने विद्याध्ययन को इन्होंने कभी नहीं छोड़ा। अत: थोड़े ही दिनों में, धनुर्विद्या (तीरन्दाजी) और संगीत में ये उस्ताद हो गये। किसी कारणवश इन्होंने तीन महीने तक मांस-भक्षण नहीं किया। उन्नीस वर्ष की उम्र में इनका विवाह हुआ, परन्तु तेईस वर्ष की अवस्था में, इन्होंने अपनी पत्नी को त्याग दिया। इस प्रकार इनके अद्भुत चरित्र का परिचय, युवावस्था में ही लोगों को प्राप्त हो गया।

अध्यापक के रूप में कुंग-फू-जे

इन्होंने बाईस वर्ष की अवस्था से ही अध्यापन कार्य शुरू कर दिया एवं अपने घर ही में एक स्कूल स्थापित किया जहाँ ये विद्यार्थियों को इतिहास, कविता और आचरण के नियम (rules of propriety) आदि की शिक्षा देते थे। बच्चों से जो कुछ धन शुल्क (Fees) रूप में मिल जाता, उसी से ये अपना जीवन निर्वाह करते थे।

कुंग-फू-जे का दार्शनिक सिद्धान्त

कुंग-फू-जे ने चरित्र निर्माण पर बड़ा जोर दिया। उनका कहना था कि 'मनुष्य के चारित्रिक संगठन एवं प्रगति, उत्सवादि के नियम तथा आचार-व्यवहार की पूर्णता (fulfillment) केवल मात्र कविता तथा संगीत (music and poetry) के अनुशीलन से ही होती है।' इनका विश्वास था कि अधिक बुद्धिमान और एकदम बेवकूफ ही केवल मात्र शिक्षा से लाभ नहीं उठा सकते और केवल वही व्यक्ति 'Humanistic Philosophy' का अध्ययन कर सकता है, जो चरित्र और दिमाग (Character and mind) का सुन्दर हो। ऐसे व्यक्ति का मिलना मुश्किल है, जो तीन वर्ष निरंतर शिक्षा के उपरान्त भी चरित्र का सुन्दर न हो।'

"It is not easy to find a man, who has learned for three years without coming to the good."

Our Oriental Heritage by Will Durant, p. 660.

कुंग-फू-जे तथा उनके विद्यार्थियों का पारस्परिक सम्बन्ध

कुंग-फू-जे की असाधारण बुद्धिमत्ता (intelligence) और दार्शनिक सिद्धान्त से, कमजोर विद्यार्थी बहुत घबड़ाते थे। परन्तु तब भी, कुछ ही दिनों में, उनके विद्यार्थियों की संख्या तीन हजार हो गयी। कुंग-फू-जे के पढ़ाने का ढंग भी बड़ा विचित्र था। वह अपने कमरे में, या सड़कों पर विद्यार्थियों को शिक्षा देता और सदैव उनकी गलतियों को दिखाकर, उनकी बुद्धि की तीव्रता को हमेशा, सजग रखने पर ध्यान देता था (To keep alert their sharpness of mind)। अपनी विद्वत्ता पर उसे गर्व था और अक्सर कहा करता था 'किसी भी दस परिवार वाले गाँव में, मेरे जैसा विद्या-प्रेमी, शायद ही कोई मिलेगा।' उसका यह विश्वास था कि अगर कोई शासक (Prince) उसे अपनी सेवा (service) में ग्रहण करे, तो बारह महीने (अर्थात् साल भर) में वह उस राज्य के शासन (Goverment) में सुधार कर देगा। परन्तु इस अहंकार तथा विश्वास के बावजूद भी कभी उसने 'श्रेष्ठत्व' (Supremacy) का दावा नहीं किया। उसके शिष्यों (disciples) का कहना था कि "वे कभी अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँचते थे, पहले से कोई सिद्धान्त नहीं तय करते थे (no predetermination), हठीले नहीं थे और न तो उनमें अहंभाव (Egoism) ही था।' कन्फूशियस स्वयं कहता था कि 'याओ' और 'शून' (Yao and Shun) सम्राटों से जो कुछ उन्होंने सीखा था, वही वे दूसरों को सिखाते थे।

'उत्तम-सरकार' की खोज में कन्फूशियस (Confucius in Search of Good Goverment)

कन्फूशियस महत्वाकांक्षी थे और किसी अच्छे राज्य-सरकार में उचित पद पाने की अभिलाषा उनमें प्रबल थी। उनकी यह आकांक्षा पूरी हुई और बारम्बार कई राज्य-सरकारों में, उच्च पद दिये गये। परन्तु जब कभी उन्हें उस राज्य-सरकार के अन्यायी (unjust) होने का पता चलता तो तुरन्त वहाँ से पद त्याग कर चल देते। उस समय सामन्त-शाही का युग था और सामन्त-राजाओं के राज्यों में काफी 'मत्सन्याय' (Anarchy) फैला हुआ था। यही कन्फूशियस की परेशानी का कारण हुआ।

सामन्तशाही राज्यों में कन्फूशियस का परिभ्रमण (Confucius travels in different States)

कन्फूशियस के छात्रों में 'लू' राज्य के शासक (Duke of Lu) के मन्त्री का भी एक लड़का था, जिसका नाम था माँगही (Mang-He)। इसी

के द्वारा कन्फूशियस, चाऊ-राज-दरबार में (जो लो-यांग में स्थित था) परिचित हुए। परन्तु वह दरबारी अफसरों से दूर ही रहे और दार्शनिक लाओत्जे को देखने के लिए चले गए। इन दो महान् दार्शनिकों में क्या वार्तालाप हुआ, इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

लाओत्जे से मिलने के उपरान्त कन्फूशियस 'लू' राज्य में लौट आये, परन्तु उसकी खराब हालत देख कर, पड़ोसी 'सी' राज्य (Tsi) में चले गये।

रास्ते में ऊबड़—खाबड पहाड़ियों को पार करते समय वह और उनके शिष्य किसी कब्र के पास से निकले। वहाँ पर एक स्त्री को रोते हुए देख कर, उन्हों ने अपने प्रिय शिष्य (जे-लू Ttsze,Loo) को, रोने का कारण पूछने के लिये उस वृद्धा के पास भेजा। उस स्त्री ने उत्तर दिया—"मेरे ससुर, पति और लड़के को शेरने मार डाला है।" पुन: प्रश्न करने पर कि फिर वह उस भयंकरस्थान में क्यों बैठी हुई है, उस स्त्री ने उत्तर दिया, "यहां पर दबाने और परेशान करने वाली सरकार तो नहीं है।" तब कन्फूशियस ने अपने शिष्यों को कहा " याद रक्खो, परेशानकरने वाली सरकार (Oppressive govt.) एक शेर से भी भयंकर होती है।"

'सी' राज्य के शासक (Duke of Tsi) इन्हें परामर्शदाता (Adviser) के रूप में, अपने राज्य में रखना चाहते थे, परन्तु उनके मन्त्री ने, उनको रोका और कहा, "ऐसे विद्वान सांसारिक बातों को नहीं समझते हैं, अहंकारी होते हैं और छोटी स्थिति (Position) से सन्तुष्ट नहीं होते। इनकी विशेषताएँ (Peculiarities) इतनी हैं कि उन्हें समझने में कई पुश्त लग जाएंगे।" अत: कन्फूशियस पुन: अपने 'लू' प्रान्त (Lu state) को लौट गया और अध्यापन—कार्य करने लगा।

'लू' राज्य में उच्च सरकारी पद की प्राप्ति—

उक्त घटना के पन्द्रह वर्ष पश्चात वह, 'लू' राज्य के चुँग-तु (Chung tu) शहर का 'चीफमैजिस्ट्रेट' बनाया गया (५०१ई०पू०) उसके चीफ मैजिस्ट्रेट बनते ही शहर भर में, ईमानदारी की लहर दौड़ गयी। यहां तक कि मूल्यवान वस्तु भी सड़क पर पड़ी रहती, तो उसे कोई नहीं उठाता।

कन्फूशियस के इस प्रकार ईमानदार कार्यों से सन्तुष्ट होकर, 'लू' के ड्यूक ने, उन्हें, ४९८ ई०पू०, 'Acting Superintendent of Public works' बना दिया। उक्त पद प्राप्ति के पश्चात्, कन्फूशियस ने, राज्य की सारी जमीन की पैमाइश करवाई, और खेती बारी में सुधार किया।

४९७ई०पू० में वह अपराध मन्त्री (Minister of crime) बनाया गया और शीघ्र ही 'लू' राज्य के बदमाशों ने अपनी बदमाशी खत्म कर दी।

उनके लिए सिर उठा कर चलना मुश्किल हो गया। सब लोग हद दर्जे के ईमानदार और राजभक्त (Loyal to the state हो गये। स्त्रियां नम्र स्वभाव की हो गयीं। थोड़े ही दिनों में कन्फूशियस इतना नामी व्यक्ति (Popular) हो गया कि, अन्यान्य राज्यों से, लोग-बाग उसे देखने के लिए 'लू' राज्य में आने लगे। वह सब का 'आदर्श पुरुष' (Ideal man) बन गया।

कन्फूशियस का पद-त्याग

कन्फूशियस की योग्यता तथा 'लू' राज्य की क्रमशः शक्ति-वृद्धि से पड़ोसी राज्यों में ईर्ष्या उत्पन्न होने लगी। अन्त में 'सी' राज्य (I'si state) के एक मन्त्री ने, लू' के शासक के पास, भेंट के रूप में, गानेवाली लड़कियों का एक झुण्ड, और १२० सुन्दर घोड़े, भेजे। 'लू' का शासक इन मनमोहक पुरस्कारों को पाकर मस्त हो गया और मंत्रियों के परामर्श की उपेक्षा करते हुए, राज-कार्य बिल्कुल छोड़ दिया। यहाँ तक कि उसने कन्फूशियस की बात भी टाल दी। असंतुष्ट होकर, कन्फूशियस ने पदत्याग किया और १३ वर्ष तक इधर-उधर भटकता रहा।

इस अवधि में कन्फूशियस और उसके प्रिय शिष्य 'जे-लू' (Jze-loo) को काफी परेशानी झेलनी पड़ी। 'सी' राज्य के शासक ने कन्फूशियस को अपने राज्य में उच्च सरकारी पद देना चाहा, परन्तु कन्फूशियस ने उनकी भी उपेक्षा की। आखिरकार जब उसकी उम्र ६९ वर्ष की थी, उस समय 'लू' राज्य के 'गी' (Duke Gae) ने उनका पता लगवाकर, उनके वापस बुलाने के लिये, राज्य के तीन ऊँचे अफसरों को, बहुमूल्य पुरस्कार के साथ, उनके पास भेजा। कन्फूशियस ने, ड्यूक गी के निमन्त्रण को सादर ग्रहण किया और 'लू' राज्य में पुनः लौट आया। अपने जीवन के अन्तिम ५ वर्ष उन्होंने बड़े आराम से बिताए और केवल परामर्शदाता के रूप में कार्य करते रहे। प्रत्यक्ष रूप से उन्होंने कभी राज कार्य में दखल नहीं दिया, और साहित्यिक चर्चा एवं कविता तथा इतिहास लिखने में संलग्न रहे।

इस महान दार्शनिक की मृत्यु ७२ वर्ष की उम्र में हुई। मृत्यु के पहिले, एक दिन प्रातःकाल, कन्फूशियस यह गीत गाते हुए सुना गया:—

"बड़ा से बड़ा पहाड़ भी टूटेगा,
मजबूत से मजबूत लोहे भी टूटेंगे।
और बुद्धिमान पुरुष भी पौदे कीतरह मुरझायेगा।

जब उसका प्रिय शिष्य, जे-कुंग (Jze-kung) उनके पास आया तो उन्होंने कहा कि, "सारे राज्य में कोई ऐसा शासक नहीं है, जो मुझे अपना उस्ताद मानने के लिये तैयार हो। मेरी मृत्यु का समय आ गया है।"

("No intelligent monarch arises: there is not one in the empire that will make me his master. My time is come to die"—Our Oriental Heritage by Will Durant P 664.)

इस अवस्था में, सात दिन तक चारपाई पर पड़े रहने के पश्चात, इस महान पुरुष की आत्मा परलोक-गामी हुई।

कन्फूशियस के साहित्य (Classics of Confucuis)

चीनी सभ्यता तथा संस्कृति, दर्शन एवं राजनीति के क्षेत्र में, कन्फूशियस का दान केवल महान् ही, नहीं अपितु अतुलनीय है। आगे चलकर हम देखेंगे कि, कन्फूशियस की राजनैतिक एवं दार्शनिक विचार-धाराओं ने भी समय-समय पर चीनी समाज में उथल-पुथल मचा दी, और महान् क्रान्ति एवं परिवर्तन की सूचना की है। चीन के सांस्कृतिक-जगत् में कन्फूशियस का अनवद्य-दान चिरस्मरणीय है।

कन्फूशियस के साहित्य को दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम भाग में जो साहित्य-ग्रंथ हैं, उन्हें सामूहिक रूप से, 'पाँच-चींग' (Five-Chings) कहा जाता है। दूसरे भाग में 'चार-शू' या दार्शनिक ग्रंथ है। नीचे उनका पृथक्-पृथक् संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

प्रथम वर्ग—पाँच-चींग (Five-Chings)

(१) **ली-ची** (Li-Chi)—इस ग्रंथ में सामाजिक तथा धार्मिक क्रिया-कर्म का विवरण है जो सामाजिक व्यवस्था एवं शक्ति कायम रखने के लिए आवश्यक है। इसमें चरित्र-निर्माण, तथा मानसिक एवं शारीरिक शक्ति अक्षुण्ण रखने की भी विधियाँ दी हुई हैं।

(२) **ई-चींग** (I-Ching)—यह एक दार्शनिक ग्रंथ है, जिसका अर्थ है, 'परिवर्तन की पुस्तक' (Book of Changes)—जगत् परिवर्तनशील है, यही इस पुस्तक का आधार है।

(३) **शी-चींग** (Shi-Ching)—इसमें मानव-जीवन के तरीके (Nature of human life) और चारित्रिक सिद्धान्त (Principles of morality) दिये गये हैं।

(४) **चून-चीऊ** (Ch'un-Ch'iu)—जिसका शाब्दिक अर्थ होता है 'शरद् तथा वसन्त ऋतु की घटनाएँ।' इसमें 'लू' राज्य की भिन्न-भिन्न घटनाओं का वर्णन है।

(५) **शू-चींग** (Shu-Ching)—या ऐतिहासिक पुस्तक है। इसमें चीन के प्रारंभिक सम्राटों के शासन की घटनाएँ तथा कहानियाँ हैं। इन स्वर्गीय सम्राटों

लाओत्जे का उपरोक्त विचार बहुत कुछ भारतीय राष्ट्र के पिता गाँधीजी के 'ग्रामीण-उन्नति तथा उद्योग' सम्बन्धी विचारों के अनुकूल हैं, जिनको कार्यान्वित करने के लिए आधुनिक भारत में महान् प्रयत्न किए जा रहे हैं।

'ताओ' धर्म में 'प्रकृति' का महत्व (Significance of nature in Taoism)

लाओत्जे ने जिस धर्म का प्रचार किया वह 'ताओ' धर्म के नाम से प्रसिद्ध है। यह वस्तुतः एक दार्शनिक सिद्धान्त है जिसमें रूढ़िवाद की सम्भावना एकदम नहीं है।

'ताओ' सिद्धान्त के अनुसार, प्रकृति या प्राकृतिक कार्यक्रम (natural activity) एक विशेष नियम है जिससे समय की गति (speed or movement) हमेशा चला करती है, मौसम (Season) अपने समय से आते-जाते हैं, आसमान के तारे अपने-अपने रास्ते या कक्षापथ (orbit way) पर चला करते हैं—इसी प्रकार संसार की सभी वस्तुएँ इसी नियम से नियन्त्रित हो रही हैं। इसी नियम का नाम है 'ताओ'—यह एक शाश्वत-नियम (Universal law) है एवं मानव-जीवन भी इसी नियमानुसार नियन्त्रित (controlled and guided) होना चाहिए। मानव-जीवन के नियम भी इसी शाश्वत-नियम का एक भाग हैं।

इस 'ताओ-सिद्धान्त' (doctrine of Tao) का विश्लेषण करते हुए, लाओत्जे ने आगे बतलाया कि, प्राचीन काल में, जब यह भौतिक सभ्यता न थी, लोगों का जीवन सीधा-सादा और सरल था। लोग सुखी थे। परन्तु 'ज्ञान', यानी 'भौतिक ज्ञान' (Materialistic Knowledge) की प्राप्ति के पश्चात् लोगों ने नाना प्रकार के आविष्कारों से अपना जीवन दुःखमय बना लिया, गाँव छोड़कर शहर में रहने लगे, पुस्तकें लिखने लगे—यहीं से मनुष्य का दुःख प्रारम्भ हुआ और दार्शनिकों का विलाप (wailing and moaning) प्रारम्भ हो गया।

अतः लाओत्जे का कहना है कि 'ज्ञानी व्यक्ति' को इस 'भौतिकवादी सभ्यता' (materialistic civilisation) को छोड़ना चाहिए। उन्हें बाहर से, पुस्तकों से तथा सुधारवादियों (Reformers) से, दूर हट जाना चाहिए और 'प्रकृति की गोद' में लौट जाना चाहिए (Return back to the lap of the Nature) और प्राकृतिक नियमों को चुपचाप, मान लेना चाहिए क्योंकि, लाओत्जे के अनुसार, 'प्रकृति का कार्य चुपचाप शान्ति से होता है। वह अपने कार्य को पूरा करते हुए भी कोई अधिकार (claim) या दावा नहीं करती। प्रकृति के इस नियम के अनुसार, सभी वस्तुएँ अपने कार्य

पूरा करने के बाद समाप्त हो जाती हैं। (All things alike do their work and then we see them subside) जब वे अपनी पराकाष्ठा (bloom) को पहुँच जाती हैं, तब पुनः अपने उद्गम-स्थल (place of origin) को लौट जाती हैं—यानी उनको आराम करने का मौका मिल जाता है। यह एक 'शाश्वत-नियम' (Universal Law) है, और इसी को जानना 'ज्ञान' (यानी wisdom) है।'

'अतः प्राकृतिक नियमों का विरोध करना उचित नहीं है (Not to resist the Natural law) अतः कोई भी व्यक्ति, किसी प्रकार का भौतिक कार्य (materialistic activity) करने की चेष्टा न करे, (Philosophical inaction)। इसलिए सबको उचित ढंग से, अपने कर्त्तव्यों को पूरा करना चाहिए (one must fulfill his duties) अगर उसे विरोध (यानी opposition) या बाधा प्राप्त (resistance) होने की संभावना हो तो उसे किसी प्रकार की लड़ाई-झगड़ा न कर, चुपचाप हट जाना चाहिए और धैर्य तथा शान्ति (Patience and peace) से विजय प्राप्ति की चेष्टा करनी चाहिए।"

इस प्रकार 'ताओ-सिद्धान्त' का विश्लेषण करने के पश्चात्, लाओत्जे ने यह उपदेश दिया कि—'अगर तुम किसी से झगड़ा नहीं करते हो, तो तुमसे कोई झगड़ा नहीं करेगा। जो तुम्हारी हानि करे उसे दया के बर्ताव से पूरा करो। जो तुम्हारे साथ अच्छा व्यवहार करे, और जो बुरा व्यवहार करे, उसके साथ भी अच्छा व्यवहार करो। विश्व में कठोरता (Hardness) के साथ जब कोमलता (Softness) टकराती है तो कोमलता ही विजयी होती है (The softest thing in the world dashes against and overcomes the hardest)। दुनिया में जल (water) सबसे निर्बल (weak) है, परन्तु कठिन से कठिन (Hardest) वस्तु जैसे चट्टान (rock) को भी विध्वस्त (destroy) कर देता है।'

लाओत्जे का उपरोक्त सिद्धान्त, महात्मा गाँधी के अहिंसा के सिद्धान्त से कितना मिलता जुलता है।

इस महान् दार्शनिक का कहना है कि बुद्धिमान व्यक्ति यद्यपि दुनिया में ऊँचा से ऊँचा स्थान अधिकार करने योग्य है, तथापि वह चुपचाप, सरल और शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करता है। शान्ति (Silence) ही 'बुद्धि' (wisdom) की शुरुआत (beginning) है। अतः 'जो व्यक्ति 'ताओ' (Doctrine of Tao) को जानता है, वह उसे कहता नहीं, जो कहता है, वह उसे जानता नहीं।' ५० वर्ष की उम्र में उसे 'ज्ञान' (knowledge) की शक्ति और 'बुद्धि की कमजोरी', मालूम हो जाती है। अगर बुद्धिमान पुरुष

दूसरों से अधिक जानता है, तो वह उसे छिपाने की कोशिश करता है। वह किसी अज्ञानी या अनजान व्यक्ति की भाँति, दूसरे का विरोध नहीं करता। वह धन-दौलत या शक्ति (might or power) को कोई महत्व नहीं देता। वह दुनिया के लाभ तथा हानि की परवाह नहीं करता परन्तु उसके प्रभाव से दूर रहता है। वही सर्वोत्तम व्यक्ति है और वही वास्तविक ऋषि है (He is the noblest man under heaven, he is the real sage)'।

दार्शनिक लाओत्जे की इस विचित्र वाणी (message) और सिद्धान्त (doctrine), ने चीन के अन्यतम महान् दार्शनिक कन्फूशियस (Confucius) को भी विचलित और परेशान किया होगा। जब वह लोयाँग (Lo-yang, Capital of Chou dynesty) शहर में, लाओत्जे का परामर्श लेने के लिए आया लाओत्जे ने उससे कहा—

"जिन (महान् व्यक्तियों) के बारे में तुम पूछताछ कर रहे हो, उनकी हड्डियाँ भी चूर-चूर होकर मिट्टी में विलीन हो गयी हैं। केवल उनकी कृतियाँ (works) ही अवशेष हैं। जब महान् व्यक्ति का समय आता है, वह नेतृत्व ग्रहण करने के लिए उठ खड़ा होता है। परन्तु उचित समय आने के पहले वह जो कुछ करता है उसमें बाधा प्राप्त होती है। (but before his time has come, he is hampered in all that he attempts)। मैंने सुना हैं कि सफल व्यापारी (सौदागर) अपनी दौलत को सावधानी से छिपा लेता है और इस प्रकार व्यवहार करता है कि उसके पास कुछ है ही नहीं। इसी प्रकार महान् व्यक्ति (Great Man) अपनी कृतियों से भरपूर होता है (abounding in achievements), परन्तु अपने चाल-चलन, हाव-भाव में, साधारण होता है। तुम अपनी महान् आकाँक्षाओं एवं अहंकार तथा स्नेह या लगाव (affection) और अव्यवस्थित उद्देश्यों (extravagant aims) को त्याग दो। इन निरर्थक बातों से तुम्हारे चरित्र की महानता में तनिक भी वृद्धि नहीं होती। यही तुम्हें, मेरा परामर्श तथा उपदेश है।"

लाओत्जे का 'ताओ-सिद्धान्त' भारतीय 'वेदान्त' के सिद्धान्त से बहुत कुछ मिलता जुलता है—वेदान्तवादियों ने भी संसार को 'माया एवं मिथ्या' बतलाया है, और सांसारिक बातों से, ज्ञानी व्यक्ति को, दूर रहने का उपदेश दिया है। परवर्त्ती युग में चीनी समाज पर लाओत्जे के सिद्धान्त का गम्भीर प्रभाव पड़ा।

कुंग-फू-ज़े या कन्फूशियस (Confucius)—(५५१ ई० पू०-४७८ ई० पू०)

इस युग के अन्यतम महान् दार्शनिक थे कुंग-फू-जे (Kung-Fu-Tze), या कुंग-चिऊ (Kung-Chiu)। चीनी भाषा में 'कुंग' शब्द का अर्थ है

अध्यापक (Kung The Master) या प्रवीण-व्यक्ति। इनका जन्म 'लू' राज्य के गुफू (Ch'u-fu in Lu-state) स्थान पर, ५५१ ई० पू० में हुआ था। इनका जन्म 'कुंग-वंश' में हुआ था, जिस वंश के स्वर्गीय सम्राट हुआंग ती (२६९७-२५९७ ई० पू०) भी थे। इस वंश में, कई योग्य व्यक्ति, दार्शनिक, राजनैतिक एवं चीनी सरकार (अर्थात् वर्तमान चीनी सरकार के पहले) के अधीन उच्च पदस्थ मंत्री या अफसर हो चुके हैं।

कहा जाता है कि, इनके जन्म के समय इनके पिता की उम्र सत्तर (७०) वर्ष की थी। बचपन से ही कुंग-फू-जे को कठोर परिश्रम करना पड़ा। विद्यार्थी जीवन से, स्कूल के बाद भी, ये अपनी माता की मदद के लिए काम करते थे। परन्तु अपने विद्याध्ययन को इन्होंने कभी नहीं छोड़ा। अत: थोड़े ही दिनों में, धनुर्विद्या (तीरन्दाजी) और संगीत में ये उस्ताद हो गये। किसी कारणवश इन्होंने तीन महीने तक मांस-भक्षण नहीं किया। उन्नीस वर्ष की उम्र में इनका विवाह हुआ, परन्तु तेईस वर्ष की अवस्था में, इन्होंने अपनी पत्नी को त्याग दिया। इस प्रकार इनके अद्भुत चरित्र का परिचय, युवावस्था में ही लोगों को प्राप्त हो गया।

अध्यापक के रूप में कुंग-फू-जे

इन्होंने बाईस वर्ष की अवस्था से ही अध्यापन कार्य शुरू कर दिया एवं अपने घर ही में एक स्कूल स्थापित किया जहाँ ये विद्यार्थियों को इतिहास, कविता और आचरण के नियम (rules of propriety) आदि की शिक्षा देते थे। बच्चों से जो कुछ धन शुल्क (Fees) रूप में मिल जाता, उसी से ये अपना जीवन निर्वाह करते थे।

कुंग-फू-जे का दार्शनिक सिद्धान्त

कुंग-फू-जे ने चरित्र निर्माण पर बड़ा जोर दिया। उनका कहना था कि 'मनुष्य के चारित्रिक संगठन एवं प्रगति, उत्सवादि के नियम तथा आचार-व्यवहार की पूर्णता (fulfillment) केवल मात्र कविता तथा संगीत (music and poetry) के अनुशीलन से ही होती है।' इनका विश्वास था कि अधिक बुद्धिमान और एकदम बेवकूफ ही केवल मात्र शिक्षा से लाभ नहीं उठा सकते और केवल वही व्यक्ति 'Humanistic Philosophy' का अध्ययन कर सकता है, जो चरित्र और दिमाग (Character and mind) का सुन्दर हो। ऐसे व्यक्ति का मिलना मुश्किल है, जो तीन वर्ष निरंतर शिक्षा के उपरान्त भी चरित्र का सुन्दर न हो।'

"It is not easy to find a man, who has learned for three years without coming to the good."

Our Oriental Heritage by Will Durant, p. 660.

कुंग-फू-जे तथा उनके विद्यार्थियों का पारस्परिक सम्बन्ध

कुंग-फू-जे की असाधारण बुद्धिमत्ता (intelligence) और दार्शनिक सिद्धान्त से, कमजोर विद्यार्थी बहुत घबड़ाते थे। परन्तु तब भी, कुछ ही दिनों में, उनके विद्यार्थियों की संख्या तीन हजार हो गयी। कुंग-फू-जे के पढ़ाने का ढंग भी बड़ा विचित्र था। वह अपने कमरे में, या सड़कों पर विद्यार्थियों को शिक्षा देता और सदैव उनकी गलतियों को दिखाकर, उनकी बुद्धि की तीव्रता को हमेशा, सजग रखने पर ध्यान देता था (To keep alert their sharpness of mind)। अपनी विद्वत्ता पर उसे गर्व था और अक्सर कहा करता था 'किसी भी दस परिवार वाले गाँव में, मेरे जैसा विद्या-प्रेमी, शायद ही कोई मिलेगा।' उसका यह विश्वास था कि अगर कोई शासक (Prince) उसे अपनी सेवा (service) में ग्रहण करे, तो बारह महीने (अर्थात् साल भर) में वह उस राज्य के शासन (Goverment) में सुधार कर देगा। परन्तु इस अहंकार तथा विश्वास के बावजूद भी कभी उसने 'श्रेष्ठत्व' (Supremacy) का दावा नहीं किया। उसके शिष्यों (disciples) का कहना था कि "वे कभी अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुँचते थे, पहले से कोई सिद्धान्त नहीं तय करते थे (no predetermination), हठीले नहीं थे और न तो उनमें अहंभाव (Egoism) ही था।' कन्फूशियस स्वयं कहता था कि 'याओ' और 'शून' (Yao and Shun) सम्राटों से जो कुछ उन्होंने सीखा था, वही वे दूसरों को सिखाते थे।

'उत्तम-सरकार' की खोज में कन्फूशियस (Confucius in Search of Good Goverment)

कन्फूशियस महत्वाकांक्षी थे और किसी अच्छे राज्य-सरकार में उचित पद पाने की अभिलाषा उनमें प्रबल थी। उनकी यह आकांक्षा पूरी हुई और बारम्बार कई राज्य-सरकारों में, उच्च पद दिये गये। परन्तु जब कभी उन्हें उस राज्य-सरकार के अन्यायी (unjust) होने का पता चलता तो तुरन्त वहाँ से पद त्याग कर चल देते। उस समय सामन्त-शाही का युग था और सामन्त-राजाओं के राज्यों में काफी 'मत्सन्याय' (Anarchy) फैला हुआ था। यही कन्फूशियस की परेशानी का कारण हुआ।

सामन्तशाही राज्यों में कन्फूशियस का परिभ्रमण (Confucius travels in different States)

कन्फूशियस के छात्रों में 'लू' राज्य के शासक (Duke of Lu) के मन्त्री का भी एक लड़का था, जिसका नाम था माँगही (Mang-He)। इसी

के द्वारा कन्फूशियस, चाऊ-राज-दरबार में (जो लो-यांग में स्थित था) परिचित हुए। परन्तु वह दरबारी अफसरों से दूर ही रहे और दार्शनिक लाओत्जे को देखने के लिए चले गए। इन दो महान् दार्शनिकों में क्या वार्तालाप हुआ, इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

लाओत्जे से मिलने के उपरान्त कन्फूशियस 'लू' राज्य में लौट आये, परन्तु उसकी खराब हालत देख कर, पड़ोसी 'सी' राज्य (Tsi) में चले गये।

रास्ते में ऊबड़—खाबड पहाड़ियों को पार करते समय वह और उनके शिष्य किसी कब्र के पास से निकले। वहाँ पर एक स्त्री को रोते हुए देख कर, उन्हों ने अपने प्रिय शिष्य (जे-लू Ttsze,Loo) को, रोने का कारण पूछने के लिये उस वृद्धा के पास भेजा। उस स्त्री ने उत्तर दिया—"मेरे ससुर, पति और लड़के को शेरने मार डाला है।" पुन: प्रश्न करने पर कि फिर वह उस भयंकरस्थान में क्यों बैठी हुई है, उस स्त्री ने उत्तर दिया, "यहां पर दबाने और परेशान करने वाली सरकार तो नहीं है।" तब कन्फूशियस ने अपने शिष्यों को कहा " याद रक्खो, परेशानकरने वाली सरकार (Oppressive govt.) एक शेर से भी भयंकर होती है।"

'सी' राज्य के शासक (Duke of Tsi) इन्हें परामर्शदाता (Adviser) के रूप में, अपने राज्य में रखना चाहते थे, परन्तु उनके मन्त्री ने, उनको रोका और कहा, "ऐसे विद्वान सांसारिक बातों को नहीं समझते हैं, अहंकारी होते हैं और छोटी स्थिति (Position) से सन्तुष्ट नहीं होते। इनकी विशेषताएँ (Peculiarities) इतनी हैं कि उन्हें समझने में कई पुश्त लग जाएंगे।" अत: कन्फूशियस पुन: अपने 'लू' प्रान्त (Lu state) को लौट गया और अध्यापन—कार्य करने लगा।

'लू' राज्य में उच्च सरकारी पद की प्राप्ति—

उक्त घटना के पन्द्रह वर्ष पश्चात वह, 'लू' राज्य के चुँग-तु (Chung tu) शहर का 'चीफमैजिस्ट्रेट' बनाया गया (५०१ई०पू०) उसके चीफ मैजिस्ट्रेट बनते ही शहर भर में, ईमानदारी की लहर दौड़ गयी। यहां तक कि मूल्यवान वस्तु भी सड़क पर पड़ी रहती, तो उसे कोई नहीं उठाता।

कन्फूशियस के इस प्रकार ईमानदार कार्यों से सन्तुष्ट होकर, 'लू' के ड्यूक ने, उन्हें, ४९८ ई०पू०, 'Acting Superintendent of Public works' बना दिया। उक्त पद प्राप्ति के पश्चात्, कन्फूशियस ने, राज्य की सारी जमीन की पैमाइश करवाई, और खेती बारी में सुधार किया।

४९७ई०पू० में वह अपराध मन्त्री (Minister of crime) बनाया गया और शीघ्र ही 'लू' राज्य के बदमाशों ने अपनी बदमाशी खत्म कर दी।

उनके लिए सिर उठा करं चलना मुश्किल हो गया। सब लोग हद दर्जे के ईमानदार और राजभक्त (Loyal to the state हो गये। स्त्रियां नम्र स्वभाव की हो गयीं। थोड़े ही दिनों में कन्फूशियस इतना नामी व्यक्ति (Popular) हो गया कि, अन्यान्य राज्यों से, लोग-बाग उसे देखने के लिए 'लू' राज्य में आने लगे। वह सब का 'आदर्श पुरुष' (Ideal man) बन गया।

कन्फूशियस का पद-त्याग

कन्फूशियस की योग्यता तथा 'लू' राज्य की क्रमशः शक्ति-वृद्धि से पड़ोसी राज्यों में ईर्ष्या उत्पन्न होने लगी। अन्त में 'सी' राज्य (I'si state) के एक मन्त्री ने, लू' के शासक के पास, भेंट के रूप में, गानेवाली लड़कियों का एक झुण्ड, और १२० सुन्दर घोड़े, भेजे। 'लू' का शासक इन मनमोहक पुरस्कारों को पाकर मस्त हो गया और मंत्रियों के परामर्श की उपेक्षा करते हुए, राज-कार्य बिल्कुल छोड़ दिया। यहाँ तक कि उसने कन्फूशियस की बात भी टाल दी। असंतुष्ट होकर, कन्फूशियस ने पदत्याग किया और १३ वर्ष तक इधर-उधर भटकता रहा।

इस अवधि में कन्फूशियस और उसके प्रिय शिष्य 'जे-लू' (Jze-loo) को काफी परेशानी झेलनी पड़ी। 'सी' राज्य के शासक ने कन्फूशियस को अपने राज्य में उच्च सरकारी पद देना चाहा, परन्तु कन्फूशियस ने उनकी भी उपेक्षा की। आखिरकार जब उसकी उम्र ६९ वर्ष की थी, उस समय 'लू' राज्य के 'गी' (Duke Gae) ने उनका पता लगवाकर, उनके वापस बुलाने के लिये, राज्य के तीन ऊँचे अफसरों को, बहुमूल्य पुरस्कार के साथ, उनके पास भेजा। कन्फूशियस ने, ड्यूक गी के निमन्त्रण को सादर ग्रहण किया और 'लू' राज्य में पुनः लौट आया। अपने जीवन के अन्तिम ५ वर्ष उन्होंने बड़े आराम से बिताए और केवल परामर्शदाता के रूप में कार्य करते रहे। प्रत्यक्ष रूप से उन्होंने कभी राज कार्य में दखल नहीं दिया, और साहित्यिक चर्चा एवं कविता तथा इतिहास लिखने में संलग्न रहे।

इस महान दार्शनिक की मृत्यु ७२ वर्ष की उम्र में हुई। मृत्यु के पहिले, एक दिन प्रातःकाल, कन्फूशियस यह गीत गाते हुए सुना गया:—

"बड़ा से बड़ा पहाड़ भी टूटेगा,
मजबूत से मजबूत लोहे भी टूटेंगे।
और बुद्धिमान पुरुष भी पौदे कीतरह मुरझायेगा।

जब उसका प्रिय शिष्य, जे-कुंग (Jze-kung) उनके पास आया तो उन्होंने कहा कि, "सारे राज्य में कोई ऐसा शासक नहीं है, जो मुझे अपना उस्ताद मानने के लिये तैयार हो। मेरी मृत्यु का समय आ गया है।"

("No intelligent monarch arises: there is not one in the empire that will make me his master. My time is come to die"—Our Oriental Heritage by Will Durant P 664.)

इस अवस्था में, सात दिन तक चारपाई पर पड़े रहने के पश्चात, इस महान पुरुष की आत्मा परलोक-गामी हुई।

कन्फूशियस के साहित्य (Classics of Confucuis)

चीनी सभ्यता तथा संस्कृति, दर्शन एवं राजनीति के क्षेत्र में, कन्फूशियस का दान केवल महान् ही, नहीं अपितु अतुलनीय है। आगे चलकर हम देखेंगे कि, कन्फूशियस की राजनैतिक एवं दार्शनिक विचार-धाराओं ने भी समय-समय पर चीनी समाज में उथल-पुथल मचा दी, और महान् क्रान्ति एवं परिवर्तन की सूचना की है। चीन के सांस्कृतिक-जगत् में कन्फूशियस का अनवद्य-दान चिरस्मरणीय है।

कन्फूशियस के साहित्य को दो भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम भाग में जो साहित्य-ग्रंथ हैं, उन्हें सामूहिक रूप से, 'पाँच-चींग' (Five-Chings) कहा जाता है। दूसरे भाग में 'चार-शू' या दार्शनिक ग्रंथ है। नीचे उनका पृथक्-पृथक् संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

प्रथम वर्ग—पाँच-चींग (Five-Chings)

(१) **ली-ची** (Li-Chi)—इस ग्रंथ में सामाजिक तथा धार्मिक क्रिया-कर्म का विवरण है जो सामाजिक व्यवस्था एवं शक्ति कायम रखने के लिए आवश्यक है। इसमें चरित्र-निर्माण, तथा मानसिक एवं शारीरिक शक्ति अक्षुण्ण रखने की भी विधियाँ दी हुई हैं।

(२) **ई-चींग** (I-Ching)—यह एक दार्शनिक ग्रंथ है, जिसका अर्थ है, 'परिवर्तन की पुस्तक' (Book of Changes)—जगत् परिवर्तनशील है, यही इस पुस्तक का आधार है।

(३) **शी-चींग** (Shi-Ching)—इसमें मानव-जीवन के तरीके (Nature of human life) और चारित्रिक सिद्धान्त (Principles of morality) दिये गये हैं।

(४) **चून-चीऊ** (Ch'un-Ch'iu)—जिसका शाब्दिक अर्थ होता है 'शरद् तथा वसन्त ऋतु की घटनाएँ।' इसमें 'लू' राज्य की भिन्न-भिन्न घटनाओं का वर्णन है।

(५) **शू-चींग** (Shu-Ching)—या ऐतिहासिक पुस्तक है। इसमें चीन के प्रारंभिक सम्राटों के शासन की घटनाएँ तथा कहानियाँ हैं। इन स्वर्गीय सम्राटों

के समय चीन में 'एक साम्राज्य था' (One Empire in China) और ये ही सम्राट चीन-जाति को सभ्य बनाने वालों में से थे।

कन्फूशियस ने मुख्यतः अपने शिष्यों को सिखाने, एवं गलतियों तथा धोखे से बचने के लिए, इन पुस्तकों को लिखा। परन्तु इन पुस्तकों में कन्फूशियस ने अपने व्यक्तिगत विचारों का काफी समावेश कर दिया अतः इन ग्रंथों को सच्ची ऐतिहासिक सामग्री कभी नहीं माना जा सकता। उनके विचार में 'याओ' और 'शून' वंश के शासक (Yao and Shun rulers) सबसे पवित्र और सर्वोत्तम शासक थे परन्तु उनके उक्त विचार को, आधुनिक ऐतिहासिक, पूर्ण-रूपेण, मानने को तैयार नहीं हैं क्योंकि आगे चलकर हम देखेंगे कि हान, तांग तथा शुंग सम्राटों के समय में ही वस्तुतः चीन की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं व्यावहारिक (Materialistic progress) उन्नति अधिक हुई।

द्वितीय वर्ग 'चार शु' (four Shu) या दार्शनिक ग्रंथ जो निम्न-लिखित हैं

(१) लून-यू (Lun-Yu)—कन्फूशियस के वाक्य, उपदेश तथा विचारों का संग्रह, जो उनके शिष्यों ने किया था। कुछ विद्वानों के मतानुसार, 'यह संग्रह उनके शिष्यों के शिष्यों ने किया था। अतः ये पूर्णतः कन्फूशियस के ही दार्शनिक उपदेश एवं विचारों का संग्रह नहीं कहे जा सकते।'

(२) ता-सूए (Ta-Hsueh)—या महान्-शिक्षा।

(३) चुंग-युंग (Chung-Yung)—मध्यम-मार्ग का रास्ता। इस पुस्तक का प्रणेता, कन्फूशियस का पोता 'कुंग-चु' (Kung-Chu) था।

(४) मेंग-जु-शू (Meng-Tzu-Shu)

कन्फूशियस के दार्शनिक सिद्धान्त

कन्फूशियस के दार्शनिक सिद्धान्त, व्यावहारिक जीवन के लिए अधिक उपयोगी थे। उन्होंने शुद्ध दार्शनिक तत्व (Metaphysics) तथा तर्कशास्त्र (Logic) के जाल से सदैव अपने को मुक्त रक्खा। उनके प्रधान दार्शनिक सिद्धान्त निम्नलिखित थे—

(१) अपने जीवन में व्यक्ति को, सच्चे आचार-व्यवहार के नियमों का पालन, प्राकृतिक नियमों के साथ सामंजस्य (harmony) रखते हुए करना चाहिए। कन्फूशियस ने, यद्यपि पूर्वजों की पूजा, (ancestor-worship) जो चीन में प्राचीन काल से चली आ रही थी, कायम रक्खी, परन्तु स्वर्ग

तथा भूत-प्रेत (Spiritual beings) के बारे में उन्होंने कोई भी निजी दार्शनिक विचार व्यक्त नहीं किया।

(२) नैतिकता एवं नैतिक जीवन (Morality and moral life) पर उन्होंने बड़ा जोर दिया। इस सिद्धान्त का विश्लेषण, उन्होंने अपनी पुस्तक 'ता-सूए (Ta-Sueh) में इस प्रकार किया है :—

"जो प्राचीन काल के पूर्वज, सारे साम्राज्य में, सर्वोत्तम सत्य (Perfect-virtue) कायम करना चाहते थे, उन्होंने अपनी राज्य (Empire) की व्यवस्था को पहले ठीक किया, उसके पहले अपने परिवार की, उसके पूर्व अपने को, अपने दिल को, तथा अपने विचारों को ठीक किया। और इसके लिए उन्होंने अपने ज्ञान को जहाँ तक बढ़ा सकते थे, बढ़ाया। इस ज्ञान-वृद्धि के लिए, उन्होंने काफी छान-बीन तथा खोज (Investigation) की।

"खोज समाप्त होने के बाद, ज्ञान पूरा हुआ। ज्ञान पूरा होने से क्रमशः उनके विचार सच्चे हुए, तथा दिल पवित्र हुआ, जिससे वे स्वयं ठीक हो गये। तब उनके परिवार नियंत्रित हुए, तब सम्पूर्ण साम्राज्य में शान्ति और आनन्द स्थापित हो गया।"

इस प्रकार कन्फूशियस ने 'नैतिकता' पर जोर देते हुए कहा है कि इसकी आवश्यकता 'मानव जीवन की पूर्णता' तथा उत्तम राज्य व्यवस्था के लिए परमावश्यक है। इस अभूतपूर्व सिद्धान्त की प्रशंसा करते हुए, डा० विल डूराण्ट ने कहा है :—

"It is a counsel of perfection. It is one of the golden tenets of philosophy" (Our Oriental Heritage, p. 669.)

अर्थात् 'यह एक सर्वोत्तम उपदेश है—यह स्वर्णिम-दार्शनिक सिद्धान्तों में से एक है।'

(३) श्रेष्ठ-मानव का व्यवहार (The way of Higher Man) श्रेष्ठ-मानव या Higher man के बारे में अपने विचार भी कन्फूशियस ने बड़े ही सुन्दर ढंग से दर्शाया है। उनका कहना है कि 'बुद्धि (Wisdom) का प्रारंभ, घर (Home or family) से ही होता है और समाज की नींव है—'एक अनुशासित परिवार में, अनुशासित व्यक्ति' (a disciplined individual in a disciplined family) अपने प्रिय शिष्य 'जे-लू' (Tze-loo) के पूछने पर कि कौन सर्वोत्तम-मानव (Higher man) है, उन्होंने उत्तर दिया "जो श्रद्धापूर्वक, ख्याल करते हुए, सावधानी से, अपनी उन्नति करे" (The cultivation of himself with reverential care)।

कन्फूशियस के विचार के अनुसार 'आदर्श मानव वही है, जो दार्शनिक

तथा संन्यासी के समन्वय से साधु हो गया हो।' (a union of philosopher and saint producing the sage) आदर्श-मानव या श्रेष्ठ मानव के तीन विशेष गुण हैं--बुद्धि, साहस और सद्भावना। तीरन्दाजी (archery) में जिस दक्षता (perfection) की आवश्यकता है, वही दक्षता, श्रेष्ठ मानव में भी पायी जाती है—जब तीरन्दाज अपना निशाना चूक जाता है तो स्वयं उसके कारणों को ढूंढ़ता है, उसी प्रकार श्रेष्ठ-मानव भी, अपनी असफलता के कारणों को यानी अपनी कमियों को ढूंढ़ता है किसी दूसरे को दोष नहीं देता। परन्तु साधारण या निम्न-श्रेणी के व्यक्ति (Lower man) अपनी असफलता का दोष, दूसरों पर आरोपित करते हैं तथा दूसरों की कमियों को ढूँढ़ते हैं।

कन्फूशियस के राजनैतिक विचार

कन्फूशियस के अनुसार, ऐसे श्रेष्ठ मानव ही परिवार तथा राज्य का पुनर्संगठन कर सकते हैं। माता-पिता पर पुत्र की भक्ति, और पति पर पत्नी की भक्ति पर ही समाज आधारित है—और इसकी समाप्ति होने पर, समाज भी खत्म हो जाता है अर्थात् नष्ट हो जाता है। इस भक्ति के नियम (Law of Obedience) से केवल एक और नियम ऊँचा है, वह है नैतिक नियम (Law of morality)। गलत आज्ञा देने पर, पुत्र पिता का, और मन्त्री अपने सम्राट का अवश्य विरोध करें। इस सिलसिले में कन्फूशियस का कहना है कि, "जनता ही सार्वभौमत्व (Political Sovereignty) का उद्गम-स्थल है और जो सरकार (government) जनता का विश्वास खो देती है वह अधिक दिन तक कायम नहीं रह सकती।"

अपने प्रिय शिष्य, जे-कुंग (Tze-Kung) के पूछने पर, कन्फूशियस ने उसे बताया—"सरकार के लिए तीन चीजों की आवश्यकता है, पर्याप्त खाद्य, पर्याप्त युद्ध-सामग्री, और जनता का सरकार तथा शासक में विश्वास।" पुनः जे-कुंग के पूछने पर कि इनमें से किसे पहले छोड़ा जा सकता है, कन्फूशियस ने उत्तर दिया, "युद्ध-सामग्री।" दुबारा पूछने पर कि और कौन सा छोड़ा जा सकता है, उत्तर-मिला "खाद्य-सामग्री परन्तु अगर राज्य या सरकार से लोगों का विश्वास उठ जाय तो राज्य कायम नहीं रह सकता।"

कन्फूशियस का यह दृढ़-विश्वास था कि 'राज्य-शासन' के लिए श्रेष्ठ-मानव के मंत्रीत्व (Ministry of Higher Man) की परमावश्यकता है। क्योंकि वह विदेशों से सम्बन्ध स्थापित करने से दूर रहेगा, राज्य को स्वतंत्र बनावेगा, दरबार की विलासिता को कम करेगा, अधिक से अधिक धन वितरण करेगा (Wide distribution of wealth), दण्ड कम करेगा,

जन-शिक्षा में वृद्धि करेगा, जिससे ऊँच-नीच के भेद-भाव दूर हो जायेंगे। ऊँचे विषय सभी को नहीं पढ़ाये जायेंगे, परन्तु संगीत सभी को सिखाया जायेगा।"

इसी सम्बन्ध में कन्फूशियस ने "बराबरी का महान् सिद्धान्त" (The doctrine of great similarity) की भी व्याख्या की। यह सिद्धान्त है कि "राज्य के अनाथ, विधवा, जवान, वृद्ध आदि सभी की परवरिश की जायेगी।" यह सिद्धान्त आधुनिक समाजवादी सिद्धान्त के ही समान है। अतः कन्फूशियस जीवन के अन्त में समाजवादी विचारों का हो गया था, इसमें सन्देह नहीं। उसकी सहानुभूति भी उन्हीं लोगों से हो गयी थी, जो प्राचीन व्यवस्था (सामन्तशाही) में परिवर्तन कर, नवीन-व्यवस्था (समाजवादी व्यवस्था) को प्रचलित या लागू करना चाहते थे।

कन्फूशियस के विचारों का प्रभाव

कन्फूशियस के महाप्रयाण के पश्चात्, चीन में कन्फूशियस के विचारों के माननेवालों की संख्या में बेहद वृद्धि हुई। बड़े-बड़े कन्फूशियन विद्वान पैदा हुए, जिनका प्रभाव एवं अस्तित्व सारे चीन में काफी शक्तिशाली माना जाने लगा। कन्फूशियस के विचार, दर्शन एवं अन्यान्य सिद्धान्तों को सिखाने के लिए यत्र-तत्र स्कूल खुल गये जो चीन के मानसिक-केन्द्र (Intellectual centres) बन गये।

थोड़े दिनों के पश्चात् कन्फूशियस सम्प्रदाय (Confucian School) का एक विरोधी सम्प्रदाय उत्पन्न हुआ, जो Legalist या 'कानूनी' कहलाए। इस सम्प्रदाय का कहना था कि 'मनुष्य नहीं, बल्कि कानून से राज्य शासित होगा' (Not men but law should rule) कानून को जबर्दस्ती जनता पर लागू किया जायगा जब तक कि लोग बिना जबर्दस्ती के उसे मानने पर बाध्य न हों। साधारण जनता इतनी बुद्धिमान नहीं होती कि अपने आप शासन कर सके। परन्तु कुलीनतंत्र (aristocracy) के अधीन उनकी सबसे अधिक उन्नति होती है। "इस सम्प्रदाय के कुछ विद्वानों का यह भी कहना था कि 'राज्य के लिए यह बुद्धिमत्ता का कार्य होगा कि वह पूँजी का समाजीकरण कर ले (Socialize Capital), व्यापार का ठेका अपने हाथ में ले (monopolize trades) और मुख्य वृद्धि के चक्रान्त को रोके (Prevent the manipulation of prices) और थोड़े व्यक्तियों के हाथों में धन-ऐश्वर्य केन्द्रित (Concentration of wealth) न होने दे।"

इस सम्प्रदाय के उक्त विचारों में भी कुछ-कुछ समाजवादी-सिद्धान्त की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। अतः कन्फूशियस के विचार तथा इन लिगेलिस्टों के विचारों में बारंबार संघर्ष उत्पन्न होना स्वाभाविक था, जिससे चीन के

सामाजिक एवं राजनैतिक विचारों में काफी उथल-पुथल होती रही। समाज में कभी कन्फूशियस के विचार प्रबल हो जाते तो कभी लिगेलिस्ट-विचार-धारा की प्रबलता होती। आगे चलकर हम देखेंगे कि चीन के प्रथम सम्राट शी-हुयाँग-ती (२२१ ई० पू०–२११ ई० पू०) ने, अपने प्रधान मन्त्री ली-सू (जो लिगेलिस्ट विचारों का था) की सहायता से, कन्फूशियस के साहित्य एवं अन्यान्य ग्रन्थों को आग में जलाकर नष्ट करने का प्रयास किया। अगर उस सम्प्रदाय के शिष्य एवं लोग, कन्फूशियस के साहित्य तथा ग्रंथों को लेकर न भाग जाते, तो विश्व की यह अमूल्य-निधि हमेशा के लिए समाप्त हो जाती। कुछ लोग तो इनको बचाने की चेष्टा में शहीद हो गये।

परवर्ती सम्राट वु-ती (१४०–८७ ई० पू०) हान वंश के थे और कन्फूशियस को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। उनकी सहायता से पुनः कन्फूशियस-साहित्य की प्रतिष्ठा चीन में हुई। वे ग्रन्थ जो गायब हो गये थे फिर से लोगों के सामने आ गये। इस सम्राट ने चीनी युवकों की शिक्षा के लिए कन्फूशियस के विचार एवं तरीकों (methods) को फिर से लागू किया।

परन्तु ऐसे उदार मतावलम्बी सम्राट की सहायता के बावजूद भी कन्फूशियनिज्म को बारंबार रुकावट का सामना करना पड़ा। कभी तो ताओ-धर्म और कभी बौद्धधर्म, इसकी प्रगति में बाधा प्रदान करता रहा। परन्तु वांग-वंश के सम्राटों ने (६१८–९०५ ई० सदी) इस धर्म का पुनरुत्थान किया और विशेषकर इस वंश के सम्राट वाई-सुंग (३२७–६५० ई० सदी, A. D.) ने यह आज्ञा दी कि राज्य के प्रत्येक गाँव तथा शहर में कन्फूशियस के मन्दिर बनवाए जाएँ और सभी विद्वान तथा राजकर्मचारी उनके उद्देश्य में यज्ञादि सम्पन्न करें।

सुंग-वंश के राज्यकाल में (९६०–११२२ ई० सदी तथा ११२७ ई०–१२७९ ई० सदी) एक 'नवीन-कन्फूशियन' सम्प्रदाय का जन्म हुआ, जिन्होंने कन्फूशियस के साहित्य पर नाना प्रकार की टीका एवं भाष्य (Commentaries) लिखकर, पूर्वी देशों में कन्फूशियन-दर्शन (Confucian philosophy) को खूब फैलाया। जापान को दार्शनिक प्रेरणा कन्फूशियन-दर्शन से ही प्राप्त हुई। सारांश में यह कहा जा सकता है कि हान-वंश के उत्थान-काल (२०६ ई० पू० २२१ ई० सदी तक) से लेकर माँचू-वंश (१६४४-१९१२ ई० स०) के अन्त तक—प्रायः २००० वर्ष पर्यन्त—कन्फूशियस के आदर्श एवं विचार-धारा ने चीनी-समाज पर अपना अक्षुण्ण प्रभाव कायम रक्खा। कन्फूशियन-दर्शन के कारण ही चीन में जन-जीवन (Community life) की स्थापना हुई और लोग पढ़ने-लिखने की ओर आकृष्ट हुए। इसी के प्रभाव से चीनी-संस्कृति की रूप-रेखा स्थायी तथा शान्तिमय बन सकी। यहाँ तक कि

आक्रमणकारियों ने भी शीघ्र ही इस संस्कृति को अपना लिया और इस देश के निवासियों के साथ घुल-मिल गये।

कन्फूशियस के पश्चात् दो सौ वर्ष तक राजधानी लो-यांग दार्शनिक एवं विद्वानों का केन्द्र बनी रही। बड़े-बड़े दार्शनिकों ने अपना अड्डा यहाँ जमाया और अपने विचारों को यहीं से फैलाने लगे। इस दृष्टि-कोण से लो-यांग शहर की हम भारत के प्राचीन शहर वाराणसी के साथ तुलना कर सकते हैं, जहाँ अब भी बड़े-बड़े दार्शनिकों का निवास है।

लो-यांग शहर के इन नवीन दार्शनिकों में कुछ का संक्षिप्त वर्णन यहाँ दिया जाता है:—

(१) **मो-ती** (Mo-Ti) इस दार्शनिक ने 'विश्व-प्रेम' की वाणी का प्रचार किया। इनका कहना था कि सामाजिक समस्याओं को हल करने का यही एकमात्र उपाय है। इनका दार्शनिक सिद्धान्त इतना प्रभावशाली था कि इनके शत्रु माँग-जे या मेनशियस (Mencius) ने भी इनकी प्रशंसा की। मो-ती ने तत्कालीन राज्य-व्यवस्था की इतनी तीव्र निन्दा की कि राज्य में अराजकता तथा विप्लव होने की आशंका से अधिकारी घबड़ा उठे। परन्तु मो-ती शान्ति-वादी थे और युद्धादि से दूर रहना चाहते थे। इन्होंने 'चू' राज्य के इंजीनियर से प्रार्थना की, वह अपने नवीन आविष्कार—घेरा डालने की सीढ़ी (Siege-Ladder) की परीक्षा के लिए, पड़ोसी सुंग-राज्य पर आक्रमण न करे। 'चू' राज्य का इंजीनियर इनके विचारों से इतना प्रभावित हुआ कि उसने आक्रमण करने का विचार त्याग दिया।

इनके शिष्य सुंग-यींग तथा कुंग-सुंग-लुंग ने मिलकर निरस्त्रीकरण (disarmament) के लिए देश भर में आन्दोलन किया। परन्तु मो-ती तथा उनके शिष्यों पर, कन्फूशियस-सम्प्रदाय के दार्शनिक एवं विद्वान बराबर हँसते रहे और इनके दार्शनिक सिद्धान्त की खिल्ली उड़ाते रहे। सम्राट शी-हुआंग-ती के समय इस महान् दार्शनिक की सभी पुस्तकें जला दी गयीं और इसके बाद वस्तुत: चीन में इस सम्प्रदाय का अन्त ही हो गया।

(२) **यांग-चाअ** – ये इस समय के अन्यतम दार्शनिक थे। अपने विचित्र सिद्धान्त के कारण इनको अहंवादी (Egoist) कहा जाता है। इनका सिद्धान्त बहुत कुछ भारतीय ऋषि-चार्वाक से मिलता जुलता है। वस्तुतः इन्हें यदि 'चीन का चार्वाक' कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी।

इनका प्रधान सिद्धान्त इस प्रकार है—

"जीवन दुःखमय है, अतः इसका प्रधान उद्देश्य है सुख भोगना" (चार्वाक ऋषि ने भी कहा है, 'यावत् जीवेत्, सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्') न तो भगवान् हैं, न परलोक या मृत्यु के पश्चात् कोई जीवन है (no after

life)। भाग्य के हाथों में मानव केवलमात्र एक खिलौना है। नीति या नैतिकता केवल एक धोखा है जो चतुर व्यक्ति के द्वारा सीधे-सादे व्यक्ति के ऊपर प्रयोग किया जाता है। इस दुनिया में (जीवन में) अच्छे और बुरे, दोनों ही कष्ट भोगते हैं, परन्तु जो 'दुष्ट' होता है वह जीवन को 'अच्छे' व्यक्ति से कहीं अधिक उपभोग करता है।"

"The wicked seem to enjoy themselves more keenly than the good"—Our Oriental Heritage by Will Durant.

आन्तरिक सच्चाई और विश्व-प्रेम, जो कि कन्फूशियस और मो-ती जैसे दार्शनिकों के द्वारा प्रचार किया गया है, केवलमात्र मूर्खता है। अतः दार्शनिक यांग के अनुसार 'स्वयं खूब आनन्द करो, खूब मौज उड़ाओ"।

क्या चार्वाक ऋषि के ही समकक्षी ये भी नहीं थे ?

(३) **माँग-जे या मेन्शीयस** (Mencius)—इस युग के तीसरे दार्शनिक, मेन्शीयस ने यांग-चाऊ के 'सुखवादी तथा भोगी सिद्धान्त' (Epicureanism) एवं कन्फूशियस के 'आदर्शवादी' सिद्धान्त, दोनों की आलोचना की। परन्तु दार्शनिक कन्फूशियस की तरह इन्होंने भी नैतिक तथा राजनैतिक समस्याओं पर ही अधिक गवेषणा (speculation) की। इनका विश्वास था कि मनुष्य स्वभावतः अच्छा होता है। इनका कहना था कि 'मनुष्य को अच्छा जीवन बिताना चाहिए तथा अच्छे व्यक्तियों को राज्य कार्य के लिए नियुक्त करना चाहिए।' यह उदारमतावलम्बी सरकार के पक्ष में थे, जो अज्ञानता तथा निर्धनता को दूर करने में समर्थ है, क्योंकि इन्हीं बुराइयों से सामाजिक अपराध तथा दुर्व्यवस्था की उत्पत्ति होती है। सरकार को सदैव अपनी प्रजा का हित करना चाहिए और गरीबी से लड़ना चाहिए, प्रजा के दारिद्रय (poverty) को दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए। उनको चाहिए कि राज्य की अर्धनैतिक व्यवस्थाओं को नियन्त्रित करें।

परन्तु शासकवर्ग ने इनके सिद्धान्त को अस्वीकार किया और समाजवादी तथा साम्यवादियों ने इनके सिद्धान्त के रूढ़िपन (conservatism) के कारण इनकी तीव्र निन्दा की। तत्कालीन साम्यवादी विप्लवी नेता सू-सींग (Hsu-Hsing) का कहना था कि राज्य के प्रधान अफसर एवं कर्मचारी (अर्थात् मैजिस्ट्रेट आदि) मज़दूर-वर्ग के होना चाहिए। परन्तु मेन्शीयस का कहना था कि, "सरकार केवल पढ़े-लिखे लोगों के हाथ में होनी चाहिए'। दुर्भाग्यवश उसके सिद्धान्त को अनुदार शासक वर्ग और विप्लव में विश्वास करने वाले साम्यवादी दल, किसी ने पसन्द नहीं किया।

मेन्शीयस का एक और विचित्र सिद्धान्त था। अत्याचारी शासक के विरुद्ध जनता को विद्रोह करने का अधिकार है, इस सिद्धान्त को उसने स्वीकार किया

और शासकों के सामने खुलेआम, उक्त सिद्धान्त का प्रचार किया। परन्तु उसने युद्ध करने की प्रवृत्ति की तीव्र निन्दा की और सेनापति तथा सैनिकों की भर्त्सना की। उसका विचार था कि, 'युद्ध करना एक महान् अपराध है'। तथा 'जिस शासक ने अपनी प्रजा से शत्रुता मोल ले ली है, उसने शासन करने का स्वर्गीय अधिकार खो दिया है। अतः उसे शासस-च्युत करने का अधिकार प्रजा को है'।

चीन के दार्शनिकों में, कन्फूशियस के बाद ही मेन्शीयस का स्थान है, जिनके विचार एवं दार्शनिक सिद्धान्तों ने चीन के इतिहास तथा दार्शनिक विचार-धाराओं को, १९११ सदी के विद्रोह पर्यन्त प्रभावित किया है।[1]

(४) **सून-जे** (Hsun-Tze)—दार्शनिक मेन्शीयस का यह विश्वास था कि मनुष्य का स्वभाव वस्तुतः सुन्दर तथा अच्छा है, परन्तु दार्शनिक सून-जे का कहना था कि मनुष्य का स्वभाव वस्तुतः बुराइयों से भरा हुआ है और खराब है। इसी कारण नाना प्रकार की बर्बरता (Savagery) अपराध तथा अन्यान्य सामाजिक बुराइयों की उत्पत्ति होती है। अतः नैतिकता तथा सच्चाई-शिक्षक तथा कानून इत्यादि के द्वारा उसके अन्दर अच्छे गुण उत्पन्न करना चाहिए। तभी उसके अन्दर आत्म-त्याग की भावना उत्पन्न होगी और तभी अच्छी सरकार का निर्माण होगा।

दार्शनिक सून-जे ने, रूसी लेखक तुर्गनेव की तरह प्रकृति को मन्दिर न मानकर एक कारखाना माना, जो प्राकृतिक उपादान (raw-material) मनुष्य को देती है, परन्तु मनुष्य अपनी बुद्धि के द्वारा बाकी चीजों को पूरा करता है। वास्तविकतावादी दार्शनिक सून-जे भी कुछ दिनों तक एक उच्च राज्य-कर्मचारी के पद पर आसीन रहे। इनको मृत्यु सत्तर वर्ष की उम्र में—२३५ ई० पू० हुई।

(५) **चुयाँग-जे** (Chuang-Tze)—इनको आदर्शवादी दार्शनिक कहा जाता है। इनका जन्म सुँग-राज्य में हुआ था और कुछ दिनों तक 'खी-यूआन' (Khi-Yuan) शहर में एक छोटे से सरकारी पद पर कार्य भी करते रहे। जिन राज-दरबारों में दार्शनिक मेन्शीयस का आना-जाना रहा, उनमें ये भी आते-जाते रहे, परन्तु इन्होंने मेन्शीयस का उल्लेख कहीं नहीं किया है। 'वी' राज्य के शासक ने इन्हें प्रधानमन्त्री का पद देना चाहा, परन्तु इन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। इसी प्रकार 'खु' के सम्राट् को भी इन्होंने टाल दिया और उनके अफसरों को लौटा दिया। दार्शनिक लाओत्जे (लाओत्सू) की

---

१. मेन्शीयस का स्मृति-फलक, मृत्योपरान्त, कन्फूशियस के मन्दिर में रखा गया।

भाँति इनका भी विश्वास था कि सम्राट् और शासकों में अनेक दुर्गुण हैं जिनकी बराबरी चोरों से की जा सकती है।

इनका विश्वास था कि अगर कोई दार्शनिक किसी राज्य का अधिकारी (in-charge) होता है तो वह जनता को स्वायत्त-शासन (Local Self-Government) निर्माण के लिए काफी स्वतन्त्रता प्रदान करता है। चीन के प्राचीनतम सम्राटों के पहले, चीन में न तो कोई सम्राट् और न कोई सरकार ही थी। वह चीन का स्वर्ण-युग था। उस समय सच्चाई का जमाना था जब कि मानव, पशु-पक्षियों के साथ हिल-मिलकर रहता था। सभी मानों एक ही परिवार के थे। उस युग में ऊँच-नीच का भेद-भाव न था।

इनका कहना था कि, बुद्धिमान पुरुष शासक और दार्शनिकों से दूर, सीधा-सादा जीवन व्यतीत करता है। वह 'स्वर्गीय ताओ-धर्म का पालन करता है, बोलता कम है, मशीन इत्यादि से दूर होता है और व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकारी नहीं होता है।'

दार्शनिक चुयाँग-जे, इस विश्व की 'रहस्यमय अव्यक्त एकता' (Impersonal, mystic and Cosmic Unity) में विश्वास करते थे। यह सिद्धान्त उपनिषद-वर्णित, परमात्मा के अव्यक्त-रूप सम्बन्धी विचारों के समान हैं। ये 'ताओ' धर्म के अनुसार प्रकृति के सरल-जीवन में विश्वास करते थे और इनका कहना था कि प्रकृति के इस अन्तहीन-चक्र (Endless cycle) में मानव नाना प्रकार के रूप धारण करता है। अतः मृत्यु केवल रूप-परिवर्तन का ही दूसरा नाम है। 'मृत्यु एक प्रकार की शान्तिमय नींद है, जिससे चुपचाप हम जागते हैं अर्थात् पृथ्वी में पुनः जन्म लेते हैं।'

चीनी-दर्शन के प्रभाव से ही यूरोपीय दार्शनिक लेबनीज (१६९७ ई० स०) को विश्वास हो गया था कि तत्कालीन यूरोपीय समाज की अनैतिकता दूर करने के लिये चीनी पादरियों (missionaries) का यूरोप में आह्वान किया जाय। दार्शनिक लेबनीज ने तत्कालीन रूसी-शासक, पीटर महान् (Peter the Great) से यह भी प्रार्थना की कि वह रूस तथा चीन को मिलाते हुए एक स्थल-पथ (Land-route) का निर्माण करें ताकि यूरोप तथा चीन का सम्पर्क अधिकाधिक गम्भीर तथा निकटतम हो। रूस की राजधानी मास्को तथा जर्मनी की राजधानी बर्लिन में इन्होंने चीन तथा यूरोप के बीच सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से कई संस्थाओं की नींव डालने में काफी प्रेरणा दी तथा सहायता पहुँचाई।

यूरोप के अन्यान्य महान् मनीषी जैसे वाल्तेयर (फ्रांस), गोथे (जर्मनी) तथा टालस्टाय (रूस) आदि पर भी चीनी दर्शन तथा चीन के उपरोक्त महान् दार्शनिकों का काफी प्रभाव पड़ा। इस दृष्टिकोण से चीन की देन, निःसंदेह विश्व-संस्कृति में, महानतम है।

———

अध्याय | १२

चीन का प्रथम सम्राट शी हुयांग-ती
(२३० ई० पू०-२०१ ई० पू०)

यह ऊपर कहा जा चुका है कि चीन का प्रथम सम्राट शी-हुयाँग-ती था जिसने प्राय: सभी सामन्त-राज्यों (Feudal States) को मिलाकर चीनी साम्राज्य की स्थापना की। इनकी तुलना जर्मनी के महान् राजनीतिज्ञ, ओटो वन बिसमार्क (१८६२-१८९० ई० सदी) से की जाती है, जिन्होंने जर्मनी तथा आस्ट्रिया के सभी राज्यों को मिलाकर, महान् जर्मन-साम्राज्य की स्थापना की थी।

सम्राट शी-हुयांग-ती की माँ, ची'न (C'hn) (जिससे सारे देश का नाम 'चीन' पड़ा) की सम्राज्ञी थी, जिनका अवैध-सम्बन्ध उसी राज्य के महान् मंत्री 'लू' से था और जिनसे 'शी हुआंग-ती' का जन्म हुआ। अत: राजघराने में जन्म लेकर भी वह जन्म-दोष से दूषित था।

शी-हुआंग-ती का विजय-अभियान

कहा जाता है कि शी-हुयांग-ती ने अपने पिता को आत्महत्या करने पर बाध्य किया। माँ को मरवा डाला और १२ वर्ष की उम्र में ही चीन राज्य का शासक बन बैठा। जब वह २५ वर्ष का नवयुवक था तब वह विजय-अभियान के लिए निकल पड़ा और निम्नलिखित राज्यों को शीघ्र ही अपने अधिकार में कर लिया।

(१) २३० ई० पू० में—हान राज्य (Han State)
(२) २२८ ई० पू० में—चाओ राज्य (Chao State)
(३) २२५ ई० पू० में—वी राज्य (Wei State)
(४) २२३ ई० पू० में—चु राज्य (Chu State)
(५) २२२ ई० पू० में—येन राज्य (Yen State)
(६) २२१ ई० पू० में—ची राज्य (Chi State)

अन्तिम राज्य 'ची' पर विजय प्राप्ति के साथ ही उसका विजय-अभियान समाप्त हुआ। इस प्रकार चीन के इतिहास में प्रथम बार, भिन्न-भिन्न राज्यों पर चक्रवर्त्ती सम्राट के अधिकार की स्थापना हुई।

प्रथम सम्राट होते हुए भी, चीनी इतिहास में सम्राट शी-हुआंग-ती अपनी अनुदार नीति एवं विचारों के कारण महानता की आख्या से वंचित है। चीनी ऐतिहासिकों ने, इसके रूप-रंग का इस प्रकार वर्णन किया है—

"इनकी नाक बहुत ही प्रमुख, आँखें बड़ी-बड़ी, वक्षस्थल शिकारी पक्षी जैसा, आवाज सियारों की भाँति, किसी की भलाई न चाहने वाला, दिल शेर या भेड़िये की तरह था।"

("A man with a very prominent nose, with large eyes, with the chest of a bird of prey, with the voice of a jackal, without beneficience, and with the heart of a tiger or wolf."—Our Oriental Heritage by W. Durant, p. 695).

इस वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि वह क्रूर तथा निर्दयी स्वभाव का था। परन्तु अन्दर से डरपोक था।

चीन की 'विशाल दीवार' का निर्माता

ऐसे खराब स्वभाव का होता हुआ भी, सम्राट शी-हुयाँग-ती, चीनी इतिहास में 'महान्' समझा जाता है। उत्तरी सीमाप्रान्त की आक्रमशकारी बर्बर-जातियों को बाधा देने के लिए, चीन के (उत्तरी सीमा पर) भूतपूर्व सम्राटों एवं शासकों ने छोटी-छोटी दीवारें बनवायी थीं। सम्राट शी-हुयांग-ती ने, कैदियों के द्वारा, इन दीवारों को मिलाकर एक 'विशाल-दीवार का निर्माण कराया। (Great China Wall) जिसकी लम्बाई १५०० मील थी। अपनी विशालता के कारण यह दीवार प्रसिद्ध हो गयी है। इस दीवार में निश्चित दूरी पर बड़े-बड़े फाटक भी लगे हुए हैं। फ्रांसिसी मनीषी वाल्तेयर का कहना है कि 'इस विशाल दीवार की तुलना में, मिस्र के पिरामिड, क्षुद्र और तुच्छ मालूम होते हैं।'

इस दीवार के निर्माण में दस वर्ष लग गये। यद्यपि यह वृहत् दीवार, बर्बर-हूणों के आक्रमणों को सम्पूर्ण रोकने में समर्थ न हो सकी तथापि चीन पर इनके आक्रमण धीरे-धीरे कम हो गये। अब हूणों ने अपना ध्यान यूरोप की ओर दिया और इटली पर आक्रमण किया जिससे रोम का पतन हो गया। इसी पर प्रो० विल डूराण्ट का कहना है कि, 'चीन की वृहत् दीवार के निर्माण से ही रोम का पतन हुआ" (Rome fell, because China built a wall).

शासन-प्रबन्ध

सम्राट शी-हुआंग-ती का प्रधान मन्त्री था ली-स्सू (Li-SSu) जो लिगे-लिस्ट विचारों का था। ऊपर इनका उल्लेख किया गया है और राज्य निर्मित कानूनों के द्वारा शासन करने में विश्वास करता था। उसने एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार का निर्माण किया और सामन्त राजाओं तथा जमींदारों की शक्ति काफी घटा दी। सम्पूर्ण राज्य को ३६ चुन (Chun) या जिले में बाँट दिया गया और हरएक जिले के शासन-प्रबन्ध के लिए एक शासक (Civil Governor), सेनाध्यक्ष (military officer) तथा अन्य अफसर नियुक्त किये गए। सेनाध्यक्ष एवं उसकी सेना जिला-शासक से सम्पूर्ण स्वतंत्र होते थे। सारे देश के लिए एक ही कानून चालू किया गया और भूमि का मालिक किसान को ही बनाया गया। राजकीय सिक्के भी सारे देश में चालू हुए।

यातायात की सुविधा के लिए राजधानी हीएन-यांग (Hien-Yang) से, राज्य के भिन्न-भिन्न दिशाओं को बड़ी-बड़ी सड़कें बनायी गयीं। स्वय सम्राट ने, राजधानी में सुन्दर तथा भव्य महल एवं प्रासादों का निर्माण करवाया तथा राज्य के १२०,००० शक्तिशाली एवं धनी परिवारों को जबर्दस्ती, राजधानी में लाकर बसा दिया।

अपराध-निवारण के लिए, सम्राट ने छद्मवेश (disguise) में अपने राज्य में परिभ्रमण करना प्रारम्भ किया और जहाँ कहीं इन्हें अपराध या बदमाशी दिखाई पड़ी, वहीं उन्होंने उसको जड़ से नष्ट कर दिया। सम्राट ने अपने राज्य काल में विज्ञान को प्रोत्साहन दिया, परन्तु साहित्य तथा दर्शन की प्रगति में निरपेक्ष भाव ग्रहण किया। जनता के बोलने तथा कार्य करने की स्वाधीनता सम्राट ने बिलकुल छीन ली। दार्शनिकों एवं साहित्यिकों (विशेषतया कन्फूशियन विद्वान तथा दार्शनिकों) का वह परम शत्रु था। चीनी विद्वानों के एक प्रतिनिधि दल ने सम्राट से भेंट करते हुए इसका तीव्र विरोध किया, परन्तु सम्राट ने उनकी बातों पर कुछ भी ध्यान न दिया। सम्राट के प्रधान मंत्री ली-स्सू ने सम्राट को परामर्श दिया कि, प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों को जला दिया जाय। अतः सम्राट ने वैसा ही किया, केवल वैज्ञानिक पुस्तक तथा दार्शनिक पुस्तकें ही बच गयीं। जिन विद्वानों ने इस आज्ञा का विरोध किया या बचाना चाहा, उन्हें कैद कर वृहत् दीवार के निर्माण कार्य में लगा दिया। इस प्रकार प्रायः ४६० विद्वानों को प्राणदंड दिया गया। इस प्रकार विद्वान तथा दार्शनिकों का गला घोंट कर, जन-स्वाधीनता को सम्राट ने एकदम छीन लिया।

परन्तु सम्राट की मृत्यु के पश्चात्, पुनः कन्फूशी-विद्वानों ने, कन्फूशियस के साहित्य एवं दार्शनिक-ग्रंथों की पुनर्रचना की और समाज में पुनः उनकी प्रतिष्ठा स्थापित हो गयी। विद्वानों तथा ऐतिहासिकों की नजरों में सम्राट

बिल्कुल ही गिर गया, जो उनकी कब्र पर जाकर गन्दगी फैलाने लगे। इन्हीं सब कारणों से सम्राट शी का व्यक्तिगत जीवन भी दुःखमय हो गया। वह निःसंग, एकाकी जीवन बिताने लगा। हमेशा हाथ में एक नंगी तलवार लिए वह बैठा रहता था। अमर होने के लिए उसने वृद्धावस्था में एक 'संजीवनी' आविष्कार करने की चेष्टा की। कहा जाता है कि राजधानी के बाहर इसकी मृत्यु हुई और जब इसका मृत शरीर राजधानी को लाया जा रहा था, तब इनके शरीर से इतनी दुर्गन्ध निकलने लगी कि मृत-वाहक गाड़ी के सामने मछलियों की गाड़ियाँ लगाकर तब इनका शव राजप्रासाद में लाया गया और उसको दफनाया गया। इनके कब्र-निर्माताओं को भी इन्हीं के साथ दफना दिया गया।

हान-राजवंश की स्थापना (२०६ ई० पू०-२२१ ई० पू०)

२११ ई० पू० में सम्राट शी-हुयांग-ती की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु के ६ वर्ष के अन्दर ही चीन राजवंश के शासन का अन्त हो गया। सम्राट शी का पुत्र मारा गया और २०६ ई० पू० में, काओ-तसू (Kao-Tssu) नामक एक व्यक्ति ने, हान राजवंश की स्थापना की, जिसने चीन पर प्रायः ४०० वर्ष पर्यन्त राज्य किया।

हानवंश के दो भाग थे—एक तो पश्चिमी हानवंश, जिसकी राजधानी थी लो-यांग और पूर्वी हान-वंश जिसकी राजधानी थी चाँग-आन। पश्चिमी हान-वंश का राज्यकाल २०६ ई० पू० से २४ ई० सदी (206 B. C. to 24 A. D.) तक और पूर्वी हान-वंश का राज्यकाल २४ ई० सदी से २२१ ई० सदी पर्यन्त (24. A. D. to 221 A. D.) माना जाता है। चीन के इतिहास में हान-राजवंश के सम्राट बहुत ही प्रसिद्ध हो गये हैं, जिस कारण आज भी चीन के लोग अपने को 'हान की सन्तान' बताते हैं।

इस वंश के सबसे महान् एवं प्रसिद्ध सम्राट थे, सम्राट वु-ती (Wu-Ti) जिनका राज्यकाल १४० ई० पू० से ८७ ई० पू० (140 Bc. fo 87 B.C.) माना जाता है। यह जैसे ही महान् योद्धा थे वैसे ही विद्वान।

सम्राट वु-ती की कृतियाँ (Achievements of Emperor Wu-Ti)

विजय—गद्दी पर बैठने के उपरान्त इन्होंने बर्बर-जातियों को चीन से मार भगाया एवं कोरिया, मञ्चूरिया, अन्नाम, हिन्द-चीन तथा तुर्किस्तान को जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया।

सम्राट वु-ती के आर्थिक सुधार

परन्तु चीन के इतिहास में सम्राट वु-ती अधिकतर अपने उन आर्थिक

सुधारों के कारण प्रसिद्ध हो गये हैं जिनके लिये उन्हें समाजवादी सम्राट (Socialist Emperor) कहा गया है।

सम्राट ने आर्थिक सुधार के लिए सर्वप्रथम प्राकृतिक साधनों का राष्ट्रीयकरण किया (National ownership of Natural resources) एवं व्यक्तिगत-सम्पत्ति का अधिकार समाप्त कर दिया। नमक तथा लोहे का उत्पादन तथा शराब की प्रस्तुति एवं बिक्रीकरण (Production and sale) अब राष्ट्र का ठेका हो गया। इसी प्रकार विनिमय (exchange) तथा यातायात के साधन भी राष्ट्रीय प्रबन्ध के अन्तर्गत हो गये।

सम्राट ने व्यापारादि को भलीभाँति नियंत्रित कर, दलालों की शक्ति एवं मूल्य-वृद्धि पर रोक लगा दी। गल्ले एवं अन्यान्य वस्तुओं को राजकीय गोदामों में एकत्रित किया गया। जब इनके दाम गिर जाते तब राज्य की ओर से इन वस्तुओं को खरीद लिया जाता और जब इनके दाम बढ़ने लगते तब राज्य की ओर से इन वस्तुओं को बेचा जाता। इस सुन्दर प्रबन्ध से कालाबाजारी तथा मुनाफाखोरों की कमर बिल्कुल टूट गयी। चीन के ऐतिहासिक जम्मा-चीयेन (Szuma-Chien) का कहना है कि "बड़े-बड़े सौदागर एवं व्यापारी तथा दुकानदारों को अधिक लाभ करने से एकदम रोक दिया गया और सारे राज्य में वस्तुओं के मूल्य नियन्त्रित एवं व्यवस्थित हो गये।"

सम्राट वु-ती केवल बड़े-बड़े सौदागरों और मुनाफाखोरों को नियन्त्रित कर ही सन्तुष्ट न हुए। उन्होंने अन्य एक नियम लागू किया, जिसके अनुसार राज्य के सभी व्यक्तियों को अपनी-अपनी आमदनी सरकार के यहाँ दर्ज (registered) करानी पड़ती तथा ५ प्रतिशत सालाना टैक्स देना पड़ता था।

सम्राट ने टीन-मिश्रित चाँदी के सिक्के (Silver Coins alloyed with tin) चालू किये एवं सार्वजनिक कार्यों (Public Works) के द्वारा उन लोगों को रोजगार (job) दिलवाये जो व्यक्तिगत उद्योग-धन्धों में न खप सके। सम्राट ने नदियों के ऊपर पुल भी बनवाये तथा नहरों का निर्माण करवाया, जिससे नदियों की बाढ़ से लोग बच गये एवं खेतों को गल्ला तथा शस्य-उत्पादन के लिए प्रचुर जल प्राप्त होने लगा।

सम्राट के इस नवीन आर्थिक प्रबन्ध तथा अन्यान्य सुधारों का बड़ा अच्छा प्रभाव चीन की जनता तथा समाज पर पड़ा। चीन के वैदेशिक व्यापार (foreign trade) में पर्याप्त वृद्धि हुई, विशेषतयः पूर्वी-देशों के साथ उसका व्यापार काफी बढ़ गया। राजधानी लो-याँग (Lo-Yang) धन, जन तथा ऐश्वर्य से समृद्धि-शाली हो गया। राजकीय कोष नाना प्रकार के कर तथा मालगुजारी की आमदनी (Income from revenue) से भर गया। कला, साहित्य तथा मृन्मय-पात्रों (Pottery) की निर्माण-कला में प्रभूत उन्नति हुई।

राजकीय पाठागार (Royal Library) में नाना प्रकार की पुस्तकें, विभिन्न विषयों पर एकत्रित की गयीं। जैसे—(१) साहित्य पर ३,१२३; (२) दर्शन-शास्त्र पर २,७०५; (३) कविता पर १,३१८; (४) गणित-शास्त्र पर २,५६८; (५) औषधि-शास्त्र पर ८६८; तथा (६) युद्ध-विद्या पर ७९०। लक्ष्य करने योग्य है कि युद्ध विद्या पर सबसे कम पुस्तकों का संग्रह हुआ। इसका प्रधान कारण यह था कि चीनी समाज में युद्ध विद्या तथा सैनिक को कभी आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। अतः युद्ध विद्या पर बहुत कम पुस्तकें लिखी गयीं। इससे यह भी प्रणाणित होता है कि चीनी हमेशा से शान्तिप्रिय रहे।

राजकीय पदों तथा सरकारी नौकरियों में भर्ती होने के लिए भी सम्राट वु-ती ने एक अभिनव उपाय का आविष्कार किया—वह था परीक्षामूलक-प्रतियोगिता (Competitive Examination), जिसका अनुकरण प्रायः सभी आधुनिक सभ्य देशों में किया जा रहा है। विश्व-सभ्यता की प्रगति में चीन की यह एक अभूतपूर्व देन है। सम्राट वु-ती द्वारा प्रवर्तित इस प्रतियोगिता-मूलक परीक्षा में जो उत्तीर्ण होते थे, उन्हीं को सरकारी पद एवं नौकरी दी जाती थी। इस परीक्षा में सभी व्यक्ति शामिल हो सकते थे। इस प्रकार नाना प्रकार के सुधार एवं शासन-प्रबन्ध व्यवस्थित होने के कारण, चीन की सामूहिक रूप से महान् प्रगति सम्राट वु-ती के समय हुई।

परन्तु सम्राट वु-ती के ये समाजवादी सुधार एवं व्यवस्था, तत्कालीन समय के बहुत आगे थी, अतः चीनी जनता ने उनकी पूरी-पूरी आवभगत न की। धीरे-धीरे जनता सम्राट वु-ती की विरोधी हो गयी। कई बार बाढ़ तथा अकाल पड़ने के कारण देश की आर्थिक समस्या विकट हो गयी। कपड़े एवं खाद्य-द्रव्यों के मूल्य काफी बढ़ गये। व्यापारियों ने राजकीय नियन्त्रण (State Control) तथा अधिक कर प्रदान (paying high taxes) का खुले-आम विरोध किया। सम्राट द्वारा प्रचलित सिक्कों के जाली सिक्के बनने लगे। क्रमशः राज दरबार में स्त्रियों का प्रभाव बढ़ने लगा। दुर्बल पुनः शक्तिशालियों के द्वारा दबाये जाने लगे। सारांश में सम्राट वु-ती की मृत्यु के बाद ही उसके राज्य में तमाम गड़बड़ियाँ फैल गयीं।

सम्राट वांग-माँग (५ ई० सदी से २५ ई० सदी)

सम्राट वु-ती की मृत्यु के ८४ वर्ष के पश्चात् हान-राज-वंश में एक और सुधारवादी सम्राट पैदा हुआ, जिसका नाम था वाँग-माँग। यह सम्राट बड़ा सीधा-सादा जीवनयापन करने वाला था। यह स्वयं विद्वान था और साहित्य तथा कला को उसने खूब प्रोत्साहन दिया। राजनीतिज्ञों से यह हमेशा दूर ही रहता था। इसके साथी अधिकतर नामी साहित्यिक एवं दार्शनिक थे।

सम्राट वाँग-माँग ने भी सम्राट वु-ती की भाँति कई सुधार किये। इन्होंने अपने राज्य में गुलामी-प्रथा को बन्द करवा दिया, जागीरदारी तथा जमींदारी प्रथा को समाप्त किया, राज्य की समस्त भूमि का राष्ट्रीयकरण किया और उने समस्त किसानों में बाँट दिया। साथ ही उसने किसी को भी जमीन खरीदने या बेचने की मनाही कर दी। नमक और लोहे पर पूर्ववत् राष्ट्र का नियंत्रण जारी रहा। राज्य की सभी खानें सरकार के अधिकार में आ गयीं और शराब के उत्पादन तथा बिक्री पर भी सरकार का ठेका कायम रहा। सम्राट वु-ती की भाँति, इस सम्राट ने भी वस्तुओं के मूल्य निर्धारित करते हुए किसान तथा ग्राहकों (Consumers) की, बड़े-बड़े व्यापारियों के हाथों से रक्षा की।

खाद्य-समस्या को हल करने के लिए, राज्य की ओर से गल्ले एवं भूमि-जात वस्तुओं (Agricultural products) को खरीदने का उद्योग किया गया तब वे काफी मात्रा में सुलभ होते थे। जब उन वस्तुओं की कमी पड़ती, तब सरकारी गोदाम से जनता के हाथ बेंचा जाता। गरीब जनता की आर्थिक अवस्था सुधारने के लिए बहुत कम सूद पर राज्य की ओर से ऋण दिया जाता था, ताकि उस धन को वे किसी उद्योग-धन्धे में लगा सकें।

हान-वंश का पतन

परन्तु शायद इतने दिनों के बाद भी चीनी जनता एवं समाज सम्राट वाँग-माँग के इस समाजवादी सुधार तथा व्यवस्था को मानने के लिए तैयार न था। क्योंकि इतने व्यवस्थित नियंत्रण के बावजूद भी सामाजिक दुर्व्यवस्था (Social disorders) में वृद्धि होने लगी। अपितु बाढ़ और अकाल के कारण सम्राट की सभी सुधारवादी योजनाएँ असफल हुईं।

इसी बीच में आंतरिक एवं बाहरी राजनैतिक गड़बड़ी के कारण सम्राट अपनी स्थिति को और भी कायम न रख सका। विरोधी दलों ने सम्राट के विरुद्ध षड्यन्त्र करना प्रारम्भ किया एवं बर्बर हूणों ने उत्तरी प्रान्तों में बारंबार आक्रमण करना शुरू कर दिया। शीघ्र ही राज्य में विद्रोह प्रारम्भ हो गये एवं चीन के धनी 'लू' परिवार (Rich Lu-family) ने इस विद्रोह का नेतृत्व करते हुए शीघ्र ही राजधानी चाँग-आन पर अधिकार स्थापित कर लिया, उदार सम्राट वाँग-माँग को मार डाला एवं उसके सुधारों को रद्द कर दिया।

इसके बाद हान-वंश में कई दुर्बल सम्राट पैदा हुए, जिनके पश्चात् साम्राज्य पुनः भिन्न-भिन्न राज्यों में बँट गया। इस समय तातार-जाति के आक्रमण (२००–४०० ई० सदी) से चीनी जनता की दुर्दशा और बढ़ गयी। परन्तु चीनी संस्कृति का क्रम जारी रहा और शीघ्र ही आक्रमणकारी तातार

जाति का मिश्रण, चीनी जनता से हो गया, जिससे चीनी सभ्यता तथा संस्कृति की प्रगति अपने चरम उत्कर्ष एवं पराकाष्ठा को पहुँच गयी। इसके बाद पुन: ताँग-वंश (Tang-Dynesty) के नेतृत्व में चीन में एकता की स्थापना हुई और एक संगठित शक्तिशाली चीनी साम्राज्य कायम हुआ।

तांग-वंश का गौरव-काल (६१८ ई० स०—९०५ ई० स०)

तांग-वंश की नींव डालने वाले, ली-यूआन या ताई-सू (Li-Yuan or Tai-Tsu) थे। तांग-वंश की दो राजधानियाँ थीं—पहली लो-यांग (पूर्व में) और दूसरी चांग-आन (पश्चिम में)।

सम्राट् ताई-सुंग का प्रारम्भिक जीवन

इस वंश में कई महान् सम्राट् हुए जिनमें सर्वप्रथम उल्लेखनीय हैं सम्राट् ताई-सुंग, जिन्होंने ६२७ ई० सदी से ६५० ई० सदी तक राज्य किया।

सम्राट् ताई-सुंग (Tai-Sung) २१ वर्ष की उम्र में अपने पिता ताई-सू (या काओत्सू) के बाद चीन का सम्राट् बना। कहा जाता है कि अपने दस भाइयों की हत्या करके ही यह चीन का सम्राट् बन सका।

गद्दी पर बैठने के उपरान्त सम्राट् ताई-सुंग (ली-शीह-मीन) ने हूणों को मार भगाया और विजित प्रान्तों को फिर से जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया। तुर्किस्तान की छोटी-छोटी रियासतों ने भी सम्राट् की प्रभुता स्वीकार कर ली एवं तुर्की जातियों को सम्राट् ने पूर्णत: दबा दिया।

सम्राट् ताई-सुंग का व्यक्तिगत जीवन एवं सुधार तथा कृतियाँ

इस प्रकार देश में शान्ति स्थापित करते हुए, सम्राट् को अब अपने राज्य की उन्नति के लिए अवसर प्राप्त हुआ। पश्चिमी राजधानी चांग-यान में लौटकर सम्राट् ने शान्तिपूर्ण नीति का पालन करना प्रारम्भ किया। उसने दार्शनिक कन्फूशियस के महान् ग्रन्थों का अध्ययन शुरू किया और भोग-विलास से मुँह मोड़ लिया—यहाँ तक कि जो ३००० स्त्रियाँ उसके मनोरंजन के लिए भेजी गयी थीं, उन्हें भी सम्राट् ने लौटा दिया। देश में अपराध-दमन के लिए भी सम्राट् ने उदार-नीति का अवलम्बन किया। जब उसके मन्त्रियों ने अपराध-दमन के लिए उससे कठिन नियम तथा कानून प्रवर्तित करने के लिए अनुरोध किया तब उसने उत्तर दिया कि, 'अगर मैं खर्चे कम कर दूँ, कर का बोझा हल्का कर दूँ, सिर्फ ईमानदार अफसरों को नियुक्त करूँ ताकि लोगों के पास पहनने के काफी कपड़े हो जाएँ, तो इससे अपने आप डकैती बन्द हो जायेगी, जो कि कठोर दण्ड से भी नहीं हो सकती।'

सम्राट् की इस उक्ति से ही पता चल जाता है कि राज्य-शासन की मूल-

नीति कैसी होनी चाहिए, इसकी उचित धारणा उसे थी। वह समझता था कि आर्थिक समस्याओं को हल करने से तथा कर (tax) कम कर देने से ही जनता के अधिकांश लोग अपराध करने से विमुख हो जाएँगे—केवल कठिन दण्ड देकर ही इन अपराधों का दूरीकरण नहीं हो सकता है। आधुनिक जनतंत्रीय शासन-प्रणाली में भी ऐसे उदार विचार के शासक एवं नेता विरल हैं, इसमें सन्देह नहीं।

सम्राट् ताई-सुंग के जेल-सम्बन्धी सुधार

एक बार सम्राट् ने चांग-आन की राजकीय-जेल का परिदर्शन किया। वहाँ उसने २०० ऐसे कैदी देखे जिन्हें मृत्युदण्ड मिल चुका था। सम्राट् ने उन्हें जेल के बाहर निकाल कर खेतों में काम करने के लिए भेजा और उनसे वचन ले लिया कि वे सब काम करने के पश्चात् अपने आप लौट आवेंगे। जब शाम को वे सभी कैदी लौट आये तो सम्राट् इतना सन्तुष्ट हुआ कि उन्होंने सब कैदियों को रिहा कर दिया। तब से सम्राट् ने यह नियम बना दिया कि कोई भी सम्राट् मृत्युदण्ड देने के पहले तीन दिन तक उपवास अवश्य करे।

सम्राट् के आर्थिक सुधार तथा नीति

सम्राट् ने राजधानी चाँग-आन को इतना सुन्दर बनाया कि विदेशों से यात्री उसे देखने के लिए आने लगे। सम्राट् ने सभी धार्मिक सम्प्रदायों को अपनी राजधानी में खुले-आम अपना धर्म प्रचार करने की स्वतन्त्रता दे दी। भारतवर्ष से बौद्ध-भिक्षु इसी समय चीन में आये और चीनी बौद्ध-भिक्षु ह्वेन-स्वांग इसी समय भारत-भ्रमण से चीन लौट आया (६४५ ई० स०) भारतीय इतिहास के विद्यार्थी जानते हैं कि उस समय सम्राट् हर्ष, भारतवर्ष में राज्य कर रहे थे। भिक्षु ह्वेन-स्वांग ने अपने यात्रा-काल में ७५ बौद्ध-ग्रन्थों का अनुवाद किया था (वह नालन्दा विश्वविद्यालय का छात्र भी ५ वर्ष रहा) जिनको १३३५ खण्डों में बाँटा गया। महायान-बौद्ध-धर्म का प्रचार चीन में, ह्वेन-स्वांग ने ही किया था।

नस्तूरी ईसाई सम्प्रदाय के धार्मिक-नेता, 'आ-लो-पेन' (चीनी-नाम) को भी राजधानी में स्वतन्त्रतापूर्वक अपने धर्म एवं मत का प्रचार करने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

इस समय ताओ-धर्म का भी खुब प्रचार हुआ क्योंकि किंवदन्ती के अनुसार दार्शनिक लाओत्जे या लाओत्सू, तांग-वंश के पूर्वज माने जाने लगे। परन्तु इस समय ताओ-धर्म पर बौद्ध-धर्म का काफी प्रभाव पड़ चुका था।

सम्राट् ताई-सूंग की उदार धार्मिक-नीति की तुलना भारतीय सम्राट् महान् अकबर से की जा सकती है जो भारत के भिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के

नेताओं को अपनी राजधानी आगरा तथा फतेहपुर सीकरी में आमन्त्रित कर इबादतखाने में सभी की धार्मिक चर्चाओं तथा वादानुवादों को सुनने में काफी दिलचस्पी लेता था। सम्राट् अकबर की भाँति, सम्राट् ताई-सुंग ने भी अन्य धार्मिक सम्प्रदायों के मन्दिरों को कर से मुक्त कर दिया। सम्राट् ताई-सूंग की इस उदार धार्मिक-नीति की प्रशंसा हमें इसलिए और करनी पड़ती है कि तत्कालीन यूरोपीय देशों में भयंकर दरिद्रता (poverty) का राज्य था, एवं मानसिक अंधकार में यूरोप निवासी डूबे हुए थे। साथ ही, आंतरिक धार्मिक युद्धों के कारण स्थिति और भी संकटमय हो गयी थी। अतः तमसावृत यूरोप की तुलना में चीनी सम्राट् ताई सूंग की उदार धार्मिकनीति निश्चय ही विश्व-संस्कृति की प्रगति में एक उज्ज्वल आलोक-स्तम्भ की भाँति है।

सम्राट् स्वयं कन्फूशियस धर्म का पालन करने वाला था। कहा जाता है कि उसकी मृत्यु पर समस्त राष्ट्र ने गम्भीर शोक प्रकट किया, यहाँ तक कि विदेशी राजदूतों ने भी उसके शवाधार पर अपना खून छिड़क कर, उसके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की।

सम्राट् ताई-सूंग के शासन-काल में चीन की भौतिक उन्नति

सम्राट् ताई-सूंग के ५० वर्ष के शासन-काल में, चीन में शान्ति एवं सुव्यवस्था की स्थापना होने के कारण कला, साहित्य तथा संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में प्रभूत उन्नति हुई। देश में कृषि की उन्नति होने से चावल तथा गल्ला काफी पैदा होने लगा एवं बाहरी मुल्कों में चावल, गल्ला, रेशम तथा मसाले भेजे जाने लगे। इस प्रकार चीनी जनता के समृद्धिशाली होने के कारण जनता में विलास-द्रव्य (Luxurious goods) का व्यवहार अधिकाधिक बढ़ गया। चीन की झीलों में सुन्दर रंग-विरंगी नावें दिखलायी पड़ने लगीं और लोग अधिकाधिक जल-विहार का आनन्द लेने लगे। चीन के जहाज व्यापार के लिए भारत-महासागर तथा फारस की खाड़ी के सुदूर बन्दरगाहों में आने-जाने लगे। इस प्रकार विदेशी व्यापार की खूब उन्नति हुई। लोग-बाग अच्छे-अच्छे घरों में रहने, अच्छा भोजन करने तथा अच्छे कपड़े पहनने लगे। कहा जाता है कि इस समय जब यूरोप में रेशम का मूल्य सोने की तरह था, चीन के लोग रेशम तथा रेशमी कपड़ों का आम-इस्तेमाल करते थे। उस समय चीन में रोएँदार कोट (Fur coats) का प्रयोग लोग आधुनिक युग के न्यू-यार्क (अमेरिकी राजधानी) के निवासियों से कहीं अधिक करते थे।

कला तथा साहित्य की उन्नति

मूर्ति-कला में भी इस युग में काफी उन्नति हुई। लालमणि की मूर्तियाँ बनायी गयीं और मोतियों के शवाधार बनाये गये।

इस युग में सबसे अधिक प्रगति साहित्य, (विशेषकर कविता) में हुई। कहा जाता है कि सम्राट ताई-सुंग ने (एवं परवर्त्ती सम्राटों ने भी) कवि तथा चित्रकारों को राज्य में ऊँचे पद दिये। इस युग में साहित्य, चित्रकला एवं रंग-मंच की कैसी उन्नति हुई, इसका विस्तृत विवरण आगे दिया जाता है।

सम्राट मींग-हुआंग (७१३ ई० सदी ७५६ ई० स०)

सम्राट ताई-सूंग के पश्चात् ७१३ सदी में, तांग-वंश का अन्यतम महान् सम्राट मींग हुआंग, चीन की गद्दी पर बैठा। अपनी विशेष बुद्धि एवं प्रखरता के लिए इन्हें 'Brilliant Emperor' कहा जाता है। ये महान् कवि भी थे, और साथ ही महान् योद्धा—इन्होंने दूर-दूर के प्रान्तों को जीता, तुर्की, फारस तथा समरकन्द से जबर्दस्ती कर (tribute) वसूल किए। इन्होंने शासन में कई सुधार किए, मृत्युदंड (Capital punishment) का बहिष्कार किया, एवं दरबार तथा जेल के शासन-प्रबन्ध में काफी सुधार किए।

सम्राट मींग-हुआंग के चरित्र में, विरोधी भावनाओं का समावेश दृष्टिचर होता है। इनके चरित्र की विशेषताओं में एक का उल्लेख ऊपर आ चुका है। दूसरी विशेषता इनकी यह थी, कि कवि, चित्रकार, तथा विद्वानों के प्रेमी एवं पृष्ठपोषक होते हुए भी इन्होंने प्रजाओं से, बड़ी सख्ती से कर वसूल किया।

सम्राट ने अपने शासन-काल की प्रारंभिक अवस्था में, रेशम की फैक्ट्रियों को बन्द करवा दिया और राजमहल की स्त्रियों को रेशमी-वस्त्र पहनने की मनाही कर दी। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि जीवन के अन्तिम दिनों में ये स्वयं भोग-विलास में फँस गये, और याँग-क्वी-फाई नामक एक रखैल के प्रेम में राज-कार्य भी त्याग दिया। इस स्त्री के प्रभाव में आकर, सम्राट ने, उसके भाई, यांग-कुओ-चुंग के हाथ राज-कार्य छोड़ दिया। यह व्यक्ति शैतान एवं दुष्ट प्रकृति का था। इसके अत्याचार से प्रजा उत्तेजित हो गयी और विद्रोह के लक्षण दिखायी पड़ने लगे।

आन-लू-शान का विद्रोह (७५५ ई० स०)

आन-लू-शान, सम्राट के दरबार का एक तातार दरबारी था। सम्राट मींग-हुआंग ने सन्तुष्ट होकर उसे, उत्तरी प्रान्त का शासक बना दिया था। उसने वहीं पर, अकस्मात् विद्रोह का झंडा खड़ा किया, और राजधानी चाँग-यान पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण के कारण, काफी लोग हताहत हुए। सम्राट राजधानी छोड़कर भागा, परन्तु रास्ते में उसके रक्षकदल ने भी विद्रोह कर दिया और सम्राट की आँखों के सामने, उसकी प्रिय रखैल, यांग-क्वी-फी, उसके भाई यांग-कुओ-चुंग एवं उसके ५ परिवारों की हत्या कर

दी। परन्तु रक्षकदल के सिपाही राजभक्त थे, नहीं तो, सम्राट के प्राण भी इस मौके पर न बचते।

परन्तु आन-लू-शान का विद्रोह असफल हुआ। वह स्वयं अपने पुत्र के हाथ मारा गया। पुत्र को फिर किसी सेनापति ने मार डाला, जिसकी हत्या अपने ही पुत्र के हाथों हुई। अतः सन् ७६२ ई० स० में, सम्राट मींग-हुआंग, पुनः राजधानी लौट आया, और लोगों ने यह देखकर कि उसकी रखैल एवं उसका अत्याचारी भाई, सम्राट के साथ इस बार नहीं है, सम्राट का सहर्ष स्वागत किया। परन्तु कुछ ही महीनों के पश्चात् सम्राट की मृत्यु हो गयी।

तांग-युग में साहित्यिक उन्नति

तांग-युग, चीनी इतिहास में, गौरव-काल माना जाता है। तांग सम्राटों के सुशासन तथा सुव्यवस्था के कारण, चीन में उद्योग-धन्धों की श्रीवृद्धि हुई। साथ ही तांग-सम्राटों के विद्या तथा साहित्य प्रेमी होने के कारण, इस युग में साहित्य, इतिहास तथा कला की अभूतपूर्व उन्नति हुई। तांग-युग में, चीन, विश्व में सबसे महान्, शक्तिशाली, उदार मतावलम्बी, प्रगतिशील तथा सर्वोत्तम-शासित साम्राज्य था।

कवियों का युग तथा तांग-युग में कविता की उन्नति

तांग-युग को 'कवियों का युग' (Age of the Poets) भी कहा जाता है। अठारहवीं शताब्दी में, जब माञ्चु-सम्राटों ने, तांग-युग के कवियों की कविताओं का संग्रह (Collection) करवाया, तो देखा गया कि, उस युग के, २,३०० कवियों की, ४८,००० कविताओं का संग्रह, ३० खंडों में किया गया है। इसी से अनुमान हो सकता है कि वस्तुतः ताँग-युग में कवियों का समादर राज-दरबार में हुआ, एवं उनकी सामूहिक प्रगति हुई। तांग-राजकीय पाठागार (Royal library) में भिन्न-भिन्न विषयों पर ५४,००० पुस्तकें संगृहीत थीं।

इस युग का सबसे महान् कवि था, 'ली-पो' (Li-Po)। कहा जाता है कि एक बार कोरिया (Korea) के सम्राट ने, चीन पर आक्रमण करने की धमकी देते हुए, सम्राट मींग-हुयांग को पत्र लिखा। परन्तु सम्राट के दरबारी तथा मन्त्री, किसी को कोरिया की भाषा तथा लिपि की जानकारी न होने पर, उस पत्र का पाठोद्धार न हो सका। अन्ततोगत्वा, मन्त्री हो-यी चांग के परामर्श से, कवि लीपो बुलाया गया। वह दरबार में आया, कोरिया सम्राट-प्रेरित पत्र का पाठोद्धार किया, एवं उसका उचित उत्तर भी लिखवा दिया। इस उत्तर को पाकर कोरिया-सम्राट इतना भयभीत हुआ कि उसने फौरन बहुमूल्य उपहार आदि भेजकर, सम्राट मींग-हुआंग से सन्धि कर ली। सम्राट ने उस

उपहार का एक भारी अंश कवि ली-पो के पास भेजवा दिया, जिसने उसका उपयोग केवल मात्र शराब पीने में ही कर डाला।

कवि ली बचपन से ही होनहार था। बचपन में ही उसने महान् दार्शनिक कन्फूशियस के ग्रंथों का अध्ययन किया और १२ वर्ष की उम्र में, घर छोड़ कर, पहाड़ों में चला गया। परन्तु उसने साहित्य-साधना के साथ-साथ शरीर-साधना भी की और काफी सुपुष्ट एवं बलवान पुरुष हो गया, जैसा कि उसने स्वयं अपनी प्रशंसा में कहा, "यद्यपि मैं ७ फुट से कम ऊँचाई का हूँ, तथापि दस हजार व्यक्तियों का मुकाबला कर सकता हूँ।" वह तलवार चलाना भी काफी अच्छा जानता था।

दाम्पत्य-जीवन में कवि ली-पो सुखी न हो सका। धन की कमी उसे परेशान करती थी, परन्तु कुछ हाथ में आते ही वह उसे शराब पीने में खर्च कर डालता था। इसी तरह रोजी-रोजगार की खोज में घूमते-घूमते, उसकी दोस्ती, कवि तू-फू से हो गयी जो तांग-युग का अन्यतम महान् कवि था। दोनों में प्रगाढ़ मित्रता हो गयी और दोनों ने साथ ही राजधानी चांग-आन में पैर रक्खा। वहां ली-पो की कविता से आकृष्ट होकर मंत्री 'हो-ची-चांग' ने उसका यथेष्ट समादर किया और उसे शराब पीने के लिए बराबर धन देता रहा। कवि ली-पो सम्राट मींग हुआंग की रखैल-प्रेमिका, यांग-क्वी-फाई की प्रशंसा में कविता लिखकर, सम्राट का भी प्रिय भाजन हो गया। परन्तु किसी ने, सम्राट की प्रेमिका से यह शिकायत की कि कवि ने वस्तुतः कविता के द्वारा उसकी हँसी उड़ाई है। यांग-क्वी-फाई ने सम्राट से उल्टी शिकायत की और सम्राट ने उसे एक मुष्टि धन देते हुए, राजधानी छोड़ने का आदेश दिया।

इसके बाद कवि ली-पो के अन्तिम दिवस बहुत ही दर्दनाक हैं। बहुत दिनों तक उसे भिन्न-भिन्न शहरों तथा राज्यों में घूमना पड़ा। दर-दर ठोकर खाते हुए, भाग्य की विडम्बना से, आन-लू-शान के विद्रोह के समय उसे जेल-जीवन बिताना पड़ा। परन्तु सेनापति कुओ-त्सी (Kuo-Tsi-1)—जिसने आन-लू-शान का विद्रोह दबाया था—की दया से वह छूट गया और फिर से स्वतंत्र जीवन को प्राप्त हुआ। परन्तु तीन वर्ष के पश्चात् ही उसकी मृत्यु, नदी में डूबकर, हो गयी। इस प्रकार एक महान् कवि के जीवन का अन्त हो गया।

कवि ली-पो की कविताओं का संग्रह ३० पुस्तकों (या खंडों) में संगृहीत है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि निश्चय ही वह इस युग का सबसे श्रेष्ठ कवि था। कवि ली-पो की तुलना, अँग्रेजी कवि 'कीट्स' से की जाती है, जिसकी कविता में भी वही प्रेम, वही दर्द, वही मिठास पायी जाती है जैसा कि कवि ली-पो की कविता में।

इस युग का अन्यतम महान् कवि है तु-फु जो कवि ली-पो का भारी मित्र

था परन्तु प्रतिष्ठा प्राप्ति के लिए दोनों की मित्रता छिन्न हो गयी। कवि तु-फु, प्रतियोगितामूलक परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के लिए, राजधानी चांग-आन आया था परन्तु सफल न हो सका। परन्तु उसकी कुछ कविताओं को पढ़कर, सम्राट मींग-हुआंग ने प्रसन्न होकर, उसे राजप्रासाद में बुलवाकर उसकी पुनः परीक्षा ली एवं उसे सफल' बनाते हुए, सेनापति जोआ (Tsoa) के सेक्रेटरी के पद पर उसकी नियुक्ति कर दी। कवि ली-पो की भाँति उसने भी सम्राट की रखैल प्रेमिका की प्रशंसा में कवितायें बनायीं। परन्तु विद्रोह के समय, चीन की दुर्दशा ने उसके दिल को हिला दिया। दो वर्ष तक वह अपने परिवार समेत इधर-उधर भटकता रहा और इतना गरीब हो गया कि खाने के पैसे भी उसके पास न रहे। सौभाग्यवश सेनापति येन-वु (Yen-Wu) की दया से वह बच गया, जिसने उसे एक झरने के किनारे, कुटीर बनवा दिया और उसे अपना सेक्रेटरी बना लिया। फिर सेनापति येन-वु ने उसे राजधानी में 'सेन्सर' (Censor) का ऊँचा पद दिया। परन्तु सेनापति की अकस्मात् मृत्यु हो जाने से, वह फिर गृहहीन तथा धनहीन (homeless and penniless) हो गया। इस प्रकार ५९ वर्ष की ही उम्र में वृद्धावस्था को प्राप्त होकर, उसने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया और 'हुयेन पर्वत' स्थित बौद्ध-मन्दिर दर्शन के लिए यात्रा की। वहाँ पर किसी जिलाधीश से उसकी भेंट हो गयी—वह उसे घर ले गया और पर्याप्त भोजन दिया। बहुत दिनों के बाद वैसा भोजन पाकर, कवि ने जी भर भोजन किया और अपने अतिथि के अनुरोध पर पुनः अपनी कविता को गाने की चेष्टा की—इस प्रयास में विफल होकर गिर पड़ा और दूसरे दिन परलोक चल दिया।

इस युग के अन्यान्य कवियों में ताओ-चीयेन (Tao-Chien) का नाम भी उल्लेखनीय है। इसे भी उच्च सरकारी पद मिला परन्तु परेशान होकर उसने उसे त्याग दिया और जंगलों में चला गया जहाँ उसे 'अमर-जीवन की प्राप्ति तथा सुरा का गम्भीर प्रभाव' मालूम करने का अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ। वहीं पर उसने प्रकृति की शोभा निरीक्षण करते हुए कविताएँ लिखीं जिन्हें बाद में चीन के चित्रकारों ने रेशम पर अंकित किया। इस प्रकार ताओ-चीयेन की कविताओं ने, 'प्राकृतिक-चित्र-कला' (Painting of natural sceneries) को जन्म दिया।

इस युग का चतुर्थ महान् कवि था, पो-चू-ई (Po-Chu-i)। इसके घर में लक्ष्मी तथा सरस्वती दोनों विद्यमान थीं। अन्य कवियों की भाँति इसे दरिद्रता (poverty) ने नहीं सताया क्योंकि इसने जीवन में इतनी उन्नति की कि प्रथम तो हाँगचौ (Hangchow) बन्दरगाह का शासक और फिर युद्ध-संसद का सभापति (President of the Board of War) के पद पर

अधिष्ठित हुआ परन्तु उच्च पद ने, इसकी साधना में कोई बाधा न डाली—क्योंकि ४००० कविताएँ इसने अपने जीवन-काल में लिखीं। इसकी कविता इतनी सरल होती थी कि देहाती भी बड़ी आसानी से समझ सकते थे। कहा जाता है कि, स्कूल तथा मंदिरों की दीवालों पर तथा जहाजों के केबिन के अन्दर भी, उसकी कविताएँ लिखी जाती थीं। नाचनेवाली तथा गाने वाली स्त्रियाँ भी उसकी कविता की बड़ी चाव से आवृत्ति (recite) करती थीं। ७२ वर्ष की उम्र में इस महान् कवि की मृत्यु हुई।

गद्य-साहित्य, इतिहास, उपन्यास

कविता के अलावा गद्य-साहित्य, इतिहास तथा उपन्यास आदि की भी पर्याप्त उन्नति इस युग में हुई। सम्राट की आज्ञा से, वी-पाओ (Wei Pao) ने कई हस्तलिपियों (manuscripts) के सहारे, एक इतिहास-पुस्तक लिखी (Canon of History) जो कि चीन के '१२ प्रधान साहित्य' में गिनी जाने लगी। तु-यु (Tu-Yu) नामक एक अन्य लेखक ने, एक 'ऐतिहासिक ऐनसाईक्लोपिडिया' (Historical Encyclopedia) लिखा जो अपने ढंग का प्रथम था। इस पुस्तक का नाम था टुंग-तीयेन (Tung-Tien)[1]

गद्य-साहित्य में, विशेषकर प्रबन्ध-साहित्य में प्रसिद्ध प्रबन्ध लेखक हान-यू (७६८-८२५ ई० स०) ने, एक नवीन प्रबन्ध-शैली का अवतरण किया, जो परवर्त्ती लेखकों के लिए आदर्श बन गयी। उसे राज्य-सरकार में ऊँचा पद भी मिला परन्तु बौद्ध-धर्म का विरोध करने के कारण उसे कुआँग-तुंग प्रान्त में निर्वासन दण्ड दिया गया। उस प्रांत में असभ्य बर्बरों का निवास था परन्तु हान-यू ने उन्हें पढ़ना-लिखाना सिखाकर थोड़े ही दिनों में सभ्य बना दिया। अन्ततोगत्वा सम्राट ने उसे राजधानी वापस बुलवा लिया और अंतिम जीवन में उसे काफी प्रतिष्ठा मिली। मृत्यु के पश्चात्, उसका स्मृति-फलक, कन्फूशियस के मंदिर में, श्रद्धापूर्वक रखा गया।

---

१. चीन के ऐतिहासिकों में जुमा-चीयेन (Szuma-Chien) का नाम (जो सर्वप्रथम हान-युग में पैदा हुआ था) ऊपर आ चुका है। जुमाचीयेन ने, प्राचीन ऐतिहासिक पुस्तक शु-चींग (कन्फूशियस द्वारा लिखा गया था) तथा उसका भाष्य जो-चुआन (Tso-Chuan) जो सौ वर्ष पश्चात् लिखा गया—तथा 'वी' राजवंश के किसी राजा की कब्र में पाया गया 'ऐतिहासिक घटनाओं का संग्रह (Annals of the Bamboo books) आदि को मिलाकर प्रथम तथ्यपूर्ण चीन का इतिहास, बांस की तख्तियों पर, नेजे की कलम से लिखकर, हान सम्राट वु-ती को भेंट किया। वस्तुतः वैज्ञानिक ढंग से, चीन का प्रथम ऐतिहासिक या इतिहास-लेखक जुमा-चीयेन (Szuma-Chien) ही था।

तांग-युग में रंगमंच की उन्नति

तांग-काल में नाटक तथा रंगमंच की भी विशेष उन्नति हुई। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि कला तथा साहित्य से, चीनी नाटक एवं रंगमंच का कोई सम्पर्क या सम्बन्ध न था।

वस्तुत: चीनी नाटक का प्रारम्भ चाऊ-वंश के समय से ही माना जाता है। परन्तु उस समय केवल धार्मिक उत्सवों के मौके पर विशेष नृत्यादि होते थे। परन्तु इन नृत्यों में अश्लीलता अधिक होने के कारण बाद में ये 'धार्मिक-नृत्य' बन्द कर दिए गए। यहीं से जन-प्रिय नाटक का प्रारम्भ होता है।

तांग-सम्राट मींग-हुयांग जैसा कवित' एवं कवि-प्रेमी था, वैसा ही नाटक एवं रंगमंच का भी। उसी की पृष्ठपोषकता में एक नाटच दल निर्माण हुआ, जिसमें स्त्री तथा पुरुष दोनों सम्मिलित थे।

परन्तु चीनी रंगमंच एवं नाटक की विशेष उन्नति शुंग-काल तथा मंगोल काल में हुई। शुंग सम्राटों के समय, १०३१ ई० सदी में, कुंग-ताओ-फू, राज-दूत के रूप में, मंगोल-कितान जाति के पास भेजे गये। वहीं पर उसने प्रथम नाटक देखा—जिसमें विदूषक (buffoon) ने कन्फूशियस का पार्ट अदा किया। कुंग-ताओ-फू, कन्फूशियस का ही वंशधर था, अत: वह नाराज होकर नाटच-शाला के बाहर चला आया।

परन्तु कुंग-ताओ-फू तथा अन्य चीनी यात्रियों ने, जो मंगोल जाति के सम्पर्क में आये थे-चीन लौटकर मंगोल जाति के द्वारा खेले जानेवाले नाटक का खूब प्रचार चीन में किया। इसी तरह मंगोल जाति के ही कारण, उपन्यास (novel) का प्रचार भी चीन में हुआ। जब मंगोल सम्राट कुबलाई खाँ (१२६९ ई० स०-१२९५ ई० स०) चीन का शासक बना, तब चीनी नाटक एवं रंगमंच की और भी अधिक उन्नति हुई। इन्हीं के समय में चीनी थियेटर का रूपरंग एक राष्ट्रीय संस्था के रूप में स्थापित हुआ।

चीन में संगीत-कला की भी पर्याप्त उन्नति हुई। कहा जाता है कि किंव-दन्तीय सम्राट फू-सी के समय चीन में संगीत का जन्म हुआ। 'ली-ची' नामक पुस्तक में, संगीत के ऊपर कई भाष्य लिखे गये। कालान्तर में ग्रीको-बैक्ट्रियन तथा मंगोल जाति का प्रभाव भी चीनी संगीत पर पड़ा। नाना प्रकार के वाद्य-यंत्र जैसे बांसुरी, तुरही, ढपली, ढोलक, तम्बूरा, घंटियाँ, झुमझुमि तथा 'एगेट' (agate) एवं 'जेड' पत्थर के बने हुए प्लेट (plates), जिन्हें बजाया जाता था, आदि चीनी लोग गाने-बजाने के लिए प्रयोग करने लगे।

इस प्रकार कन्फूशियस के समय तक चीनी संगीत की काफी उन्नति हो चुकी थी। स्वयं कन्फूशियस का विश्वास था कि संगीत के बिना, सभ्यता या

संस्कृति का कायम रहना असंभव है। वह अपने विद्यार्थियों को, संगीत सीखने का उपदेश बराबर देता रहा। वह स्वयं भी संगीत-प्रेमी था।

चीनी प्रबंध-लेखक हान-यू का कहना था कि, "मनुष्य की मानसिक उदासी दूर करने के लिए ही ऋषियों ने संगीत की सृष्टि की है।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि चीनी जन-जीवन में संगीत का स्थान काफी महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली था।

अध्याय | १३

शुंग-वंश (९६० ई० स०—१२७९ ई० स०)

तांग-वंश के पतन के बाद देश में अराजकता की वृद्धि हो गयी एवं ५ छोटे-छोटे राज्यों में देश विभक्त हो गया। इस अवस्था से जिसने देश को मुक्त किया वह था वीर सैनिक 'ताई-सू,' जो शुंग-वंश का प्रतिष्ठापक था।

शुंग-काल, चीनी इतिहास में 'स्वर्ण-युग' माना जाता है क्योंकि इस समय चीन में, सभी दिशाओं में नवीन जागरण हुआ, जिससे प्रशासन व्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था, साहित्य, कला आदि सभी में अभूतपूर्व उन्नति हुई।

सम्राट ताई-सू एवं उत्तरी शुंग-वंश (९६०–११२७ ई० स०)

सम्राट ताई-सू ने अपने १६ वर्षीय शासन-काल में (९६० ई० स०-९७६ ई० स०) कई सुधार किये। राज्य-कार्य के लिए पुनः कन्फूशियन विद्वानों की नियुक्ति की, एवं प्रतियोगिता-मूलक परीक्षा के द्वारा, राज-कर्मचारियों की भर्ती की प्रथा को उसने पुनः चालू किया। जनता के आर्थिक जीवन में, समाजवादी सुधारों को प्रवर्तित करते हुए, उसने धनियों के द्वारा गरीबों के शोषण को बन्द करने का प्रयास किया।

सम्राट ताई-सू, उत्तरी शुंग-वंश का प्रतिष्ठापक था। इस वंश की राजधानी थी 'पीअेन लींग' (आधुनिक काई-फेंग)। उत्तरी शुंग-वंश का राज्यकाल ९६० ई० स० से ११२७ ई० स० तक माना जाता है।

वांग-आन शी (१०२१ ई० स० १०८६ ई० स०)

उत्तरी शुंग-वंश का राजत्व-काल, चीन के इतिहास में, केवल एक महान् व्यक्ति के लिए प्रसिद्ध है। वह व्यक्ति था वांग-आन-शी जो सम्राट शेन-शुंग (१०६८ ई० स०—१०८५ ई० स०) का प्रधान परामर्शदाता था। यह व्यक्ति बड़े ही उच्च तथा उदार विचार का था। इसने जन-जीवन के जागरण तथा उत्थान के लिए कई सुधार किए, जो वस्तुतः चिरस्मरणीय हैं। उसका कहना था कि "राज्य को व्यापार, उद्योग-धन्धे तथा कृषि आदि का पूरा

इन्तजाम अपने हाथ में लेना चाहिए, ताकि मजदूर-वर्ग की उन्नति हो एवं धनी-वर्ग उन्हें पीसकर धूल में न मिला सके।"

वांग-आन-शी के द्वारा प्रवर्तित सुधार निम्नलिखित थे :—

(१) कृषि तथा मजदूरों का सुधार

वांग-आन-शी के पहले प्रायः चीनी किसानों को, जबर्दस्ती मजदूरी करने के लिए चीनी सरकार नियुक्त करती थी, और ऐसे समय में उन्हें खेतों से हटाया जाता था जब या तो खेतों में जोताई-बोआई हो रही हो या फसल काटने का समय हो। इससे खेतीबारी का नुकसान तो होता ही था, साथ ही किसानों की फस्ल एवं मजदूरी दोनों की भयंकर हानि होती थी। वांग ने इस प्रथा को बन्द करवा दिया। केवल इतना ही नहीं, उसने सूद-खोर महाजनों से, किसानों को मुक्त किया, और राज्य की ओर से, बहुत कम सूद पर, उन्हें, ऋण दुना प्रारंभ किया, ताकि वे अपनी फस्ल आसानी से बो सकें। बेकार लोगों को उसने राज्य की ओर से, कृषि के लिए बीज तथा औजार दिये, ताकि वे खेतीबारी कर अपना घर बसा सकें—सिर्फ इस शर्त पर कि ऐसे लोग, अपनी पैदावार से, बीज, औजार आदि का मूल्य, राज्य को चुका देंगे।

वांग ने, बाढ़-नियंत्रण के लिए बड़ी-बड़ी योजनाएँ कार्यन्वित कीं जिनसे कृषि को बड़ा लाभ पहुँचा।

मजदूरों की मजदूरी तथा दैनन्दिन आवश्यकीय वस्तुओं के मूल्य नियंत्रण के लिए, उसने हर एक जिले में, बोर्ड कायम कर दिये जिससे मजदूर तथा आम-जनता को बड़ा लाभ पहुँचा।

(२) व्यापार तथा आर्थिक सुधार

वांग ने देश के व्यापार का राष्ट्रीयकरण कर दिया। उसने एक अभिनव व्यवस्था के द्वारा, राज्य की ओर से स्थानीय उत्पादित वस्तुओं (local production) को खरीदना प्रारंभ किया, जिसका कुछ अंश तो स्थानीय प्रयोग के लिए रक्खा जाता, और बाकी अंश, राज्य-स्थित अन्यान्य केन्द्रों (depot) में बिक्री के लिए भेज दिये जाते।

(३) बजट व्यवस्था का प्रवर्तन

आधुनिक शासन-व्यवस्था में, आर्थिक खर्चे के लिए, प्रतिवर्ष, सरकार की ओर से आय-व्यय का ब्यौरा, बजट के रूप में, संसद में उपस्थित किया जाता है। वस्तुतः इस व्यवस्था का प्रथम प्रवर्तक, वांग-आन-शी ही था जिसने बजट-व्यवस्था की स्थापना की। सम्पूर्ण राज्य की आमदनी एवं खर्चे का ब्यौरा, उपस्थित करने के लिए उसने एक बजट कमीशन की नियुक्ति की, एवं इस

कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार अक्षरश: राज्य के खर्चे, नियन्त्रित किये गये। इस व्यवस्था से दो लाभ हुए, प्रथम तो, बेकार खर्चे का एक बहुत बड़ा भाग, बचत के रूप में आ गया—दूसरा यह कि सरकारी कर्मचारियों की व्यक्तिगत आमदनी बन्द हो गयी और उनकी जेब (pocket) हल्की हो गई।

(४) पेंशन का प्रबन्ध

वांग ने, वृद्ध तथा बेकार एवं गरीबों के लिए पेंशन की व्यवस्था की जिससे जनता का एक बहुत बड़ा भाग दुर्दशा तथा अकाल मृत्यु के हाथ से बच गया। याद रखने योग्य है कि इस प्रकार की पेंशन-व्यवस्था पाश्चात्य सभी देशों में है।

(५) शिक्षा-संबन्धी सुधार

शिक्षा तथा परीक्षा की व्यवस्था में भारी परिवर्तन किये गये। परीक्षा में इस बात का ध्यान रक्खा गया कि परीक्षार्थियों का परिचय, वास्तविक घटनाओं से अधिक हो, न कि केवल शब्दाडम्बरों से (facts rather than words), एवं कन्फूशियस के सिद्धान्तों का अधिकाधिक प्रयोग, दैनन्दिन कार्यों में किया जाय।

स्कूलों में भी बच्चों की शिक्षा के लिए, प्रारंभिक इतिहास, भूगोल तथा अर्थशास्त्र (Political economy) की शिक्षा दी जाने लगी एवं रटने की प्रथा (rote system) को समाप्त कर दिया गया।

परन्तु वांग-आन-शी के सुधार असफल हुये। उसके कारण निम्नलिखित हैं:—

(१) यद्यपि धनियों के ऊपर कर का बोझ अधिक था, तथापि राज्य के बढ़ते हुए खर्चे के लिए, हर एक भूमि की उपज का एक भाग, मालगुजारी (revenue) के रूप में, सरकार ले लेती थी। अत: शीघ्र ही धनी और गरीब दोनों ने, अधिक कर के कारण, शिकायत करनी शुरू की।

(२) वांग ने स्थायी सेना को कम कर दिया था—परन्तु साथ ही उसने यह नियम भी बना दिया था कि जिस परिवार में एक से अधिक पुरुष होगा, उनमें से एक व्यक्ति को सरकारी सेना में अवश्य भर्ती होना पड़ेगा।

(३) वांग ने अनेक परिवारों को घोड़े रखने के लिए दिये और उनके चारे का भी बन्दोबस्त कर दिया ताकि इन घोड़ों की भलीभाँति देखभाल हो सके और युद्ध के अवसर पर ये घोड़े काम आ सकें। परन्तु युद्ध तथा विद्रोह के मौके पर वैसे परिवारों से, वांग को पर्याप्त सहायता नहीं प्राप्त हुई। अत: वांग की नीति की आलोचना होने लगी और उसकी प्रतिष्ठा जाती रही।

(४) वांग को, विशाल राज-कार्य के लिए, ईमानदार अफसर न मिल

सके। राज-कर्मचारियों में व्यभिचार फैल गया। सब अपनी निजी आमदनी के ख्याल में लगे रहे। किसी ने, जनता की भलाई पर ध्यान न दिया।

(५) रूढ़िवादी (Conservative) दल ने वांग के समाजवादी एवं जन-कल्याणकारी सुधारों का घोर विरोध किया। इस दल के नेताओं में स्वयं वांग का भाई एवं ऐतिहासिक जुया-कुआंग था। इनका कहना था कि "वही सरकार सर्वोत्तम है जो उत्पादन तथा वितरण के लिए मनुष्य की स्वाभाविक आर्थिक प्रेरणा पर विश्वास तथा निर्भर करे।"

("The best form of government was a laisse faire which would rely on the natural economic impulses of men for the production of services and goods"—Our Oriental Heritage, P. 726.)

इस प्रकार वांग के विरोधी दल ने सम्राट की पास वांग की सुधारवादी नीति की घोर आलोचना तथा तीव्र निन्दा करनी प्रारम्भ कर दी। विरोधी दल के विरोध तथा अकाल एवं बाढ़ ने मिलकर वांग का पतन द्रुत कर दिया। ऐसे मौके पर आकाश में अकस्मात् पुच्छल तारे भी दिखाई दिये और सम्राट ने इसे अपशकुन मानकर वांग को पदच्युत कर दिया, उसके सुधारों को वापस कर लिया तथा उसके शत्रुओं के हाथों में राज्य-शासन सौंप दिया। शीघ्र ही चीन की आर्थिक एवं सामाजिक अवस्था पूर्ववत् हो गयी।

उत्तरी शुंग-राज्य का पतन एवं दक्षिणी शुंगराज्य की स्थापना (११२७ ई० स०-१२७९ ई० स०)

११२२ ई० स० में असभ्य तातार जाति के आक्रमण से उत्तरी शुंग-राज्य एवं वंश का पतन हो गया। इसी वंश का एक राजकुमार भागकर दक्षिण चला गया और वहीं ११२७ ई० सदी में 'दक्षिणी शुंग-वंश' की स्थापना की। इनकी राजधानी थी लीन-आन (आधुनिक होंगचौ-Hangchow) इस वंश के शासन-काल में एक ऐतिहासिक तथा उल्लेखनीय घटना हुई, वह यह कि चीनी सेनापति यू-यून-वेन ने, तातार जाति (जिसके शासक ने अपने को 'चीन राज-वंश' का सम्राट कह कर प्रचार किया था) के विरुद्ध युद्ध में (११२६ ई० स०) सर्वप्रथम बारूद (Gun-Powder) का प्रयोग किया।

उत्तरी शुंग-वंश का अन्तिम-सम्राट हुई-सुंग (Hui-sung), जिसने ११०१ ई० स० से ११२५ सदी तक राज्य किया, स्वयं एक महान् कलाकार था। उसने राजधानी पीअेन-लीआंग (Pien-Liang) में एक कला-संस्था या आर्ट अकादेमी की स्थापना की थी जिसमें शुंग-युग के महान् कलाकारों के चित्रों की प्रदर्शनी होती एवं उन्हें सम्राट की ओर से पुरस्कार वितरण किये जाते थे। हाय सम्राट को इसकी बिल्कुल खबर न थी कि असभ्य तातार जातियों

के आक्रमण से कला की उन्नति के लिए उनका यह कलात्मक प्रयास किस प्रकार विफल होगा। बर्बर-जाति के हाथ कैद होकर सम्राट हुई-सुंग को अपना अन्तिम जीवन कारागार में ही बिताना पड़ा था।

परन्तु राजधानी की आर्ट-अकादेमी में चीनी कला एवं शिल्प की जिन सुन्दर कृतियों का संग्रह सम्राट ने किया था, वह बर्बर तातार जातियों के आक्रमण से बच गया। इन संग्रहों में हस्तलिखित पुस्तकें, चित्र (Paintings), काँसे तथा जेड (Jade) पत्थर की बनी हुई वस्तुएं आदि थीं। इस अकादेमी के अलावा बड़े-बड़े पुस्तकालय भी पीयेन-लीयांग में थे जो युद्ध में विध्वंस होने से बच गये।

जब पीयेन-लीयांग का स्थान दक्षिण में लीन-आन ने ग्रहण किया, तब भी विद्या एवं कला का विकास बन्द होने के स्थान पर और उत्तरोत्तर विकासोन्मुखी होता रहा। इस नव-जागरण में चीनी सभ्यता तथा संस्कृति ने किन-किन दिशाओं में उन्नति की, उस पर एक विहंगम दृष्टि डालना आवश्यक है।

१. छापने की कला का विकास (Art of printing)

छापने की कला के विकास के पहले कागज तथा स्याही का आविष्कार कैसे हुआ, इस पर विचार करना आवश्यक है। विश्व में चीन ही प्रथम वह सभ्य देश है, जिसने कागज तथा छापने की कला व प्रथा का आविष्कार किया। चीनी लोग छापने के लिए पहले रेशम या बाँस का प्रयोग करते थे। परन्तु रेशम महँगा था और बाँस के तख्ते भारी होते थे। दार्शनिक मोती अपनी बाँस की पुस्तकों को ढोने के लिए तीन गाड़ियों का प्रयोग करता था। सम्राट शी-हुयांग-ती को रोज एक सौ बीस पौंड वजन की 'तख्तियाँ' (State documents) उलटनी पड़ती थीं।

सन् १०५ ई० स० में (उत्तर हान-वंश) साई-लून (Tsai-Lun) नामक चीनी दर्बार के एक हिजड़े ने सम्राट को 'कागज' (paper) लिखने के लिए भेंट किया एवं उन्हें बताया कि उसने इस 'वस्तु' को पेड़ों की छाल, सन (hemp), मछली पकड़ने का जाल एवं कपड़ों के चिथड़ों (rags) से बनाया है। यह वस्तु निश्चित रूप से बाँस से हल्की और रेशम से सस्ती थी—इस पर लिखने में भी आसानी होती थी और रखने में भी। शीघ्र ही यह अभिनव आविष्कार 'कागज' जन-प्रिय हो गया।

चीन के सर्वप्राचीन 'काग़ज' के नमूने का आविष्कार, विख्यात पर्यटक एवं ऐतिहासिक सर अरेल स्टीन (Sir Auriel Stein) ने, चीनी विशाल-दीवाल के एक छिद्र (Spur) से, किया था। ये state documnets थे एवं इनका समय-काल १५० ई० स० स्थिर किया गया है। परन्तु ये कागज बिल्कुल ही चिथड़ों के बने हुए थे। चीनियों ने बाद में जिलेटीन तथा 'ग्लू'

के प्रयोग के द्वारा, और भी बढ़िया कागज बनाना शुरू किया। चीनियों से कागज बनाने की कला, अरब निवासियों ने सीखी और इनके द्वारा यह कला १३ वीं शताब्दी में युरोप पहुँची।

स्याही (Ink) बनाने की कला का पहले मिस्र के लोगों ने (पैपिरस की पत्तियों के द्वारा) आविष्कार किया था, परन्तु चीनियों ने, चिराग के काजल (lamp black) से काली स्याही एवं 'sulphide of mercury' मिलाकर लाल स्याही बनाने की कला का अविष्कार किया। इस प्रकार काली और लाल स्याही के आविष्कार से, छापने की कला का अभूतपूर्व विकास हुआ।

सिलमोहर के द्वारा हस्ताक्षर छापने की कला से ही सर्वप्रथम छापने की कला का आविष्कार हुआ। दूसरी शताब्दी में, चीन के 'छः प्रधान साहित्य' (Six classics) पत्थरों में खोदे गये, और फिर, स्याही द्वारा उनकी प्रतिलिपि ग्रहण करने की प्रथा चल पड़ी। छठवीं शताब्दी में ताओ सम्प्रदाय के पुरोहितों ने, लकड़ी के बड़े-बड़े टुकड़ों (Wooden blocks) पर मन्त्र लिखकर, लोगों को देना शुरू किया। सातवीं शताब्दी में बौद्ध पुरोहितों ने, नाना प्रकार से प्रतिलिपि (duplication method) बनाने की कला का आविष्कार किया। सबसे प्राचीन 'block–print,' संस्कृत भाषा एवं चीनी लिपि में, जापान में आविष्कार हुआ जो ७७० ई० स० का माना गया है। यह सांस्कृतिक मिलन तथा मिश्रण का एक अद्भुत उदाहरण है, इसमें सन्देह नहीं।

इस प्रकार छापी हुई (Block printed) सर्वप्राचीन चीनी पुस्तक, १९०७ में सर अरेल स्टीन ने तुंग-हुआंग गुंफा (Canes of Thousand Buddhas) में आविष्कार किया, जिसमें तिथि (मई ११,८६८ ई० स०) एवं लेखक का नाम वांग-चीये (Wang-Chieh) भी दिया हुआ है। यह एक धार्मिक पुस्तक है जिसकी छपाई वांग-चीये ने, अपने माता-पिता की यादगार में, जनता में मुफ्त वितरण के लिए की थी।

छापने की कला (Wooden block printing) का प्रचार प्रथम चीन के पश्चिमी प्रान्त जैसे जेचुआन (Szechuan) तथा तुर्किस्तान (Turkestan) में हुआ। वहाँ बौद्ध पुरोहितों एवं धर्म-प्रचारकों के द्वारा, इस कला का प्रचार एवं विकास हुआ। १० वीं शताब्दी के प्रारम्भ में, पूर्वी चीन में इस कला का प्रचार हुआ और चीन के महान साहित्य (Chinese Classics) राजकीय संरक्षण में छापे गये। इस काम में २० वर्ष लग गये और १३० खंडों में सारा साहित्य छापा गया। इससे जनता में विद्या तथा साहित्य, विशेषकर कनफूशियस के साहित्य, का बहुत प्रचार हुआ।

कागज़ के सिक्के भी इसी समय, जे चुआन प्रान्त में बनाये गये। १२९७ में, इटली के वेनिस-निवासी यात्री मार्को-पोलो ने चीन में कागजी-सिक्के

(Paper-money) के प्रचार का उल्लेख किया है। उस समय चीन की गद्दी पर महान् कुबलाई खाँ आसीन थे। १६५६ ई० स० में योरोप में इस कला (Art of making paper-money) का प्रचार हुआ। और आज तो सभी सभ्य देशों में इसका प्रचलन हो गया है। युद्ध तथा संकटकालीन अवस्था में मुद्रास्फीति (Inflation) के मूल में, ये कागज़ी सिक्के ही हैं।

परन्तु चलायमान अक्षर-छापने की प्रथा के आविष्कार में कुछ समय लग गया। चीनी लिपि की कोई निजी वर्णमाला न थी एवं उसमें ४०,००० अक्षर थे। अतः 'चलायमान-अक्षर' (movable type) प्रस्तुत करना आसान न था। १०४१ ई० स० में पी-शेंग नाम के एक व्यक्ति ने मिट्टी के चलायमान अक्षर बनाये परन्तु वह कुछ कामयाब न रहा। १४०३ ई० स० में कोरियावालों ने प्रथम धातुनिर्मित चलायमान अक्षर निर्माण किये। कोरिया के महान् सम्राट ताई-सुंग (Tai-Tsung) ने तुरन्त, काँसे के अक्षर बनाने, और राजकीय खर्चे से, साहित्य तथा अन्य पुस्तकों को छापने की आज्ञा प्रदान की।

परन्तु चीन में अधिकतर block-printing ही चलता रहा। यद्यपि इस प्रथा से, छापने में कई असुविधाएँ थीं तथापि चीनी छापेवालों ने नाना-प्रकार की पुस्तकें छापकर, जन-शिक्षा को काफी उत्साहित किया। ९९४ ई० स० से १०६३ ई० स० तक कई 'राजवंशीय इतिहास' छापे गये। लेखकों को अपने विचारों के प्रचार करने का एक अमोघ अस्त्र प्राप्त हुआ। ९७२ ई० स० में सारे बौद्धग्रंथों को छापा गया। प्राचीन साहित्य, कविता, इतिहास, शब्दकोश ज्ञानकोश इत्यादि को छापने की एक बाढ़ सी आ गयी। ९७७ ई० स० में, सम्राट ताई-सुंग की आज्ञा से, ३२ खंडों का एक 'वृहत् ज्ञान-कोश (Encyclopaedia) छापा गया। इस प्रकार छापने की कला के आविष्कार से, शुंग-काल में, शिक्षा तथा साहित्य की द्रुत प्रगति से, नवीन जागरण की लहरें, सारी चीनी जाति के हृदय को आन्दोलित करने लगीं।

कला-कौशल तथा शिल्पकला की उन्नति

शुंग काल नाना प्रकार की शिल्प कला की उन्नति के लिए प्रसिद्ध है। चीनी सदैव सौंदर्य एवं कला-प्रेमी थे। साथ ही ऐसी वस्तुओं के निर्माण में वे दक्ष थे जो उपयोगिता की दृष्टि से भी लाभकारी हों अतः सौंदर्य एवं उपयोगिता—इन दो गुणों का समावेश, चीन की शिल्पकला में परिलक्षित होता है। चीन के कलाकार और कारीगर में वस्तुतः बहुत ही कम अन्तर था—कारीगर भी कुशल शिल्पी थे। और सभी शिल्प कला, दस्तकारी का अत्युत्तम उदाहरण थी। हाथ की कारीगरी में, संभवतः, चीन का स्थान भारतवर्ष से किसी प्रकार कम नहीं है।

सुंग-काल में शिल्पकला विशेषकर दस्तकारी की काफी उन्नति हुई। लकड़ी तथा हाथी-दाँत पर सुन्दर खुदाई के काम, टोकरियाँ तथा नाना प्रकार के फर्नीचर निर्माण, जेड तथा अन्य ठोस पत्थरों को काटकर तरह-तरह की वस्तुओं का बनाना आदि सभी इस युग में अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गये। लाख (lacquer) की बनी हुई वस्तुएँ तथा काँस्य-मूर्ति की निर्माण-कला (एवं अन्यान्य कांसे की वस्तुएँ) आदि सभी इस युग के गौरव के द्योतक हैं।

(१) **लाख-शिल्पकला**—(Lacquer industry) का प्रारम्भ चाऊ-राजवंश से ही होता है। लाख एक प्रकार के पेड़ से निकला हुआ रस है, जिसे गर्म करने के बाद साफ किया जाता है और फिर सुखा लिया जाता है।[1] चीन में लकड़ी, धातु तथा चीनी मिट्टी की बनी हुई वस्तुओं पर (porcelain) लाख के कई लेप लगाकर, (lacquer coatings), फिर एक तेज औजार (जिसकी शक्ल अंग्रेजी के 'V' अक्षर की भाँति होती है) के द्वारा काटकर, उस पर नाना प्रकार की डिजाइनें बनाई जाती हैं।

लाख-शिल्पकला की प्रगति चीन में क्रमशः हुई। चाऊ-काल में इसका प्रयोग बर्तन, घोड़े की साज तथा गाड़ियों को सज्जित करने के लिए किया जाता था। दूसरी शताब्दी में वाद्य-यंत्र (musical instruments) तथा मकानों पर इसका प्रयोग होने लगा। तांग-युग में इसकी बनी हुई विविध वस्तुएँ जापान भेजी जाने लगीं एवं शुंग-काल में अरब तथा भारत जैसे दूर देशों में भी इसकी बनी हुई वस्तुएँ भेजी जाने लगीं। मींग तथा मान्चु सम्राटों के समय, सरकारी संरक्षण में बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियाँ बन गयीं एवं लाख की बनी हुई सुन्दर चीजें रोम तथा योरोप के अन्य भागों में भी भेजी जाने लगीं।

(२) **जेड-पत्थर की शिल्पकला**—भी इस युग में खूब प्रगतिशील हुई। जेडेयाईट तथा नेफ्राईट नामक दो धातुओं (minerals) को मिलाकर यह ठोस पत्थर बनाया जाता है। इस पत्थर के छोटे टुकड़े करने के लिए कभी-कभी ५० टन के दबाव (pressure) की भी आवश्यकता होती है। इसे खूब गर्म कर फिर ठण्डे पानी में भिगोने से भी बड़े टुकड़े टूट कर छोटे-छोटे टुकड़े बन जाते हैं।

यह पत्थर बिल्कुल रंगहीन होता है। चीनी शिल्पियों की विशेषता इसी में है कि वे इसमें नाना प्रकार के रंग जैसे काला, भूरा, सफेद तथा हरा इत्यादि मिला देते हैं, फिर उससे भिन्न-भिन्न आकार की वस्तुएँ बनाते हैं।

शांग युग (Shang-dynasty) से ही जेड पत्थर की बनी हुई विविध

---

१. उत्तर-प्रदेश (भारतवर्ष) के पहाड़ी इलाके में भी लाख के पेड़ पाये जाते हैं एवं लाख-उद्योग से उत्तर-प्रदेश सरकार को काफी आमदनी होती है। परन्तु इससे कोई वस्तु नहीं बनायी जाती।

चीजें बनने लगीं। उस समय का बना हुआ जेड पत्थर का मेढक (जो धार्मिक क्रियाओं में प्रयोग किया जाता था) इस कला का सर्वोत्तम उदाहरण है। दार्शनिक कन्फूशियस के समय में भी इस पत्थर की कई सुंदर वस्तुएँ बनीं। चीनी लोग सोने और चाँदी से भी इस पत्थर को कीमती समझते थे और केवल कलात्मक वस्तुओं को बनाने के लिए ही इसका प्रयोग करते थे। बड़े-बड़े विद्वानों की अँगूठियाँ भी इसी की बनी होती थीं और गले के हार जैसे आभूषण भी इसी के बनते थे। इन वस्तुओं के संग्रहकर्त्ता (collector) को कभी-कभी मुँह-माँगा दाम देकर इन्हें खरीदना पड़ता था।

(३) **काँस्य-शिल्पकला**—(Bronze Art and Industry) भी चीन की एक प्राचीनतम (oldest) शिल्पकला है। किंवदन्ती के अनुसार, सम्राट् यू (Emperor Yu) के समय में प्रथम काँसे के हाँडे (cauldron) बनाये गये। परन्तु काँसे के सबसे पुराने बर्तन (जो धार्मिक क्रियाओं में प्रयोग होते थे) होनान प्रान्त में पाये गये हैं जो शांग-युग के माने जाते हैं। चाऊ-युग के बने हुए कांसे के बर्तन जो (उत्सवादि के मौके पर प्रयोग में लाये जाते थे) अब भी न्यूयार्क की संग्रहशाला में सुरक्षित हैं। सम्राट् शीं-हुयांग-ती ने चाऊ-युग की काँसे की बनी हुई चीजों को गलाकर—५० फुट ऊँचाई की बारह विशाल मूर्तियों (Bronze statues) को बनवाया जिनमें से किसी का भी अवशेष इस समय दुष्प्राप्य (rare) है। सम्राट् शी-हुआंग-ती के पश्चात् कांसे की सुन्दर तथा उपयोगी वस्तुएँ (जिसमें घरेलू वस्तुएँ भी थीं) बनने लगीं। धीरे-धीरे इनकी संख्या इतनी अधिक हो गयी कि समस्त उपयोगी कांसे की वस्तुओं की सूची बनाने के लिए ४२ खण्ड पुस्तकें लिखनी पड़ीं। इससे प्रमाणित होता है कि चीन में उस समय कांस्य-कला की अपूर्व उन्नति एवं विकास हुआ था। हान-युग में सोने के पत्तर चढ़े हुए, अति उत्तम कांसे के बर्तन तथा पात्र (Vessels) भी बनाये गये।

शुंग-काल में इस कला की अभूतपूर्व उन्नति हुई। काँसे के बड़े-बड़े हंडे या कढ़ाव (Cauldrons), शराब के बर्तन, गिलास, हथियार, आइने (Mirrors), घंटे, ढोलक, फूलदान, छोटी-छोटी मूर्तियाँ तथा प्लेक (placques) आदि सुन्दर-सुन्दर वस्तुएँ, सभी घरों में शोभित होने लगीं। शुंग-कालीन बनी हुई काँसे की वस्तुओं में एक धूपदान है जिसका आकार भैंस का है और उस पर दार्शनिक लाओत्जे बैठे हुए हैं। इस धूपदान की ढलाई बिल्कुल कागज की तरह हल्की है। समय के प्रभाव से केवल इस पर कुछ हरापन आ गया है (जो कि हर पुरानी ताँबे, पीतल या काँसे की वस्तुओं पर आ जाता है)

परन्तु इस कला का पतन मींग सम्राटों के समय धीरे-धीरे होने लगा। यद्यपि अब भी काँसे की वस्तुएं बनती थीं परंतु उनमें सौंदर्य तथा कला का स्पष्ट अभाव था।

(४) **मूर्ति-कला**—की कोई विशेष उन्नति शुंग-युग में नहीं हुई, यद्यपि कई सुन्दर मूर्तियों का निर्माण इस युग में अवश्य हुआ। अधिकतर संत, दार्शनिक एवं जानवरों की मूर्तियों का निर्माण ही इस युग में हुआ। इन मूर्तियों में स्त्री-मूर्तियों का सर्वथा अभाव है। इससे चीनी जनता के नैतिक आदर्श तथा जीवन का पता चलता है क्योंकि मूर्ति-कला (एवं अन्य सभी कलाएँ) मानव की आंतरिक भावनाओं की द्योतक है।

चीन की सर्वप्राचीन मूर्तियों में सम्राट् शी-हुआंग-ती के द्वारा निर्माण किये गये, वही बारह काँस्य-मूर्तियाँ हैं जिनका ऊपर उल्लेख आ चुका है।

इन मूर्तियों को गलाकर किसी हान-वंशीय सम्राट् ने छोटे सिक्के बनवा डाले। हान-युग की बनी हुई मूर्तियाँ भी समय तथा युद्ध के कारण नष्ट हो गयी हैं। केवल शाण्टुंग में पाये गये, हान-सम्राटों की समाधि पर बनी हुई, उत्कीर्ण-रेखा-चित्र (relief pictures) ही इस युग के अवशेष हैं, जिनमें अधिकांश प्राकृतिक चित्र एवं जानवरों के (विशेषकर घोड़ों के) चित्र हैं। इन समाधियों में मिट्टी की छोटी-छोटी मूर्तियाँ भी पायी गयी हैं।

इस युग के लगभग निर्माण की गयी अन्यान्य मूर्तियों में 'स्नीआंग-फू-मन्दिर' (Temple of Sniang-Fu) के सामने स्थित संगमरमर पत्थर की बनी हुई शेर (tiger) की मूर्ति एवं नानकिंग की कब्रों में पाये गये 'परदार सिंह' (winged lion) की मूर्ति इस युग की मूर्ति-कला के अनुपम उदाहरण हैं। परन्तु इन मूर्तियों तथा उत्कीर्ण-रेखा-चित्रों में, असीरीय तथा ग्रीको-ब्रैक्ट्रियन कला की स्पष्ट छाप दिखलाई पड़ती हैं। यह चीन की अपनी निजी कला नहीं है।

(५) **बौद्ध मूर्ति-कला**—हान-युग में बौद्ध-धर्म ने चीन में प्रवेश किया और इस युग में बौद्ध-धर्म के प्रभाव से कई सुन्दर बुद्ध, बोधिसत्व एवं बुद्ध के शिष्य (अर्हत् या लोहान) आदि की मूर्तियाँ बनीं।

इन प्राचीन बुद्ध-मूर्तियों में तुंग-हुआंग (चीनी तुर्किस्तान) की बौद्ध-गुफा मन्दिर की मूर्तियों का (चीन के इतिहास में) प्रथम निर्माण हुआ। चीनियों ने इन्हीं मूर्तियों के अनुरूप जिन बौद्ध-मूर्तियों को बनाया, ये गान्धार-कला की बौद्ध-मूर्तियों के समान ही सुन्दर एवं सजीव मानी जाती हैं। इन मूर्तियों में शान्सी प्रान्त स्थित युन-कांग (Yuan-Kang) के गुफा-मन्दिरों की मूर्तियाँ (४९० ई० स०) उल्लेखनीय हैं। होनान प्रान्त में, लोयांग शहर के निकट बनी लुंग-मेन गुफाओं की मूर्तियाँ (Statues of Lung-men Caves) अपनी सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध हैं। लुंग-मेन गुफा के बाहर भी कई विशाल मूर्तियाँ दण्डायमान (Standing) अवस्था में पायी गयी हैं जिनमें दो मूर्तियाँ (बोधिसत्व तथा वैरोचन-बुद्ध) अपनी भव्यता के लिए अतुलनीय हैं। युन-कांग

तथा लुंग-मेन के गुफा-मन्दिर एवं बौद्ध-मूर्तियों का निर्माण, 'उत्तरी वी राजवंश' (Northern wei dynasty—386 A. D. to 534 A. D.) के समय में हुआ। ये गुफायें इस वंश की प्रथम राजधानी, ता-तुंग (Ta-Tung) के निकट स्थित हैं। इनकी परवर्त्ती राजधानी 'लो-यांग' थी।

सूई राजवंश (५८१—६१८ ई० स०) के समय बौद्ध-धर्म, कला, मूर्ति तथा मन्दिरों की और भी अधिक प्रगति हुई क्योंकि सूई सम्राट् बौद्ध-धर्म के पृष्ठपोषक थे।

इस समय की बनी बौद्ध-मूर्तियों में, यून-मेन गुफा की बोधिसत्व की मूर्ति (लगभग ६ठवीं शताब्दी) एवं शान्टुंग गुफा-मन्दिरों की दीवालों पर खोदी हुई बोधिसत्व की मूर्तियाँ विशेषकर उल्लेखनीय हैं। शेन्सी प्रान्त में प्राप्त, तांग-युग की बैठी हुई बुद्ध की प्रस्तर-मूर्ति (लगभग ६३९ ई० स० की) भी काफी प्रसिद्ध है। परवर्त्ती सम्राटों ने कई बुद्ध, बोधिसत्व तथा लोहान (संत) की मूर्तियाँ निर्माण कीं जिनमें 'कुयान-यीन'[1] की मूर्ति विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

परन्तु शुंग तथा मींग युग में, बौद्ध मूर्ति-कला का धीरे-धीरे पतन हो गया। सिर्फ मींग-सम्राटों ने अपनी कब्रों के सामने कुछ विशाल दैत्यों की मूर्तियों (stone-giant) का निर्माण करवाया और यही चीनी मूर्तिकला के अन्तिम उदाहरण हैं।

चीनी वास्तुकला—पैगोडा एवं महलों का निर्माण

चीनी वास्तुकला की विशेषता यह है कि इसमें विशाल मन्दिर एवं महलों का सर्वथा अभाव है। शुंग-कालीन वास्तुकलाविदों ने ११०३ ई० सं० में वास्तुकला (The Method of architecture) पर, आठ सुन्दर एवं सचित्र पुस्तकें लिखीं, परन्तु इन पुस्तकों में वर्णित वास्तुकला के ये उत्कृष्ट नमूने लकड़ी के बने होने के कारण, उनका अवशेष अब कहीं नहीं दिखाई पड़ता।

फ्रांस की राजधानी पैरिस (Paris) नगरी की नेशनल लाइब्रेरी में, कन्फूशियस के समय के मन्दिर तथा मकानों के कुछ चित्र हैं, जिन्हें ध्यानपूर्वक देखने से पता चलता है कि इनमें नवीनता एवं विशालता, दोनों, का अभाव है।

बौद्ध-धर्म के प्रभाव से कुछ सुन्दर मन्दिरों का निर्माण हुआ, जिनके अवशेष अब भी चीनी तुर्किस्तान में दिखाई पड़ते हैं। चीन के अन्यान्य प्रान्तों में भी तत्कालीन निर्मित बौद्ध मन्दिरों के अवशेष दिखाई पड़ते हैं। यद्यपि इन बौद्ध-मन्दिरों के तोरण द्वार (चीनी पाई लूस Pai lus) भारतीय बौद्ध-स्तूप (जैसे भारहूत कथा साँची) के ही अनुकरण में निर्माण किए गये हैं तथापि सुन्दरता की दृष्टि से वे भारतीय स्तूपों के समकक्ष नहीं कहे जा सकते। चीनी

---

१. 'कुयान-यीन' बोधिसत्व अवलोकितेश्वर का चीनी नाम है।

बौद्ध-मन्दिरों के प्रवेश द्वार पर, नाना प्रकार की वीभत्स मूर्तियां बनी हैं जिनका उद्देश्य अशुभ आत्माओं को विताड़ित करना है (Drive away evil spirits) इन बौद्ध मन्दिरों में, सबसे भव्य मन्दिर है "शायित बुद्ध-मन्दिर" (Temple of Sleeping Buddha) जो पेकिंग शहर के पास स्थित ग्रीष्म-कालीन महल (Summer palace) के पास बना हुआ है।

चीन के महलों में पैगोडा (Pagoda) सबसे उल्लेखनीय माने जाते हैं। इनका निर्माण भी बौद्ध-धर्म के कारण ही हुआ।

साधारणत: इनका निर्माण, पत्थर की नींव पर, अष्टकोणीय ईंटों के बुर्ज जैसे आकार का, होता है, जिसमें कभी-कभी, ५, ७, ९, या १३ मंजिलें भी होती हैं। ये पैगोडा[1] चीनी जनता के धार्मिक उत्सवादि के केन्द्र हैं और इस विश्वास से बनाये गये हैं कि इनके निर्माण से अशुभ आत्माएँ दूर हो जायेंगी, एवं तीव्र वायु तथा बाढ़ से लोगों की रक्षा होगी।

चीन का सबसे प्राचीन पैगोडा, सुंग-यूये-स्सू (Sung yueh ssu) स्थान पर, ५२३ ई० स० में, होनान प्रान्त के, सुंग-शान के पवित्र पहाड़ (Sacred mountain of Sung-shan) में बनाया गया है। अन्यान्य सुन्दर तथा देखने योग्य पैगोडाओं में, निम्नलिखित अधिक प्रसिद्ध हैं—

(१) ग्रीष्म-ऋतु-के-महलवाला-पैगोडा (Pagoda of the Summer Palace)

(२) पेकिंग शहर का 'जेड-पैगोडा' (Jade Pagoda)

(३) वु-ताई-शान का 'फ्लास्क पैगोडा' (Flask Pagoda)

(४) नानकिंग शहर का चीनी मिट्टी का बना हुआ पैगोडा जो Porcelain Tower के नाम से विख्यात है। इसका निर्माण-काल १४१२-१४३१ ई० स० बताया जाता है। इसकी ईंटों पर, चीनी मिट्टी का प्रलेप (Coating or facing), लगाकर इसे उज्ज्वल तथा चमकीला बनाया गया है, इसीलिए इसका नाम 'Porcelain Tower' पड़ा। १८५४ ई० स० के ताई-पिंग विद्रोह के समय यह नष्ट हो गया।

चीनी मन्दिरों में सबसे प्रसिद्ध है, पेकिंग शहर स्थित महान् दार्शनिक 'कन्फूशियस का मन्दिर' (Temple of Confucius) जिसके तोरणद्वार अलंकृत हैं। एक खुले प्रकोष्ठ (Niche) में लकड़ी के स्टैंड पर कन्फूशियस की तख्ती श्रद्धा से रक्खी गयी है (Tablet of the Soul of the Most Holy Ancestral Teacher Confucius) प्रधान वेदी पर चीन के इस महान् दार्शनिक तथा सर्वमान्य एवं सार्वजनीय शिक्षक की श्रद्धा में ये शब्द उत्सर्ग किये गये हैं, "दस हज़ार पीढ़ियों के शिक्षक एवं आदर्श"

---

१. समसंख्याएँ जैसे २, ४, ६, ८, चीन में अशुभ मानी जाती हैं।

(The Master and Model of Ten Thousand Generations)।

पेकिंग शहर की दक्षिणी 'तातार दीवाल' के पास बना हुआ संगमर्मर का 'स्वर्गीय-'मन्दिर एवं वेदी' [1] काफी प्रभावशाली ढाँचा है। स्वर्गीय-मन्दिर' का निर्माण एक संगमरमर के प्लेटफार्फ पर किया गया है एवं इसके निर्माण के लिए केवल ईंटों तथा टाइलों का प्रयोग हुआ है। आकार में यह मन्दिर तिमंजला पैगोडा जैसा है। वेदी की सीढ़ियाँ एवं छतें (terraces) केवल संगमरमर की बनी हुई हैं। यहीं पर प्रतिवर्ष चीनी नये साल के अवसर पर, प्रातः ३ बजे चीन के सम्राट अपने पात्र-मित्रों समेत प्रार्थना एवं पूजा के लिए आया करते थे। १८८९ ई० स० में वज्रपात (lightning) से इस मन्दिर को काफी नुकसान पहुँचा।

चित्र-कला (Chinese Painting)

चीनियों ने चित्रकला में भी काफी उन्नति की। इनके विचार में चित्रकला (Painting) तथा लेखन-कला (Art of writing or Calligraphy) में कोई अन्तर नहीं है। बल्कि दोनों 'एक ही पिता-माता की सन्तान' हैं। हाथ के लिखे हुए सुन्दर नमूने आज भी चीनी तथा जापानी गृहों को सजाने के लिए दीवालों पर टाँगे जाते हैं। प्रसिद्ध चीनी लिपिकार (Calligrapher) वांग-शी-ची (लगभग ४०० शताब्दी) के हाथ के लिखे हुए 'सुन्दर चीनी अक्षरों' (Chinese Character) के आधार पर ही सर्वप्रथम 'ब्लाक-प्रिन्टिंग' की छपाई के अक्षर लकड़ियों पर काट कर बनाये गये।

चीनी जिस तूलिका या ब्रुश से रेशम पर लिखते थे, उसी ब्रुश से चित्र भी बनाते थे। अधिकांश चित्र ब्रुश के द्वारा स्याही से बने हुए हैं। अधिकतर चित्र रेशम पर बनाये जाते थे जिससे कालान्तर में वे नष्ट हो गये। कुछ चित्र कागज पर भी बनाये गये। रेशम या कागज पर बनाये गये इन चित्रों को मोड़कर (round up) सुरक्षित स्थानों में रक्खा जाता था और आवश्यकतानुसार खोलकर उसे 'पढ़' लिया जाता था, यानी उसका अध्ययन किया जाता था। दक्षिणी शुंग-वंश के समय तक चित्रकला में काफी उन्नति हो चुकी थी और इसके १३ विभाग स्थापित हो चुके थे।

चीन की सर्वप्रथम चित्रकार ली (Lei) नाम की एक स्त्री है, जो सम्राट शून की बहन थी। चाऊ सम्राटों के समय का एक भी चित्र अब मौजूद नहीं है, यद्यपि कन्फूशियस ने लो-यांग स्थित मन्दिर के दीवाल-चित्रों का उल्लेख किया है जिनसे वह स्वयं काफी प्रभावित हुआ था।

---

1. Temple of Heaven and Altar of Heaven.

परवर्ती युग में चीन में कई प्रसिद्ध एवं प्रतिभाशाली चित्रकारों का जन्म हुआ है। वस्तुतः हान-युग से ही चीनी चित्रकला (painting) का विकास होता है। हान-युग का प्रसिद्ध चित्रकार था—लीए-ई (Lieh-I)। कहा जाता है कि यह एक हजार फुट की लम्बी लाइन एक ही सीध में खींच सकता था तथा एक वर्ग-इंच स्थान पर चीन का पूरा मानचित्र (मैप) बना सकता था। इस चित्रकार की एक और विशेषता यह थी कि वह अपने मुँह में रंगीन पानी भरकर फिर उसे छिड़कते हुए चित्र बना सकता था। यह 'फीनिक्स पक्षियों' (Phoenix birds) का चित्र इतना जीता-जागता बनाता था कि मालूम पड़ता था कि अभी ये उड़ जायेंगे। यद्यपि इन वर्णनों में कुछ अतिशयोक्ति अवश्य है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि चित्रकार लीए-ई निश्चय ही एक प्रतिभाशाली चित्रकार था।

चीन में बौद्ध-धर्म के आगमन से जैसे चीनी मूर्ति-कला एवं मन्दिर-कला को प्रोत्साहन मिला, उसी प्रकार चीनी-चित्रकला को भी बौद्ध-धर्म के कारण यथेष्ट प्रोत्साहन एवं उद्दीपन प्राप्त हुआ। बौद्ध-युग के सबसे महान् चीनी चित्रकार थे—कू-काई-ची (Ku-Kai-Chih)। इस चित्रकार ने बौद्ध-संन्यासी 'विमल-कीर्ति' का एक अतिसुन्दर दीवाल-चित्र नानकिंग के बौद्ध-मन्दिर में बनाया, जिसे देखने के लिए दर्शनार्थियों की भीड़ लग गयी। कहा जाता है कि इन दर्शनार्थियों से जो प्रवेश-मूल्य संगृहीत हुआ (जो प्रायः १० लाख चीनी-मुद्रा के बराबर था) वह सभी धन उसने उक्त बौद्ध-मन्दिर को दान के रूप में दे दिया।

कू-काई-ची ने अन्य अनेक बौद्ध-चित्र बनाये और चित्र-कला पर तीन भाष्य लिखे, जिनका केवल कुछ हिस्सा ही अब उपलब्ध है। इनके विचार में 'मनुष्य-आकृति अंकित करना सबसे कठिन है, परन्तु उससे भी कठिन है अंकित करना प्राकृतिक दृश्य, घोड़े और देवता।'

तांग-युग में चित्रकला की व्यापक उन्नति हुई। इस युग की चित्रकला में दो स्कूलों (विचार-धारा) का जन्म हुआ (१) उत्तरी एवं (२) दक्षिणी। उत्तरी स्कूल (Northern School of painting) का प्रतिनिधि था, ली-स्सू-सून (Li-Ssu.Hsun) जो 'वास्तववादी विचार-धारा (realism) का था। इनका विचार यह था कि प्राकृतिक दृश्यों को, वास्तविकता का रूप देकर ही अंकित करना चाहिए।

दक्षिणी स्कूल प्रधानतः 'भावप्रधान विचारधारा' का था। इसके प्रतिनिधि थे वांग-वी (Wang-Wei) इनका विचार था कि 'प्राकृतिक दृश्य केवल मात्र किसी स्थिर भावना का प्रतीक है' (Landscape was merely the symbol of a mood) अतः प्राकृतिक दृश्यपटों को निरीक्षण

करने के पश्चात् मन में जैसी भावना जागृत होती थी, उसीके आधार पर ये दृश्यपट अंकित करते थे। इन्हें Impressonist school भी कहा जा सकता है।

ये दोनों ही चित्रकार, सम्राट मिंग-हुआंग के समकालीन थे। इस युग के अन्य प्रसिद्ध चित्रकार थे 'वु-ताओ-जे (Wu-Tao-Tze)। यह भी सम्राट मिंग-हुआंग के चमकालीन थे। यह चीनी-बौद्ध कला के उपासक थे। ये रेशम, कागज़, नया पलस्तर लगी हुई दीवाल, आदि सभी पर बड़ी कुशलता से चित्र बना सकते थे। कहा जाता है कि 'लोयांग' शहर को इन्होंने अपने चित्रों से भर दिया था। मनुष्य, जानवर, प्राकृतिक दृश्यपट, देवता, मकान तथा महल, सभी वस्तुएँ, इनकी तूलिका (brush) के द्वारा, अपूर्व तथा अभिनव रूप धारण करती थीं। कहा जाता है कि एक बार सम्राट मींग-हुआँग ने, इन्हें बुलाकर, अपने स्वप्नों का वर्णन किया और उसके अनुसार चित्र बनाने की आज्ञा दी। इसने बिल्लकुल स्वप्नों के अनुरूप चित्र बनाकर सम्राट के सामने उपस्थित किया और सम्राट को इसकी चित्र-कुशलता को स्वीकार करना पड़ा।

वु-ताओ-जे ने, समकालीन बौद्ध मन्दिरों में कई दीवाल-चित्र बनाये जिनमें कुछ अति प्रसिद्ध हो गये हैं। जब वह सींग-शान मन्दिर (Hsing-Shan Temple) में बौद्ध-मूर्तियाँ बना रहा था, तो चांग-आन शहर के सभी व्यक्ति, इन चित्रों को देखने के लिए आये और तुफान की भाँति इसे तूलिका चलाते हुए देखकर स्थिर किया कि निश्चय ही कोई देवता इसकी सहायता कर रहा है। लोगों ने एक स्वर से स्वीकार किया कि चित्रकला में इतनी सूक्ष्मता तथा पारदर्शिता, पहले कभी नहीं देखी गयी।

इस महान् चित्रकार की अन्य, एक विशेषता यह भी थी कि किसी व्यक्ति या दृश्यपट को केवल एक बार देख कर ही, वह एकान्त में बैठ कर, अनुरूप चित्र अंकित कर सकता था। १२वीं शताब्दी में भी इसके ९३ चित्र राजकीय संग्रह-शाला में संरक्षित थे, परंतु उनमें से कोई भी आज दृष्टिगोचर नहीं होता।

चीनी चित्रकला की प्रगति शुंग-काल में भी अक्षुण्ण रही। सम्राट हुई-सुंग स्वयं एक महान् चित्रकार था। इनके द्वारा स्थापित 'कला-संग्रह शाला' (Art Museum), 'चित्रकला-मन्दिर' (Painting Academy) तथा 'साहित्यिक-संस्था (Literary College) चीन के इतिहास में सुप्रसिद्ध हैं। चीन में 'स्त्रियों के द्वारा रेशम बनाने की प्रथा' का एक अपूर्व-चित्र इस सम्राट ने बनाया था, जो इस समव बोस्टन शहर (अमेरिका) की कला-संग्रह-शाला (Museum of fine Arts in Boston) में सुरक्षित है। इस चित्र में, भिन्न भिन्न अवस्थाओं में रेशम निर्माण-कला को बड़े ही सरल तथा सुन्दर ढंग से दर्शाया गया है।

सम्राट हुई-सुंग (Hui-Tsung) इतना चित्र प्रेमी था कि प्रतिगोगिता-मूलक परीक्षाओं में भी इसने 'कला' (art) को स्थान दिया। परन्तु तातारों के आक्रमण से, इसकी राजकीय संग्रहशाला के सभी चित्र नष्ट हो गये। सम्राट स्वयं इनके हाथों कैद हुआ और अन्तिम जीवन कारावास में ही बिताया।

शुंग-काल के अन्य प्रसिद्ध चित्रकारों में, कुओ-सी (Kuo-Hsi) तथा ली-लुंग-मीयेन (Li-Lung-Mien) का उल्लेख किया जा सकता है। ये दोनों ही प्राकृतिक दृश्यपट के प्रसिद्ध चित्रकार थे। सम्राट हुई-सुंग की चित्र-शाला जब तातारों के द्वारा विध्वस्त हुई तो ली-लुंग-मीएन के १०७ चित्र उसमें संगृहीत थे जो सभी नष्ट हो गए। इस युग के अन्यान्य प्रसिद्ध चित्रकार थे—मी-फै (Mi-Fei), सीया-कुई (Hsia-Kuei), मा·यूआन (MaYuan) तथा लीआंग-काई (Liang-Kai) इत्यादि, जिनके चित्र आज भी बोस्टन संग्रहशाला में सुरक्षित हैं और दर्शकों के मन में यह भावना उत्पन्न करते हैं कि 'शुंग-युग वास्तव में चीन का स्वर्ण युग था जब सभी प्रकार की कला एवं शिल्प तथा कलाकार एवं शिल्पकारों को प्रगतिशील होने का अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ।'

चीनी चित्रकला की विशेषता यह है कि रंग से अधिक, सूक्ष्म तथा छंदमय (rhythmic) रेखाओं के द्वारा ही, चित्र को रूप देने में चीनी चित्रकारों का अधिक विश्वास रहा है। उनके अधिकतर चित्र, स्याही तथा तूलिका (Ink and brush) के द्वारा ही बनाये गये हैं। ताओ तथा बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण, प्रकृति का सम्मोहक प्रभाव चीनी चित्रकारों पर भी पड़ा, जो प्रकृति-चित्रण तथा प्राकृतिक दृश्यपट अंकित करने में, संभवत: विश्व में आज भी अद्वितीय माने जाते हैं। शायद ही किसी युग में, किसी देश के चित्रकार ने, एकांत में बैठकर, गंभीर तथा गंमीर ध्यान से प्रकृति के भिन्न-भिन्न रूप (जैसे वन-शोभित पर्वत तथा कलकल ध्वनि से बहता हुआ नदी या झरना) का निरीक्षण करते हुए, केवल मात्र सूक्ष्म रेखाओं के द्वारा उनका वास्तविक तथा अनुरूप रूप देने की चेष्टा की हो। चीनी चित्रकार केवल मात्र चित्रकार ही नहीं वरन् कवि भी था—उसके चित्र में छन्दोमय कविता का आभास भी दर्शक को अनुभूत होता था। 'चित्र' तथा 'कविता' का यह अपूर्व समन्वय विश्व में अन्यत्र निश्चय ही विरल है।

शुंग-युग में चीनी-मिट्टी-कला एवं उद्योग का विकास (Development of Porcelain Industry during the Sung Age)

अन्यान्य कला एवं उद्योगों की भाँति, चीनी-मिट्टी-कला एवं उद्योग की भी भरपूर उन्नति शुंग-युग में हुई।

वस्तुत: असली चीनी-मिट्टी या Porcelain का आविष्कार ९वीं शताब्दी में हुआ। चीनियों ने सर्वप्रथम, काओलीन तथा पे-तुम-से (Kaolin and pe-tum-tse) नामक दो धातुओं को तोड़कर चूर्ण (powder) बनाया एवं दोनों के मिश्रित चूर्ण को पानी में मिलाकर 'पोर्सलीन' प्रस्तुत की। इसकी विशेषता यह है कि जब इसे आग में गलाया जाता है तो, यह प्राय: काँच की तरह, एक अर्धस्वच्छ (translucent) रूप में परिवर्तित हो जाता है। चीनी कारीगर, पानी के द्वारा इसकी 'पेस्ट' बनाकर हाथ से या कुम्हार के चाक के द्वारा, भिन्न-भिन्न आकृति की वस्तुएँ बनाकर तेज आँच दिखाते थे, जिससे उनमें सफेदी, चमक तथा स्थायित्व आ जाता था। कभी-कभी तेज आँच दिखाने के पहले, कारीगर पोर्सीलीन की बनी हुई चीजों पर, शीशे का हल्का लेप भी लगा देता था, ताकि उस वस्तु पर काफी चमक (glaze) आ जाय। इसे रंगीन बनाने के लिए प्राय: पोर्सीलीन-पेस्ट में ही रंग मिलाया जाता था, और तब उस वस्तु पर शीशे की लेप लगाकर उसे स्वच्छ एवं चमकीला बनाया जाता था। कभी-कभी शीशे का लेप लगाकर, तेज आंच दिखाने के पश्चात्, उस वस्तु पर रंग लगाया जाता था। इन दोनों प्रथाओं से, पोर्सीलीन की रंग-बिरंगी तश्तरियाँ, प्याले एवं कप (cups and dishes) फूलदानी, अतरदान इत्यादि मनमोहक एवं आकर्षक वस्तुएँ चीन में बनायी जाती थीं। अधिक चमकीले रंगवाली वस्तु बनाने के लिए—जिसे 'इनामेल' या enamelling की प्रथा भी कहा जाता है, रंगीन शीशे के चूर्ण को गलाकर द्रव (liquid) बनाया जाता था और फिर कारीगर अपनी तूलिका से, उस द्रव एवं रंगीन शीशे को पोर्सीलीन की बनी हुई वस्तु पर लगाता था। कला एवं कारीगरी का एक अपूर्व समन्वय इस प्रथा में मौजूद था। इसी प्रथा से उस्ताद चीनी कारीगर फूल-पत्ती, दृश्यपट, जानवर, साधु-संतों के चित्र, आदि चीनी मिट्टी के बर्तनों पर बनाते थे।

शुंग-काल में चीनी मिट्टी उद्योग (Porcelain Industry) की सामूहिक उन्नति हुई। चींग-ते-चेन (Chiang-ti-Chen) शहर में शुंग-काल के पहले ही चीनी मिट्टी के कारखाने बन चुके थे। शुंग-सम्राटों ने इन कारखानों को राजकीय संरक्षण में ले लिया और पर्याप्त सहायता की। फलस्वरूप नाना प्रकार की चीनी मिट्टी की वस्तुएँ जैसे तश्तरी, प्याले, कटोरे, फूलदान, गिलास, बक्से, मोमबत्तीदान, नक्शे, शतरंज का बोर्ड (chess board) आदि इन कारखानों में निरंतर बनने लगे।

इस युग में सीलाडोन (celadon) या हरे-जेड पत्थर (green-jade pieces) की वस्तुएँ भी प्रथम चीन में प्रस्तुत होने लगीं। सीलाडोन की बनी वस्तुएँ कालान्तर में इतनी प्रसिद्ध तथा व्यापक हो गयीं कि मिस्र के सुल्तान ने

१४८७ में प्रसिद्ध इतालीय शिल्पी, लारेंजो-डि-मिडिसी के निकट, सीलाडोन की बनी हुई चीजों के नमूने भेजे।

सीलाडोन के बने हुए बर्तनों में एक और विशेषता यह थी कि इनमें जहर रखते ही इनके रंग बदल जाते थे। अतः इस विशेष गुण के कारण पारसियों और तुर्कियों में इसका विशेष आदर था। चीन में सीलाडोन की बनी हुई वस्तुएँ, पुश्त दर पुश्त, अमूल्य-निधि की भाँति कुलीन-वंशों में, हस्तान्तरित होती आयी हैं और संग्रहकारियों (collector) को एक भी नमूना प्राप्त करना काफी कठिन है। जापान में कोई भी परिवार, सीलाडोन की एक भी वस्तु किसी भी मूल्य पर, कदापि किसी के पास नहीं बेचता है।

मींग तथा माञ्चु सम्राटों के शासन-काल में पोर्सीलीन-उद्योग की और भी व्यापक उन्नति हुई। नाना प्रकार के रंग तथा आकार की (छोटी-बड़ी) वस्तुएँ इस युग में बनने लगीं। चींग-ते-चेन के कारखानों को इन सम्राटों से पर्याप्त सहायता बराबर प्राप्त होती रही। मींग-युग का प्रसिद्ध कारीगर हाओ-शी-चीऊ, बिल्कुल हल्के शराब के प्याले (जिसका वजन $\frac{1}{8}$ औंस से भी कम था) बनाने की कला में निपुण तथा प्रसिद्ध था। माञ्चु सम्राट कांग-सी (१६६२-१७२२ ई० स०) तथा चीअेन-लुंग (१७३६—१७९६ ई० सदी) के समय, पोर्सीलीन-उद्योग अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया। परन्तु ताई-पींग विद्रोह (१८५०-१८६४ ई० स०) के समय यह सुन्दर तथा कलापूर्ण-उद्योग एकदम नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

पोर्सीलीन-उद्योग पर विचार प्रगट करते हुए, प्रो० विल डुराण्ट (Prof. Will Durant) महोदय ने कहा है :—

"Chinese porcelain is the summit and symbol of Chinese civilisation, one of the noblest things that men have done to make their species forgivable on earth".

अर्थात्, "चीनी पोर्सीलीन, चीनी सभ्यता के उन्नतिशील तथा शिखरारूढ़ होने का प्रमाण एवं प्रतीक है—यह मानव-जाति के उन सर्वश्रेष्ठ अवदानों में है, जिस कारण मानव-सभ्यता विश्व में चिरस्मणीय रहेगी।"

शुंग-कालीन दर्शन तथा धर्म

शुंगकाल दार्शनिक तथा धार्मिक उन्नति के लिए प्रसिद्ध हो गया है। भिन्न दार्शनिक स्कूलों (Schools of rival philosophy) के उत्थान से, मानसिक भावनाओं का आदान-प्रदान भी इस युग में खूब होता रहा—क्योंकि दर्शन तथा दार्शनिकों की उन्नति तभी होती है जब देश में शान्ति स्थापित हो, देश धन-धान्य से पूर्ण हो, एवं शासक वर्ग, विद्योत्साही तथा विद्याप्रेमी हो एवं साहित्य, शिक्षा तथा कला का पृष्ठपोषक हो।

चीन में प्राचीन काल से ही महान् दार्शनिक लाऊ-त्सू प्रचलित 'ताओ' दर्शन एवं धर्म तथा दार्शनिक कन्फूशियस प्रचलित कन्फूशियन दर्शन एवं धर्म प्रचलित थे। अब महायान बौद्ध-धर्म के चीन में प्रवेश होने के उपरान्त, बौद्ध दर्शन एवं धर्म भी, चीनियों के जीवन को प्रभावित करने लगा। वस्तुतः चीनी-जनता के जीवन पर इन तीनों धर्मों का इतना गम्भीर तथा मिश्रित प्रभाव पड़ा, कि अब यह कहना मुश्किल है कि अमुक व्यक्ति (चीनी) इस धर्म का पालन करने वाला है। बौद्ध-धर्म के प्रभाव से ही, चीनियों को मन्दिर स्थापित करने की प्रेरणा प्राप्त हुई, एवं 'ध्यान' करने की पद्धति का उन्हें ज्ञान हुआ। अन्यथा, चीनियों के धार्मिक जीवन में मंदिर, पुजारी तथा देव-मूर्ति का सर्वथा अभाव था।

इस युग का सबसे महान दार्शनिक था, चु-सी (Chu-Si)। इसका समय ११३० ई० स० से १२०० ई० स० तक माना जाता है। चू-सी तथा उसके विरोधियों का वादानुवाद दार्शनिक कन्फूशियस के विचित्र सिद्धान्त 'वस्तुओं की खोज'—investigation of things—पर आधारित रहा। यह कन्फूशियस का 'वास्तववादी सिद्धान्त' था कि अन्वेषण तथा खोज के द्वारा ही, सांसारिक बातों की बुराइयाँ दूर हो सकती हैं एवं उसके लिए 'ज्ञान'—Knowledge—की आवश्यकता है। चु-सी ने, इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहा कि 'दर्शन, नैतिकता तथा राजनीति का प्रारंभ, वास्तविकता के अध्ययन से शुरू होना चाहिए'।

(Philosophy, morals and statesmanship should begin with a modest study of things).

चु-सी का यह विचार था कि प्रकृति, दो वस्तुओं की बनी है, यांग (पुरुष) तथा यीन (प्रकृति = स्त्री), गति एवं शान्ति। ये दो अव्यक्त तत्व, पाँच भौतिक तत्वों (जैसे जल, आग, पृथ्वी, धातु एवं लकड़ी) से मिलकर इस विश्व की रचना करते हैं। एवं सर्वत्र 'ली' तथा 'ची,' यानी 'नियम तथा पदार्थ' (Law and matter) दोनों की युग्म सहायता (cooperation) से सभी चीजें नियमित एवं शासित हो रही हैं एवं अपने विशिष्ट रूप (form) को प्राप्त हो रही हैं।

परन्तु इन सभी तत्वों के ऊपर भी एक महान् अव्यक्त शक्ति है, वह है ताई-ची (Tai-Chi)—समग्र विश्व की परिचालना करनेवाला शाश्वत नियम। चू-सी ने इस शाश्वत एवं अव्यक्त शक्ति की तुलना, कन्फूशियन दर्शन के स्वर्ग' यानी 'तीयेन' (Tien) से की है। उसके विचार में भगवान का कोई रूप नहीं है, वह एक युक्ति-मुक्त प्रथा (rational process) मात्र है।

विश्व का यह शाश्वत-नियम ही, नैतिकता के नियम या राजनीति के नियम हैं। सबसे ऊँची राजनीति है वही जब कि राज्य-परिचालना में इन

नैतिक-नियमों का भी प्रयोग हो। बुद्धि एवं शान्ति प्राप्त करने का गूढ़ रहस्य यही है कि प्रकृति का अनुकरण किया जाय।

इस युग का दूसरा प्रसिद्ध दार्शनिक था—वांग-यांग-मींग (Wang-Yang-Ming), जो महायान बौद्ध धर्म का अनुयायी था। उसका कहना था कि खोज या अन्वेषण, बाहरी दुनिया की नहीं परन्तु आत्मा की होनी चाहिए। आत्मान्वेषण एवं आत्म-चिन्तन से ही, इस प्रकार का अन्वेषण संभव है तथा सत्य-ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है। विश्व की सृजन-शक्ति की व्याख्या (जैसे चावल कैसे पैदा होता है या बाँस कैसे उगते हैं) भौतिक-विज्ञान से कभी नहीं हो सकती।

अतः आत्मचिन्तन के लिए निर्जन-स्थान में बैठकर ध्यान तथा मनन करने की पद्धति पर वांग ने अधिक जोर दिया। वांग के इस नवीन सिद्धान्त एवं पद्धति के कारण उसे निर्वासन-दंड दिया गया। वहाँ पर उसने, स्थानीय असभ्य निवासियों एवं भागे हुए अपराधियों के साथ मित्रता कर ली, एवं उनकी सेवा में तत्पर हो गया। क्रमशः उसने अपने दार्शनिक सिद्धान्त के आदर्श द्वारा भी उन्हें अनुप्राणित किया। धीरे-धीरे उनमें से कई उसके शिष्य हो गये।

वांग का कहना था कि प्रकृति में स्वयं कोई बुराई नहीं है। बुराई एवं भलाई की भावनाएँ तो मनुष्य के मन (mind) में हैं। अगर आप फूल पसन्द करते हैं तो फूल आपके लिए अच्छा है और अगर आप घास पसन्द करते हैं तो घास आपके लिये अच्छी है। अतः भलाई-बुराई की भावना आपकी निजी मानसिक उपज है। प्रकृति में न तो भलाई है और न बुराई। अतः वह सर्वोत्तम (Highest good) है और वही व्यक्ति सर्वश्रेष्ठ है जो प्रकृति के नियमों को पूर्णतः पालन करने में सफल होता है।

परंतु वांग का स्थायी प्रभाव चीनी समाज पर न पड़ा। जनता ने चु-शी के विचारों का अधिक समादर किया एवं उसके मरणोपरान्त उसका स्मृति-फलक दार्शनिक कन्फूशियस के मन्दिर में रखकर, उस पर अपनी श्रद्धा प्रकट की।

चीन के प्रधान धर्म

चीनियों के प्राचीन धर्म में 'पूर्वजों की पूजा' का विशेष स्थान था। पूर्वजों की स्मृति में प्रतिदिन भोजन इत्यादि उत्सर्ग किये जाते थे एवं उनकी समाधियों को विशेष श्रद्धापूर्वक सुरक्षित रक्खा जाता था।

प्राचीन चीनियों का यह विश्वास था कि सृष्टि के दो भाग—स्वर्ग (heaven) तथा पृथ्वी (Earth) का पारस्परिक सम्बन्ध पुरुष तथा स्त्री (यांग एवं चीन) की भाँति है। स्वर्गीय नियम या व्यवस्था एवं मनुष्य के नैतिक

व्यवहार में घनिष्ठ सम्बन्ध हैं एवं दोनों ही 'ताओ' या प्रकृति के शाश्वत नियम के अन्तर्गत हैं। अतः स्वर्ग ही 'सर्वप्रधान देवता' है जिसके द्वारा विश्व की सभी चीजें नियमित एवं शासित होती हैं। इसी विश्वास के आधार पर ही चीन में 'पूर्वजों की पूजा' एवं कन्फूशियन मतानुसार 'स्वर्ग' एवं महान् व्यक्तियों की पूजा प्रारम्भ हुई। इसी विश्वास से प्रेरित होकर चीनियों ने कन्फूशियस को भी पूजना प्रारम्भ किया एवं उसकी स्मृति के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए उनका मन्दिर निर्माण किया।[1] (धीरे-धीरे हर प्रान्त में हर शहर में उसके मन्दिर बन गये, जहाँ सम्राट, राजकर्मचारी तथा जनता प्रतिवर्ष उसकी स्मृति में उत्सर्ग करते थे (Offered Sacrifice) तथा धूप (Incense) इत्यादि जलाते थे।

परन्तु क्रमशः लोगों में अन्धविश्वास बढ़ने लगा। वे सर्वदा यह कल्पना करने लगे कि उनके आस-पास अच्छी तथा बुरी आत्माएँ घूमती रहती हैं। अतः उनको शान्त एवं सन्तुष्ट करने के लिए वे तन्त्रों-मन्त्रों का प्रयोग एवं प्रार्थना करने लगे। कन्फूशियस की पुस्तक 'ई-चींग' (I-Ching) का प्रयोग अब भविष्यवाणी के लिए होने लगा। मकान तथा समाधि निर्माण के लिए अच्छे दिन तथा क्षण आदि का विचार होने लगा। दक्षिण-चीन के निवासी, रहस्यवाद तथा अमर-शान्ति के लिए तड़फने लगे। कन्फूशियन धर्म से उन्हें कोई सन्तोष न हुआ।

अतः अब लोग लाओत्जे' के दार्शनिक 'ताओ-सिद्धान्त' की छान-बीन करने लगे। परन्तु 'ताओ-सिद्धान्त' में अमर जीवन तथा अमरत्व के बारे में कुछ नहीं कहा गया था। दूसरी शताब्दी में कुछ लोग 'ताओ-सिद्धान्त' के अनुसार 'अमरत्व' की शिक्षा लोगों को देने लगे और कहने लगे कि उन्होंने एक ऐसी 'संजीवनी-बूटी' का आविष्कार किया है जो 'अमरत्व' (Immortality) प्रदान करती है। इस संजीवनी बूटी के रस-सेवन की प्रथा इतनी जनप्रिय हुई कि कुछ सम्राट तो इसका अधिक सेवन करने से इहलोक त्याग करने पर बाध्य हुए (संभवतः इसी प्रकार उन्हें अमरत्व प्राप्त हुआ।)

क्रमशः तावीज इत्यादि का भी प्रचार चीनी समाज में होने लगा और इसे धारण करते हुए कई प्रकार के रोगों से छुटकारा पाने की चेष्टा लोग-बाग करने लगे। महान् दार्शनिक लाओत्जे को देवता का पद दिया गया और उसके सम्मान में मन्दिर बनने लगे। उसके बारे में यह किंवदन्ती प्रचलित हुई कि वह अपनी माता के गर्भ में ८० वर्ष पर्यन्त रहे क्योंकि जन्म के समय उनके बाल सफेद थे—अर्थात् जन्म से ही वे महाज्ञानी थे।

---

१. Temple of Confucius तथा Altar of Confucius का ऊपर उल्लेख आ चुका है।

ताओ तथा कन्फूशियन धर्मों के अवलम्बियों में काफी दिनों तक धार्मिक झगड़े चलते रहे। अंत में बौद्ध-धर्म के आगमन से ये झगड़े थोड़े दिनों के लिए बन्द हो गये।

चीन में बौद्ध-धर्म की महायान-शाखा का प्रचार प्रथम शताब्दी से ही प्रारम्भ हो गया था। महायान बौद्ध-धर्म की विशेषताओं के कारण चीनी-समाज ने इस धर्म का सहर्ष स्वागत किया। महायानी बौद्ध बोधिसत्वों में विश्वास करते एवं उनकी पूजा करते थे, जिनमें प्रधान थे, अभिताभ, अवलोकितेश्वर तथा मैत्रेयी जिनके चीनी नाम क्रमश: ये हैं—ओ-मी-तो, कुआन-यीन तथा मी-लो-फो।

इन बोधिसत्वों के अलावा बुद्ध के शिष्यों यानी अर्हतों, (चीनी लोहान) की श्रद्धा में भी मन्दिरों का निर्माण होने लगा। बोधिसत्वों तथा अर्हतों की पूजा से सांसारिक कष्टों एवं यन्त्रणाओं का अवसान होगा, इस विश्वास से इनकी पूजा (मूर्ति-पूजा) समस्त चीन में व्यापक रूप से प्रचलित हो गयी। ताओ-धर्मावलम्बियों ने शीघ्र ही इस धर्म को स्वीकार कर लिया और वस्तुत: थोड़े दिनों के पश्चात् 'ताओ' तथा 'बौद्ध धर्म' इतने घुल-मिल गये कि दोनों में कोई अन्तर न रहा। ताई-शान के पवित्र पर्वत पर ताओ-संघाराम के साथ बौद्ध-संघाराम की भी स्थापना हुई। अनेक प्राचीन मन्दिरों में अब बोधिसत्वों तथा लोहानों की पूजा होने लगी। ताओ तथा बौद्ध धर्म के मिलन से कई नवीन सम्प्रदायों का जन्म हुआ जिनमें प्रधान थे (१) 'चान सम्प्रदाय एवं (२) तीयेन-ताई-सम्प्रदाय। चान-सम्प्रदाय का कहना था कि प्रत्येक मनुष्य में 'बुद्धत्व' (Budha nature) पाया जाता है एवं ज्ञान की प्राप्ति केवल ध्यान या समाधि (meditation) से ही सम्भव है तथा प्रार्थना, संन्यासी-जीवन एवं भलाई के कार्य आदि की कोई आवश्यकता नहीं है।

तीयेन-ताई सम्प्रदाय के प्रष्ठिापक थे ची-ई (Chih-I), जिन्होंने चेकियांग की पहाड़ियों में (५७५ सदी में) इस सम्प्रदाय की स्थापना की। इनका कहना था कि 'बुद्धत्व' प्राप्ति के लिए शिक्षा की परमावश्यकता है। इन्होंने संयम तथा उत्सव एवं बौद्ध धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन का समर्थन किया। इन्हीं के विचारों से प्रभावित होकर बौद्ध-धर्म-ग्रन्थ, (विशेषकर सद्धर्म-पुंडरीक) का अध्ययन चीनी बौद्ध-धर्मावलम्बी करने लगे।

धार्मिक क्षेत्र के अलावा कला तथा शिल्प-क्षेत्र में भी बौद्ध-धर्म का क्या प्रभाव पड़ा, इसका विवरण एवं उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मन्दिर, पुरोहित या पुजारी एवं देव-मूर्ति निर्माण एवं उनकी पूजा इत्यादि का प्रचलन चीन में बौद्ध-धर्म के कारण ही हुआ। इसने ताओ-धर्म को भी अपने में मिला लिया। परन्तु कन्फूशियन-

धर्म को यह न मिला पाया जो सदैव चीन का राजकीय धर्म माना जाता रहा। चीनी सम्राट्, राजकीय अफसर तथा विद्वान, कन्फूशियन धर्म को ही बराबर मानते रहे।

बौद्ध-धर्म को ताओ तथा कन्फूशियन धर्म का विरोध भी सहना पड़ा। उत्तरी वी राजवंश (४४६ ई० स०) तथा उत्तरी चाऊ राजवंश (५७४ ई० स०) के समय बौद्ध-धर्मावलम्बियों की व्यापक हत्या की गयी एवं ऐसा प्रतीत होने लगा कि चीन से बौद्ध-धर्म अबलुप्त हो जायेगा। परन्तु थोड़े दिनों के पश्चात् ये दोनों राजवंश के सदस्य स्वयं ही बौद्ध-धर्म के पालक तथा पृष्ठपोषक हो गये। उत्तरी वी राजवंश के समय युन-कोंग पहाड़ियों में कैसे सुन्दर बौद्ध-गुफा-मन्दिरों एवं मूर्तियों का निर्माण हुआ, इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

चीनी समाज, धर्म, साहित्य-कला तथा शिल्प पर बौद्ध-धर्म के अतुलनीय प्रभाव के बारे में Prof. K. S. Latourette का कहना है कि—

"Buddhist themes and iconography were a great stimulus to the Chinese. Some of the best Chinese painting was done under the inspiration of Buddhism both in the 'T' ang and Sung dynasties."

उपसंहार

वाल्तेयर तथा अन्य विद्वानों ने किस प्रकार चीनी सभ्यता एवं संस्कृति की प्रशंसा की है, यह इस अध्याय के प्रारम्भ में ही बताया गया है। Prof. Will Durant ने अपनी पुस्तक Oriental Heritage में (p. 795) बड़े ही सुन्दर ढंग से इस सभ्यता की प्रशंसा करते हुए निम्नलिखित उक्ति की है—

"If we wish to understand this civilisation, we must forget for a moment the bitter and chaos and helplessness into which it has been thrown by its own internal weakness and by contact with superior genius and machines of the West : we must see it at any of its many apogees—under the Chou princes or Ming Huang, or Hui Tsung, or K'ang-hsi. For in those quiet and beauty-loving-days, the Chinese represented without doubt the highest civilisation and the ripest culture that Asia, or perhaps any Continent, had yet achieved".